प्रकाशक :
ला० गोपीनाथ गुप्ता
प्रोप्राइटर
जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी
मेरठ।

तृतीय हिन्दी संस्करण
१९५३


मुद्रक :
पीयूष चन्द्र,
व्यवस्थापक
सरस्वती प्रेस, मेरठ।

# प्राक्कथन

हिन्दी के राजभाषा तथा शिक्षा का माध्यम बन जाने के कारण अब उसमें आधुनिक विषयों पर पुस्तकों का अभाव खटकने लगा है। संविधान के विविध विषयों पर हमारी कुछ परीक्षोपयोगी पुस्तकें हिन्दी में पहले ही प्रकाशित हो चुकी हैं। विश्वविद्यालयों ने बी. ए. के विद्यार्थियो को हिन्दी माध्यम लेने की सुविधा प्रदान कर दी है, इसी कारण मैंने अपनी पुस्तक, "गवर्नमेन्ट ऑफ ग्रेट ब्रिटेन" का जो कि मूलतः अंग्रेजी मे लिखी गई थी अनुवाद कराना उचित समझा। इसके लिये मैंने अपने मित्र श्री मदन मोहन गुप्त, बी. ए., एल. एल. बी., से प्रार्थना की थी। उन्होने बड़ा कष्ट उठाकर इस कार्य को सम्पन्न किया है। इसके लिये वे मेरी ओर से तथा विद्यार्थीवर्ग की ओर से भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इसको तैयार करने मे प्रधानत परीक्षार्थियों की ही आवश्यकताओं को ध्यान में रखा गया है, अतः उन सब विस्तार की बातों को छोड़ दिया गया है जो उनके लिये उपयोगी नहीं हैं, और कई विषयों की, जिनका ज्ञान उनके लिये अपेक्षित है, अपेक्षाकृत अधिक व्याख्या की गई है।

इसकी रचना मे ऑग, मनरो, जेनिंग्स, लास्की, रैम्जे, म्योर तथा लो आदि विद्वानों की प्रसिद्ध कृतियो से सहायता ली गई है। स्थान स्थान पर उनके उद्धरण दिये गये हैं तथा फुटनोटों मे कृतज्ञता-ज्ञापन भी कर दिया गया है। साथ ही इस विषय की छोटी सी पुस्तक-सूची अगले पृष्ठ पर दी जा रही है। आशा है कि विद्यार्थी उनमें से कुछ को अवश्य पढ़ेंगे।

अन्त में श्री नेमिशरण मित्तल को धन्यवाद देना भी हमारा कर्त्तव्य है जिन्होंने पांडुलिपि को दोहराने तथा प्रूफ आदि देखने की कृपा की है। आशा है कि यह पुस्तक विद्यार्थी वर्ग के लिये लाभदायक सिद्ध होगी।

विजय मंदिर,<br>
सिविल लाइन्स, मेरठ।<br>
अगस्त १९५१

ज्योति प्रसाद सूद<br>
मेरठ कॉलिज।

# SELECT BIBLIOGRAPHY


*Amos* · The English Constitution.

*Buell* : Democratic Governments in Europe.

*Brown* : Everyman's Guide to Parliament.

*Greaves* : The British Constitution.

*Jennings* : The British Constitution.

*Low* : Governance of England.

*Marriot* : British Institutions.

*Munro* : Governments of Europe.

*Muir* : How Great Britain is Governed.

*Ogg* : European Governments and Politics.

*Stewart* : The British Approach to Politics.


## More Advanced


*Jennings* : Cabinet Government.

*Jennings* : Parliament.

*Keith* : The Constitution of England from Queen Victoria to George VI.

*Laski* : Parliamentary Government in England.

*Ogg* : English Government and Politics.


Finer's *Theory and Practice of Modern Governments* and Marriot's *Mechanism of Government* also contain an excellent account of the various British institutions and practices. Lowell's two volumes dealing with the British constitution are also good, though they are somewhat out of date.

# विषय-सूची

[१]

ब्रिटिश संविधान की मुख्य विशेषताएं १

विषय प्रवेश : १ ; मुख्य विशेषताएं : २ ; ब्रिटिश संविधान के अंग : १२; ांविधानिक अभिसमय : १३ ।

[२]

ब्रिटिश संविधान का विकास १७

विषय प्रवेश : १७ ; आंग्ल-सेक्सन काल : १७ ; नॉरमन काल : १७ ; ी परिषद् आदि का विकास : १६ ; संसद् का विकास : १६ ; सन् १६८६ के चात् सांविधानिक विकास : २४ ; अन्य सांविधानिक विकास : २६ ; शासन तंत्र विभिन्न अंग : २७ ।

[३]

औपचारिक कार्यपालिका : क्राउन, राजा और प्रिवी परिषद् ३०

राजा और क्राउन में अन्तर : ३० , क्राउन के कार्य : ३१ , राजा का पद— ाका औचित्य और लाभ : ३३ ; ब्रिटिश सार्वजनिक जीवन मे राजा का ान : ३६ ; प्रिवी परिषद् : ४१ ।

[४]

मंत्रिमंडल और केबिनेट ४३

केबिनेट की केन्द्रीय स्थिति : ४३ ; मंत्रिमंडल : ४४ ; केबिनेट : ४५ ; केबिनेट गठन : ४७ ; प्रधान मंत्री की नियुक्ति : ५० ; केबिनेट व्यवस्था की मूलभूत

विशेपताएँ: ५१ , केबिनेट के कार्य: ५६ , केबिनेट की बैठकें तथा समितियां : ५६, प्रधान मंत्री की शक्तियां तथा कार्य : ६० , क्राउन तथा केबिनेट : ६३ , केबिनेट तथा संसद : ६४ ।

[५]

स्थायी कार्यपालिका : सिविल सर्विस तथा प्रशासकीय विभाग ६६

विपय प्रवेश : ६६ , ब्रिटिश प्रशासन व्यवस्था की मुख्य विशेपताएं : ६६ , सिविल सर्विस : ६६ , सिविल सर्विस के कार्य : ७० , प्रशासकीय विभाग : ७३ ।

[६]

विधान-मंडल : लोकसभा ७५

विपय प्रवेश : ७५ , संसद : ७६ , सभा की रचना : ७७ , निर्वाचन-सम्बन्धी समस्यायें : ७६ , आनुपातिक प्रतिनिधित्व : ८६ , सदन का संघटन : ६२ , अध्यक्ष : ६३ , सत्र कैसे आरम्भ होता है : ६५ , लोक-सभा की समितियां : ६६ , लोकसभा का कार्य : ६६ , विधि-निर्माण की प्रक्रिया : १०३ , संसद अधिनियम : १०७ , असार्वजनिक विधेयक : १०६ , अस्थायी आदेश स्थायीकरण विधेयक : ११० , विधि-निर्माण मे केबिनेट का भाग : १११ , वित्त पर संसद का नियंत्रण : ११२ , वित्तीय व्यवस्था की विशेपताएँ : ११८ , धन के व्यय पर संसदीय नियंत्रण : १२० , सभा वाद-विवाद का स्थान है : १२० , सभा परीक्षण-क्षेत्र : १२२ , प्रशासनात्मक विधान : १२३ ।

[७]

विधान-मंडल : लार्ड सभा १२४

विपय प्रवेश : १२४ , रचना : १२५ , सभा का संगठन : १२७ , सभा की शक्तियां तथा कार्य : १२७ , सदस्यो के विशेपाधिकार तथा कर्तव्य : १३० , दोनों सभाओं के सम्बन्ध : १३० , १६११ के संसद अधिनियम का महत्त्व : १३२, लार्ड-सभा के विरोध के कारण : १३३ , सुधार के सुझाव : १३४ ।

[८]

संसद् और सरकार १३७

विषय प्रवेश : १३७ ; संसद् की सैद्धान्तिक प्रभुता : १३७ ; व्यवहार मे संसद् का प्राधिकार : १३८ ; ससद् पर केबिनेट के आधिपत्य से लाभ तथा हानियां : १४१ ; इस परिवर्तन के कारण : १४२ ; विरोधी दल का कार्य : १४३ ।

[९]

राजनैतिक दल तथा दलीय व्यवस्था १४५

विषय प्रवेश : १४५ , दलीय प्रणाली का प्रभाव : १४६ , १८३२ से पूर्व राजनैतिक दल : १४६ , ब्रिटिश राजनैतिक दल : १४९ ; रूढ़िवादि दल : १५० , उदार दल : १५२ ; श्रम-दल : १५३ ; अन्य दल : १५५ , दलों की वर्तमान व्यवस्था : १५६ ; दलीय सगठन : १५७ , ग्रेट ब्रिटेन मे लोकतन्त्र : १५८ ।

[१०]

न्यायपालिका १६०

विषय प्रवेश : १६० ; विधि के प्रकार : १६१ ; विधि-न्यायालय : १६३ ; न्याय का उच्चतम न्यायालय : १६६ , न्यायपालिका का अन्य अङ्गो से सम्बन्ध : १६८ ; ब्रिटिश न्याय का उच्च स्तर १६९ ।

[११]

स्थानीय शासन तथा प्रशासन १७०

विषय प्रवेश : १७० : उसका इतिहास : १७० ; काउन्टी : १७२ , ग्राम्य जिले : १७४ ; नगर जिला परिषदें : १७५ , पैरिश : १७५ , बॉरो : १७६ , स्थानीय शासन पर केन्द्रीय नियंत्रण : १७८ , लंदन का शासन : १८२ , स्थानीय शासन की ब्रिटिश तथा भारतीय पद्धतियो की तुलना : १८४ ।

---

# ग्रेट ब्रिटेन की शासन-व्यवस्था

## अध्याय १

## ब्रिटिश संविधान की मुख्य विशेषतायें

**विषय-प्रवेश**— ब्रिटिश शासन-व्यवस्था संसार की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावशील प्रणालियों में से है। इसे मानव-जाति की अमूल्य राजनैतिक निधि कहा गया है। ब्रिटिश राजनैतिक संस्थाओं (Institutions) का प्रभाव इतना व्यापक है कि वे विश्व में सर्वत्र प्रचलित हैं; इसीलिये ग्रेट ब्रिटेन की व्यवस्था को राजनीति की महानतम पद्धति कहना उपयुक्त होगा। स्वभावतः राजनीति शास्त्र के विद्यार्थी उनमें बहुत दिलचस्पी लेते हैं और बहुत से विद्वान उनका अध्ययन तथा मनन करते हैं। हम भारतीयों के लिये उनका विशेष महत्त्व है; क्योंकि हमारी शासन-व्यवस्था तथा राजनैतिक संस्थाएँ बहुत हद तक उन के ही नमूने पर बनी हैं। अंग्रेज शासक स्वभावतः अपनी पद्धतियों को अपने साथ लाये थे; ब्रिटिश संसद (Parliament) ने भी विविध अधिनियम (Acts) पारित करके इस देश में संसदीय संस्थाओं की स्थापना की थी। १९३५ के भारत शासन अधिनियम (Government of India Act) द्वारा स्थापित विधान-मंडलों (Legislatures) का गठन, रचना, शक्तियाँ तथा कार्य बहुत हद तक ब्रिटिश संसद के नमूने पर ही निश्चित किये गये थे। स्वतंत्र भारत के संविधान की रचना भी अधिकांशतः पिछले भारत शासन अधिनियमों के आधार पर हुई है। उसमें शासन की संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है जिससे हम अंग्रेजी राज्य में काफी परिचित हो गये थे। भारत गणराज्य का राष्ट्रपति अमरीकी राष्ट्रपति के समान न होकर ब्रिटिश बादशाह के समान है, उसी के समान वह नाममात्र के लिये राज्य का प्रधान है, नाममात्र के लिये ही मुख्य कार्यपालिका है और वास्तविक शासक नहीं है। ब्रिटिश विधान-मंडल का अनुसरण करते हुए हमारे राष्ट्रीय विधान-मंडल (Legislature) को भी संसद (Parliament) कहते हैं तथा उसकी शक्तियाँ और कार्य बहुत कुछ ब्रिटिश संसद के समान ही हैं। यही बात राज्यों के विधान-मंडलों पर भी लागू होती है। हमारी स्थानीय संस्थाएँ भी ब्रिटिश

पद्धति के अनुसार ही बनी हैं। इसलिये ब्रिटिश संस्थाओं के ज्ञान के बिना हम अपनी राजनैतिक और प्रशासकीय व्यवस्था को ठीक ठीक नहीं समझ सकते। यही प्रधान कारण है कि हमारे विश्वविद्यालय ब्रिटिश शासन व्यवस्था के अध्ययन को हमारे विद्यार्थियों के लिये पाठ्य-क्रम में रखते हैं।

ब्रिटिश संस्थाओं को हमारे देश ने ही नहीं अन्य राष्ट्रों ने भी अपनाया है, किसी ने कम और किसी ने ज्यादा। हम पर तो हमारी राजनैतिक दासता के कारण ही वे थोपी गई थीं, किन्तु अन्य राष्ट्रों ने उनकी उपयोगिता तथा अच्छाई के कारण उन्हें पसंद किया है। ब्रिटिश संसद् को 'संसदों की जननी' (Mother of Parliaments) कहा जाना है, वह ठीक ही है। उसका वंश एक ओर कनाडा मे तो दूसरी ओर आस्ट्रेलिया में, एक ओर स्वीडन मे तो दूसरी ओर दक्षिण अफ्रीका तक के दूरस्थ देशों मे फैल गया है। ब्रिटिश पद्धति के ही आधार पर संसार के लगभग प्रत्येक सभ्य राष्ट्र ने दो सदन प्रणाली को अपनाया है। सर्वप्रथम ब्रिटेन में ही संसद् तथा मंत्रिमंडल प्रणाली का विकास हुआ था जिसके फलस्वरूप वहाँ निरंकुश राजतंत्र (Despotic Monarchy) के स्थान पर सांविधानिक राजतंत्र (Constitutional Monarchy) की स्थापना हुई थी। इसी प्रकार स्थानीय स्वशासन तथा विधि-शासन (Rule of Law) का आरम्भ भी इंगलिस्तान से ही हुआ। अनेक देशों ने अपनी स्थानीय स्वशासन की पद्धतियों को, जानबूझ कर या अनजाने में ग्रेट ब्रिटेन से ही लिया है। इस प्रकार शासन-कला में ग्रेट ब्रिटेन की बहुत बड़ी देन है तथा उसके विविध रूप हैं।* ब्रिटिश राजनैतिक पद्धति का प्रभाव बहुत व्यापक है। इसी कारण ब्रिटिश राजनैतिक पद्धति का अध्ययन अन्य किसी आधुनिक राज्य की पद्धति से पहले किया जाना चाहिये। स्वभावतः संविधान के लेखकों ने, चाहे वे ब्रिटिश हों अथवा विदेशी, ब्रिटिश-पद्धति की सराहना की है।

**मुख्य विशेषतायें**—ब्रिटिश संविधान की कई महत्त्वपूर्ण विशेषतायें हैं। पहली बात तो यह है कि वह सारे आधुनिक संविधानों में सबसे प्राचीन है। महाद्वीप यूरोप में सन् १८०० से पहले का शायद ही कोई संविधान हो; १८७० से पहले के भी थोड़े से ही संविधान हैं, और बहुत से देशों के संविधान तो प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् ही बने हैं। यही बात संसार के अन्य भागों के संविधानों पर भी लागू होती है।

* मनरो की पुस्तक 'Governments of Europe' (यूरोप की सरकारें) के निम्न उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी : 'अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों में सभ्य संसार के एक बहुत बड़े भाग का लोकतंत्रीकरण, जो अधिकांश में अंग्रेज़ी भाषा बोलने वाली जातियों के नेतृत्व में हुआ है, समस्त संसार के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्यों में से है।'

चीन तथा जापान जैसे प्राचीन देशो के मौजूदा सविधान तो हाल ही मे बने हैं, संयुक्त राज्य अमरीका के सविधान को बने भी दो शताब्दियों से अधिक समय नहीं हुआ। ब्रिटिश संविधान की प्राचीनता ही स्वयं कोई महत्त्व की बात नहीं है। उसका महत्त्व इस कारण है कि गत तेरह चौदह सौ वर्षों से उसका अनवरत और लगातार विकास होता गया, इसे उसकी दूसरी विशेषता कह सकते हैं। संविधानो के विद्यार्थी को विश्व मे किसी और देश मे ऐसा राजनैतिक विकास नहीं मिलेगा जो इतने लम्बे समय तक चलता रहा हो और फिर भी वह उग्र क्रांतियो से इतना मुक्त रहा हो तथा कहीं भी उसका प्राचीन काल से पूर्ण विच्छेद न हुआ हो। इस शृङ्खलाबद्ध और लगातार विकास मे केवल एक ही बार बाधा पड़ी थी जब क्रामवेल ने गणराज्य-व्यवस्था स्थापित की थी, किन्तु वह प्रयोग भी १२ वर्ष से अधिक नहीं चल सका। इगलिस्तान मे ऐसी कोई क्रांति नहीं हुई जिसकी तुलना १७८९ की फ्रांसीसी क्रांति या १९१७ की रूसी क्रांति से की जा सके। ब्रिटिश सांविधानिक विकास के लगभग अटूट शृङ्खलाबद्ध होने के मुख्य कारण ये हैं कि (१) ग्रेट ब्रिटेन यूरोप महाद्वीप से भौगोलिक रूप में अलग है (२) और वहां के निवासियों की प्रवृत्ति भी ऐसी है कि वे क्रांतियों के बजाय सुधारों को ही अधिक पसंद करते हैं और वे सदा यह आवश्यक नहीं समझते कि शासन कार्य तर्क या सिद्धान्त द्वारा ही किया जाये। इसी बात को अंग्रेज लेखक प्रोफेसर फ्रीमेन ने निम्न शब्दों में बलपूर्वक कहा है 'हमारी जाति का राष्ट्रीय जीवन विदेशी विजेताओं तथा आंतरिक क्रान्तियों के बावजूद भी चौदह सौ वर्षों से अटूट चला आ रहा है। हमारे इतिहास मे कोई ऐसा समय नहीं आया जब वर्तमान और अतीत का संबन्ध पूर्णतः विच्छेद हो गया हो या जब कि अंग्रेज लोग किसी सुन्दर सिद्धान्त से प्रभावित होकर सर्वथा नया संविधान बनाने के लिये इकट्ठे हुए हो। हमने प्रत्येक कदम किसी पिछले कदम के फलस्वरूप ही उठाया; हमारी विधि और सविधान मे जो भी परिवर्तन किया गया वह कोई सर्वथा नई वस्तु नहीं था वरन् किसी पुरानी परिपाटी का विकास ही था। कभी हमारी प्रगति तेज रही, कभी धीमी, कभी हम रुके से प्रतीत होते थे, कभी कभी पीछे हटते से, किन्तु राजनैतिक विकास की महान प्रगति कभी पूर्णतः रुकी नहीं, जब से ट्यूटन विजेताओं ने आकर ब्रिटेन को इगलैंड का रूप देना आरम्भ किया, तब से वह प्रगति स्थायी रूप से कभी नहीं रुकी।'*

यह एक आधारभूत बात है कि ब्रिटिश संविधान का विकास लम्बे काल मे अटूट शृंखला के रूप मे हुआ है। इसी कारण उसमे कई विशेषताएं हैं। पहली बात तो यह है कि इसके फलस्वरूप ब्रिटिश संविधान स्वयं एक विकसित विधान है, रचना नहीं (It is a growth and not a make) दूसरी बात, इससे यह

*'English Constitution', page 19.

लचकदार बन गया है। तीसरी बात, इसी कारण यह अधिकांश में अलिखित है, और अंततः इसी कारण उसके सिद्धान्त और व्यवहार में विचित्र विरोध है। अब हम इन सब विशेषताओं के विषय में कुछ शब्द कहेंगे।

वैसे तो यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक संविधान ही जीवित और विकासमय होता है, परन्तु ब्रिटिश संविधान के विषय में विकास शब्द का एक विशेष अर्थ है जो कि अन्य संविधानों पर लागू नहीं होता। सिडनी लो का यह कथन सत्य ही है कि अन्य संविधानों की तो रचना हुई है, पर ब्रिटिश संविधान का विकास हुआ है तथा वह शनैः शनैः परिस्थितियों के अनुरूप ढलता गया है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि यद्यपि संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में भी परम्पराओं तथा प्रथाओं द्वारा और उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) के निर्णयों द्वारा परिवर्तन होता रहा है जिससे कि वह उस परिवर्तनशील देश की आवश्यकताओं के अनुरूप बनता गया है, तथापि एक निश्चित तारीख है जब फिलडेलफिया में एकत्रित प्रतिनिधियों ने उसकी रचना की थी। इसी प्रकार एक निश्चित तारीख को ही वे तीन आधारभूत विधियां बनाई गईं थीं जिन पर तृतीय फ्रांसीसी गणराज्य का संविधान आधारित था। इससे अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु ऐसी कोई तारीख नहीं बताई जा सकती जब ब्रिटिश संविधान की रचना हुई हो और कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे उसके निर्माता होने का श्रेय दिया जा सके। जैसा कि प्रोफेसर फ्रीमैन ने उपरोक्त उद्धरण में कहा है, अमरीकियों, फ्रांसीसीयों, स्विसजनों, रूसियों आदि के समान कभी अंग्रेजों के प्रतिनिधि एक नया संविधान बनाने के लिये इकट्ठे नहीं हुए। यही कारण है कि हमें अमरीकी, फ्रांसीसी या स्विस संविधान की प्रति उपलब्ध हो सकती है, किन्तु ब्रिटिश संविधान की प्रति का मिलना असम्भव है। ब्रिटिश संविधान किसी एक लेख्य (Document) में उल्लिखित नहीं है और इसका कोई एक स्रोत नहीं है, अपितु यह राजाज्ञाओं (Charters) तथा विधानों, परिपाटियों तथा परम्पराओं, कामन विधि तथा न्यायिक विनिश्चयों (Judicial decisions) का विचित्र सम्मिश्रण अथवा संग्रह है। इसके उपबन्धों को संहिता (Code) रूप देने का कभी प्रयास नहीं किया गया और सम्भवतः ऐसा कभी होगा भी नहीं। एक सुविख्यात फ्रांसीसी लेखक ने कहा है कि 'अंग्रेजों के संविधान के विभिन्न भाग वैसे ही हैं जैसा कि इतिहास की घटनाओं ने उन्हें बना दिया, अंग्रेजों ने उन्हें कभी एकत्र करने का, उनका श्रेणी विभाजन करने का या उन्हें पूर्ण बनाने का अथवा एक संगत तथा संकलित रूप देने का प्रयत्न नहीं किया।'*

क्योंकि ब्रिटिश संविधान का विकास शनैः शनैः हुआ है जिसमें कुछ परिवर्तन

* 'अंग्रेज़ी राजनैतिक संस्थाओं' (English Political Institutions) के पृष्ठ २८-२९ पर मेरियट द्वारा बोटमी (Boutmy) का उद्धरण।

जानबूझ कर किये गये हैं तथा अन्य परिवर्तन अवसर के अनुकूल हो गये हैं, इस कारण वह अधिकांश में अलिखित है। कभी कभी इस बात पर आवश्यकता से अधिक जोर दे दिया जाता है। अलिखित तथा लिखित सविधानो का अन्तर कोई महत्त्व की बात नहीं है, स्ट्रांग जैसे कुछ लेखको ने तो उस अन्तर को गलत ही बताया है। कोई संविधान पूर्णतः लिखित या पूर्णतः अलिखित नहीं हो सकता, प्रत्येक संविधान मे दोनों प्रकार के तत्त्व होना अनिवार्य है। संयुक्त राज्य अमरीका के सविधान मे, जिसे लिखित संविधानो का सुन्दर उदाहरण समझा जाता है, कई सांविधानिक परिपाटियां हैं जो अलिखित हैं। यहाँ तक कि पिछले भारतीय संविधान मे भी, जो विकास-शक्ति से हीन था, कुछ अलिखित तत्त्व आ गये थे। ब्रिटिश सविधान को अलिखित बताने का केवल यही आशय है कि इसके समस्त उपबन्धों को ग्रन्थबद्ध या कोडीफाई नहीं किया गया है। यह कार्य असंभव सा दिखाई देता है, क्योंकि उसकी परिपाटियां तथा अभिसमय बहुत विस्तृत तो हैं ही, उनमे से कई इतने अनिश्चित भी हैं कि उन्हे लिखित रूप मे रखा नहीं जा सकता। यह ध्यान रखना होगा कि ब्रिटिश सविधान मे अलिखित अंश का अनुपात (proportion) अन्य संविधानों से अधिक है। यह भी एक कारण हो सकता है कि अन्य सविधानों की तुलना मे इसे मुख्यतः अलिखित बताया जाता है। ब्रिटिश सविधान के प्रमुख लिखित तथा अलिखित अंशो का वर्णन अन्य प्रसंग मे किया जायेगा।*

ऊपर बताई गई विशेषता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण गुण यह है कि ब्रिटिश संविधान लचकदार (flexible) है। उसकी जीवन-शक्ति और बल का स्रोत यह लचकीलापन ही है, अलिखित रूप नहीं। लचकदार होने के कारण ही प्रधानतः हम उसे जीवित तथा विकासशील सविधान कह सकते हैं। लचकदार होने के कारण ही वह अवस्थानुसार समय समय पर जनता की आवश्यकताओ के अनुरूप तथा अनुकूल बनाया जा सका तथा उसमे सुधार किये जा सके और किये जा सकेंगे। लचकीलेपन का सर्वोत्तम उदाहरण यह है कि विगत महायुद्ध मे अमरीकी लोगों को दो बार राष्ट्रपति का निर्वाचन करना पड़ा, जिससे उनका ध्यान आकृष्ट हुआ, किन्तु ब्रिटिश संसद् ने अपनी ५ वर्ष की निर्धारित अवधि को सुगमता से बढ़ा दिया और इस प्रकार राष्ट्र को उस संकट काल मे साधारण निर्वाचन के झंझट से बचा लिया। ब्रिटिश जनता ने देखा कि १९३९ मे उनका प्रधान मंत्री जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करने के लिये योग्य नहीं था, अतः वे उसे सुगमता से हटा कर नया प्रधान मंत्री नियुक्त कर सके, क्योंकि उनका संविधान लचकदार है। यदि अमरीकी लोग

---

*यह इस अर्थ में अलिखित है कि यह किसी तिथि विशेष को बन कर स्वीकार नहीं हुआ।

यह अनुभव करें कि उनके अधिकारी अकुशल हैं तो उन्हे वे मध्यधार मे बदल नहीं सकते।

ब्रिटिश संविधान को लचकीला इस कारण कहा जाता है क्योंकि उसमे संविधान-निर्मात्री सत्ता (Constituent Authority) और सामान्य विधि-निर्मात्री सत्ता (Ordinary Law-making Authority) मे कोई अन्तर नहीं है। ब्रिटिश संसद सामान्य विधि बनाने के लिये जिस प्रक्रिया का प्रयोग करती है उसी प्रक्रिया द्वारा वह संविधान में भी परिवर्तन या संशोधन कर सकती है। ग्रेट ब्रिटेन मे सांविधानिक परिवर्तन करने के लिये कोई विशेष व्यवस्था नहीं है और सांविधानिक विधि तथा साधारण विधि मे ऐसा कोई अन्तर नहीं है जैसा संयुक्त राज्य मे है। अतएव ब्रिटिश संविधान मे केवल परिपाटी तथा परम्पराओं द्वारा ही परिवर्तन नहीं होता, वरन् संसद द्वारा बनाये गये अधिनियमो से भी हो सकता है। आजकल सांविधानिक परिवर्तन करने का सबसे प्रभावी तरीका संसद की विधियां ही हैं। किन्तु यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि यद्यपि ब्रिटिश संविधान सबसे अधिक लचकदार है और उसे आसानी से बदला जा सकता है फिर भी वहां के लोग रूढ़ी-प्रेमी होने के कारण उसे आसानी से नहीं बदलते।

ब्रिटिश संविधान के लचकीलेपन से सबन्धित एक और विशेषता यह है कि वहाँ संसद की सम्पूर्ण वैधानिक प्रभुता (Legal Sovereignty) है। ऊपर आप देख चुके हैं कि वह सब प्रकार की सांविधानिक क्रियाओं को बदल सकती है और उनमे संशोधन कर सकती है, और उसे इस प्रयोजन के लिये कोई विशेष प्रक्रिया का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है। उसकी विधान-निर्माण की क्षमता (Legislative competence) पर कोई वैधानिक सीमा नहीं है। वैधानिक रूप में, उसे किसी राजाज्ञा को, विधि या समझौते को बदलने या उनको रद्द करने की शक्ति है; वह किसी परिपाटी को समाप्त कर सकती है और कॉमन लॉ के किसी नियम को उलट सकती है। वह ऐसी व्यवस्था भी कर सकती है कि किसी न्यायालय के विनिश्चय पर अमल न किया जाये। उससे ऊँची कोई ऐसी सत्ता नहीं है जो उसके अधिनियमो पर अपना निर्णय दे सके और उन्हें इस आधार पर असांविधानिक घोषित कर सके कि वे देश की विधि से असंगत हैं। ब्रिटिश संसद की किसी भी विधि को इस प्रकार असांविधानिक घोषित नहीं किया जा सकता, जैसे कि अमरीकी कांग्रेस के अधिनियम को वहां का उच्चतम न्यायालय असांविधानिक घोषित कर सकता है। संसद की प्रभुता ब्रिटिश सांविधानिक पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है। किन्तु यह वैधानिक स्थिति ही है; वास्तव मे संसद को नैतिक तथा व्यावहारिक बन्धनो के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। शनैः शनैः यह विचार जोर पकड़ता जा रहा है कि शासन पद्धति मे कोई बड़ा परिवर्तन संसद द्वारा

तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक कि मतदाताओं को उस पर अपना निर्णय देने का अवसर न मिल जाये। किन्तु यह सिद्धान्त अभी तक अच्छी तरह स्थापित नहीं हो सका है।

किन्तु एक अर्थ में ब्रिटिश संसद् की किसी विधि को भी असांविधानिक कहा जा सकता है। यदि कोई विधि ब्रिटिश परम्पराओं के विपरीत हो और अन-ब्रिटिश समझी जाये तो ब्रिटिश जनता उसे असांविधानिक बता सकती है, जैसे कि किसी व्यक्ति को विधि की उपयुक्त प्रक्रिया के बिना कारागृह में निरोधित करना या जूरी (पंचों) द्वारा मुकद्मे की प्रथा को समाप्त करना ब्रिटिश जनता सहन नहीं करेगी।

ब्रिटिश संविधान की सबसे अनन्य और निराली विशेषता यह नहीं है कि वह लचकदार है या संसद् को अबाध वैधानिक क्षमता प्राप्त है, क्योंकि ये दोनो बातें अन्य राज्यों के संविधानों में भी पाई जाती हैं। इटली या जर्मनी जैसे समष्टिवादी राज्य का सविधान (विगत युद्ध में उनकी पराजय से पूर्व) ग्रेट ब्रिटेन के समान ही लचकदार हो सकता था, और न्यूज़ीलैंड की संसद् को वैसी ही सर्वोच्चता प्राप्त है जैसी ग्रेट ब्रिटेन की संसद् को है। ब्रिटिश संविधान का निराला गुण है उसकी अवास्तविकता, उसके शासन के सिद्धान्त और आचरण में महान अंतर। एक लेखक ने सुन्दर शब्दों मे कहा है कि ग्रेट-ब्रिटेन मे कोई बात 'जैसी दिखाई देती है वैसी नहीं है, या जैसी है वैसी कभी दिखाई नहीं देती।' इस समय विद्यमान शताब्दी में शासन का जो चित्र कार्य रूप में दिखाई देता है वह उससे बहुत भिन्न होगा जो उसके लिखित अभिलेखों (Records) और प्रपत्रों (Forms) से अथवा उसकी कार्यवाहियो में प्रयुक्त भाषा के आधार पर बनाया जाये। ब्रिटिश संविधान की वास्तविक (Actual) और औपचारिक (Formal) स्थिति मे विचित्र विरोध है। यदि हम उस भाषा को देखें जो ब्रिटिश संसद के अधिनियमो मे प्रयुक्त होती है तो यह अनुमान किया जा सकता है कि ग्रेट ब्रिटेन में निरंकुश राजतंत्र है, क्योंकि अधिनियमो में लिखा होता है कि उनका निर्माण बादशाह ने लार्डों (सामंतो) और लोक-प्रतिनिधियो की सहमति और मंत्रणा से किया। सरकार के सब अधिकारी राजा के नाम से नियुक्त होते हैं। सेना, नौसेना, नभबल (Air Force), डाकघर, न्यायालय और यहाँ तक कि विरोधी दल भी राजा महोदय का ही होता है। राजकीय लेखों की भाषा से आसानी से यह पता नहीं लगेगा कि देश मे जनता की सरकार है। सिद्धान्त के अनुसार तो संसद् ही प्रभुसत्ता है; वही मन्त्रिमडलो को बनाती या बिगाडती है, और सरकार की विधायिनी (Legislative) तथा वित्तीय कार्यवाहियो (Financial Activities) पर उसका पूरा नियंत्रण है; पर वास्तव मे वह मंत्रिमंडल की दास बन गई है; विधान तथा वित्त के विषय मे वास्तविक अधिकार और नियंत्रण संसद के हाथ से निकलकर मंत्रिमंडल के हाथ मे चला गया है। असल मे यह वास्तविकता

की अवहेलना ही है कि मंत्रिमंडल को केवल कार्यपालिका (Executive) कहा जाता है जबकि वह विधान-मंडल का भी कार्य करता है। इस बात का दूसरा उदाहरण यह है कि सिद्धान्त के अनुसार तो राजा ही अपने मंत्रियो को चुनताहै और वे 'राजा महोदय के सेवक' कहलाते हैं, किन्तु सब जानते हैं कि वे प्रधान मंत्री की पसंद के व्यक्ति होते हैं और जनता के सेवक होते हैं।

सिद्धान्त तथा आचरण में इस अन्तर का एक कारण तो यह है कि ब्रिटिश संविधान का विकास एक विशेष प्रकार से हुआ है और दूसरा कारण लोगों की आदतें और उनका स्वभाव है। ग्रेट ब्रिटेन में आरम्भ में निरंकुश राजतंत्र था। इसलिये वहाँ उसी के अनुरूप राजसी प्रथायें तथा अभिव्यक्तियाँ (Forms of expressions) प्रचलित हो गईं। निरंकुश राजा से जनता को शक्ति का हस्तांतरण एकदम क्रांति द्वारा न होकर धीरे धीरे हुआ था इस कारण शासन की रचना तथा उसके अङ्गो के औपचारिक अधिकारों को अधिकांश में न बदल कर केवल उनके संतुलन मे परिवर्तन कर दिया गया। राजा अब भी शक्ति का प्रतीक है यद्यपि वास्तविक शक्ति उसके हाथ से बिल्कुल निकल चुकी है।

ब्रिटिश लोगों ने ढाई शताब्दियों से कोई क्रान्ति नहीं की; अतः उन्हें अतीत को मिटाने की अपेक्षा नहीं हुई जैसी कि महाक्रान्ति के पश्चात् फ्रांसीसी लोगो को हुई थी। उन्होंने तात्कालिक आवश्यकताओं के लिये व्यवस्था करके संतोष कर लिया तथा अपने संविधान को संहिता रूप नहीं दिया। परिणाम यह हुआ कि संविधान मे ऐसी प्राचीन बाते अब भी चल रहीं हैं जिनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है; सिद्धान्त और आचरण का अन्तर स्थायी हो गया है। अंग्रेज लोग व्यावहारिक हैं और तर्क अथवा संगति की जरा भी चिन्ता नहीं करते।

अब ब्रिटिश संविधान के एक और महत्त्वपूर्ण गुण की ओर ध्यान आकृष्ट करना है, वह है विधि-शासन (Rule of Law)। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अंग्रेज इसे अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बहुमूल्य रक्षाकवच समझते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका जैसे देशों मे नागरिकों की व्यक्तिगत स्वाधीनताओ को संविधान मे अधिकार-पत्र के रूप मे रख दिया जाता है, जिनका उल्लंघन अथवा अवहेलना कोई सरकार नहीं कर सकती। ग्रेट ब्रिटेन मे नागरिकों के अधिकार किसी एक लेख्य या विधि मे एकत्र या परिभाषित नहीं हैं; उनमे से कई का तो उल्लेख किसी भी अधिनियम मे नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अंग्रेजों के अधिकार तथा स्वतंत्रताएँ अमरीकियो की अपेक्षा कम सुरक्षित हैं। ग्रेट ब्रिटेन मे नागरिक स्वतन्त्रता संसार के किसी भाग से कम सुरक्षित नहीं है। यह सुविख्यात विधि-शासन का ही प्रभाव है जिससे कि यह कार्य पूरा हो जाता है। इस बहुमूल्य सिद्धान्त को भी कभी अधिनियम का रूप नहीं दिया गया: किन्तु वह बहुत से संसदीय विधानों तथा

न्यायिक विनिश्चयो मे सन्निहित है, और इसी कारण वह सामान्य विधि (Common Law) का निश्चित भाग वन गया है। डायसी (Dicey) का अनुसरण करके हम विधि-शासन को निम्नांकित तीन सिद्धान्तो मे विभाजित कर सकते हैं :—

१. 'कि जब तक सामान्य वैधानिक प्रणाली से देश के सामान्य न्यायालयों मे कानून का स्पष्ट उल्लंघन सिद्ध न हो जाये, तब तक कोई व्यक्ति दंड के योग्य न होगा और उसके शरीर या सपत्ति को विधिपूर्वक क्षति नहीं पहुंचाई जायेगी।'

२. 'कि केवल यही वात नहीं है कि कोई व्यक्ति विधि से परे नहीं है, वल्कि (यह भिन्न वात है) यहाँ प्रत्येक व्यक्ति, चाहे उसका पद या स्थिति कुछ भी हो, राज्य की साधारण विधि के अधीन है तथा साधारण न्यायालय के क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) के अन्तर्गत है।'

३. 'कि व्यक्तियों के अधिकारों का स्रोत अन्य देशों में संविधान होता है, किन्तु हमारे यहाँ उन अधिकारों को न्यायालयों ने परिभाषित तथा लागू किया है और संविधान उनका स्रोत न होकर परिणाम है।'*

पहले सिद्धान्त का अर्थ सीधा और स्पष्ट है कि सरकार किसी व्यक्ति को पकड़ नहीं सकती और उसे हवालात मे नजरवन्द नहीं कर सकती, उसकी संपत्ति या हरण या उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कम नहीं कर सकती, जब तक कि सरकार किसी ऐसे कानून का आश्रय न ले जिसको न्यायालय स्वीकार और लागू करते हों। नकारात्मक रूप में हम कह सकते हैं कि इसके अनुसार, सरकार के हाथ मे निरंकुश शक्ति नहीं होनी चाहिये। इससे सरकार की निरंकुश कार्यवाही से व्यक्तिगत नागरिक की रक्षा होती है। दूसरे शब्दों मे इससे विधि की सर्वोच्चता की रक्षा होती है। किसी को तब तक दंड नहीं दिया जा सकता जब तक कि न्यायालय को सतोष न हो जाये कि उसने विधि का उल्लंघन किया है। इसका अर्थ भली भांति समझने के लिये हम उसकी भारत से तुलना कर सकते हैं जहाँ कुछ वर्ष कोई विधि-शासन (Rule of Law) नहीं था। ब्रिटिश भारतीय प्रान्त की कार्यपालिका किसी व्यक्ति को १८१८ के विनियम ३ के अधीन गिरफ्तार करके नजरवन्द कर सकती थी, वह किसी व्यक्ति को संदेह पर ही गिरफ्तार करके अपने न्यायिक पदाधिकारियों द्वारा उस पर बंद कमरे मे मुकदमा चला सकती थी। भारतीय राज्यों मे हालत और भी खराब थी। राज्य के अधिकारी किसी प्रजाजन को राज्य से निकाल सकते थे और उसके-विरुद्ध कोई जुर्म सिद्ध किये विना उसकी सम्पत्ति को जब्त कर सकते थे। इस देश मे द्वितीय विश्व युद्ध मे जो कुछ हुआ था वह विधि-शासन के सर्वथा विरुद्ध था।

दूसरे सिद्धान्त का यह अर्थ है कि सारे नागरिक, चाहे वे साधारण हों चाहे सरकारी अफसर हों, देश की साधारण विधि के अधीन हैं और साधारण न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत हैं। इसके अनुसार किसी व्यक्ति या जनवर्ग को कोई

विशेष अधिकार या स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती। वहां ऐसी बात नहीं है कि साधारण नागरिकों के बीच के विवादों का निर्णय करने के लिये एक प्रकार की विधि तथा न्यायालय हों और सरकारी सेवकों के विरुद्ध उनके राजकीय कार्यों से हुई हानि या क्षति के लिये नागरिकों द्वारा चलाये गये मुकदमों का फैसला करने के लिये दूसरी प्रकार की विधि तथा न्यायालय हों। ऐसी व्यवस्था फ्रांस में तथा महाद्वीप यूरोप के अन्य देशों में है। इस पद्धति को प्रशासकीय विधि और न्यायालय (Administrative Law and Law Courts) कहते हैं और इस पर आगे चलकर विस्तार में विचार किया जायेगा।

तीसरा सिद्धान्त पहले दो सिद्धान्तों के बराबर महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसमें केवल इसी बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है कि सांविधानिक विधि नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रत्याभूति नहीं है, वरन् वह विधि स्वयं इस प्रकार बनी है कि न्यायालयों ने निरंकुश राजाओं के मनमाने तथा अत्याचारपूर्ण कार्यों से नागरिकों की रक्षा करने का प्रयत्न किया था। इसमें भी वही बात निहित है जो पहले कही जा चुकी है कि ब्रिटिश संविधान शनैः शनैः शृङ्खलाबद्ध घटनाओं का परिणाम है जिनसे ब्रिटिश राजाओं की शक्ति सारांश में छिन गई और उसके केवल बाह्य चिह्न ही शेष रह गये।

कुछ प्रसिद्ध लेखकों के विचार में इंगलिस्तान में हाल में विधि-शासन (Rule of Law) का सम्मान कम हो गया है। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों में राज्य प्रतिरक्षा अधिनियम (Defence of Realm Act) जैसी विधियां पारित की गई थीं जिनसे कार्यपालिका को शक्ति दे दी गई थी कि वह जन सुरक्षा के हित के लिये किसी व्यक्ति को बन्दी बनाने का आदेश दे सकती है। किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि युद्धकाल में इंगलिस्तान में जो उपाय किये गये उनसे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को इतनी क्षति नहीं पहुँची जितनी कि हमारे देश में या फ्रांस में पहुँची थी। यह भी ध्यान रखना होगा कि जहाँ तक विधि-शासन के अनुसार साधारण विधि और प्रशासकीय विधि (Administrative Law) में भेद नहीं किया जा सकता, वहाँ तक अंग्रेज लोग विधि-शासन की सर्वोच्चता का इतना गर्व नहीं कर सकते जितना पहले कर सकते थे। कारण यह है कि वहाँ प्रशासकीय अथवा कार्यपालिका विधानों का परिमाण बढ़ता ही जाता है।† किन्तु जहाँ तक तीनों सिद्धान्तों में से पहले का सबंध है, यह कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन ब्रिटिश परंपरा के विरुद्ध है तथा जब तक कि राष्ट्रीय आपात में इसकी जरूरत न हो तब तक ब्रिटिश जनता उसे सहन नहीं करेगी।

---

*Marriot, *op. ct*, pp. 35-36 (मेरियट, पृष्ठ ३५-३६)

† See Marriot. *op ct.*, XLI—ii.

ब्रिटिश प्रणाली की कुछ और विशेषताओं पर भी ध्यान देना चाहिये। यह संघीय न हो कर एकात्मक है। वहाँ केन्द्रीय और स्थानीय अथवा प्रादेशिक सरकारों के मध्य विधिरूप मे कोई वैधानिक शक्ति विभाजन नहीं है; शासन की शक्तियां समष्टि रूप मे एक सरकार मे केन्द्रित हैं और उनका प्रयोग एक केन्द्र से होता है। हाँ, वहाँ काउन्टी, बॉरो और अन्य स्थानीय क्षेत्र हैं, जिन्हें स्थानीय मामलों के प्रबन्ध के विषय में बहुत सी शक्ति और प्राधिकार प्राप्त हैं, किन्तु ये सब शक्तियां केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदान की हुई हैं और देने वाली सत्ता अपनी इच्छानुसार उन्हें कम कर सकती है या वापस ले सकती है। स्थानीय निकाय (Local bodies) तो केन्द्र के अधीन होते ही हैं और केवल प्रदत्त (delegated) शक्तियों का प्रयोग करते हैं। दूसरी बात यह है कि इस पद्धति मे शक्तियों का पार्थक्य (Separation of Powers) और उत्तरदायित्व का सकेन्द्रण (Centralisation of responsibilities) ये दोनों सिद्धान्त समाविष्ट हैं यद्यपि दोनों परस्पर असंगत से हैं। पहले सिद्धान्त के अनुसार उसमे तीन विभिन्न अङ्ग है— कार्यपालिका (Executive), विधान-मंडल (Legislature) तथा न्यायपालिका (Judiciary)— और उनके क्षेत्र भी भिन्न भिन्न हैं। कार्यपालिका तथा प्रशासन पर विधान-मंडल (Legislature) का नियन्त्रण इतना नहीं है जितना फ्रांस और संयुक्त-राज्य अमरीका मे है, न्यायपालिका (Judiciary) विधान-मंडल (Legislature) तथा कार्यपालिका (Executive) पर अपनी न्याय-समीक्षा (Judicial review) द्वारा नियंत्रण नहीं कर सकती। किन्तु शक्तियों का यह पार्थक्य दिखावटी है तथा संविधान का सिद्धान्त चाहे कुछ भी हो, पर समस्त शक्ति तथा सत्ता का सकेन्द्रण वहां मन्त्रि-मंडल मे है जैसा किसी अन्य देश मे नहीं पाया जाता। शासन मे मन्त्रि-मण्डल का नेतृत्व तथा आधिपत्य, जो कई आलोचकों की दृष्टि मे डिक्टेटरशाही ही है, ब्रिटिश राजनैतिक पद्धति की एक मुख्य विशेषता है। अन्ततः यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वह एक मिश्रित संविधान है, उसमें राजतंत्रीय (monarchic), कुलीनतंत्रीय (aristocratic) अथवा अभिजात-तंत्रीय (oligarchic) और लोकतंत्रीय (democratic) सब प्रकार के सिद्धान्त समाविष्ट हैं। राजा, जिसे अंग्रेज प्रायः 'हमारा सर्वोच्च प्रभु, राजा' कहते हैं, वही इस संविधान का राजतंत्रीय अङ्ग है, हाउस आफ लार्ड्स उसका कुलीनतंत्रीय अङ्ग है और हाउस आफ कामन्स (लोकसभा) उसका लोकतंत्रीय अङ्ग है। इन तीनों में लोकतंत्रीय अङ्ग सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली है, और लोकसभा की केन्द्रीय स्थिति होने के कारण ब्रिटिश व्यवस्था को लोकतंत्रीय कहा जा सकता है। हम उसे लोकतंत्रीय इसलिये कह सकते हैं कि वहां शासन जनता के नाम से चलता है और साधारण निर्वाचन मे जनता स्वतंत्रता से जो मत प्रकट करती है उन्हीं के अनुसार चलता है। निर्वाचन स्वतन्त्र होते हैं और विरोधी दल को कुचलने या दबाने

का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। वहां वाक्-स्वातन्त्र्य है और सभा संस्था बनाने की पूरी स्वतन्त्रता है जो लोकतन्त्र में आवश्यक है। वहाँ पूंजीवाद और साम्राज्यवाद होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि जहां तक अङ्गरेज लोगों का सम्बन्ध है, उनकी प्रणाली लोकतन्त्रीय है। निर्वाचनों में विजय पाकर श्रमदल की सरकार बन जाना इस बात को सिद्ध करता है।

**ब्रिटिश संविधान के अङ्ग**— ऊपर बताया जा चुका है कि ब्रिटिश संविधान एक लेख्य में सन्निहित नहीं है, यह विभिन्न तत्त्वों के मेल से बना है। ये तत्त्व दो मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं, (१) संविधान की विधियां, और (२) उसकी परिपाटियां (Customs) या अभिसमय (Conventions)। यह नहीं कहा जा सकता कि इन दोनों भागों में यही अन्तर है कि एक लिखित है तो दूसरा अलिखित है, क्योंकि सांविधानिक विधि का भी बहुत सा भाग अभी तक लिखित रूप में नहीं आया है। उनमें अन्तर यह है कि न्यायालय केवल सांविधानिक विधि को मान्यता देंगे तथा लागू करेंगे, वे सांविधानिक अभिसमयों (Conventions) को नहीं मानेंगे तथा लागू नहीं करेंगे, चाहे वे कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों और कितने ही समय से क्यों न चले आ रहे हों।* जब किसी सांविधानिक परिपाटी को न्यायालय स्वीकार कर लेते हैं तब वह सांविधानिक विधि का अङ्ग बन जाती है।

संविधान की विधि में भी चार विभिन्न वर्ग हैं। पहले वर्ग में मेगना कार्टा तथा अधिकार-पत्र (Bill of Rights)† आदि ऐतिहासिक लेख्य हैं, जिनमें वे समझौते हैं जो सङ्कट काल में राजा तथा उसकी प्रजा में हुए थे। दूसरे वर्ग में संसदीय विधियां हैं जैसे १६७६ का बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम (Habeas Corpus Act of 1679), १७०१ का समझौता अधिनियम (Act of Settlement), १८३२, १८६७, और १८८४ के सुधार अधिनियम (Reforms Acts), १६१८ का लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम (People's Representation Act), वे विविध अधिनियम जिन से स्थानीय स्वशासन का सुधार किया गया है, तथा १६११ का संसद् अधिनियम (Parliament Act) हैं। उनमें से कुछ में राजा की शक्तियां परिभाषित हैं, और कुछ में मताधिकार का विनियमन है, और शेष में जनता के नागरिक अधिकार प्रत्याभूत हैं। सांविधानिक विधि का तृतीय महत्त्वपूर्ण तत्त्व वे न्यायिक विनिश्चय हैं जिन से चार्टरों और संसदीय विधियों के अर्थ निश्चित किये गये हैं तथा उनकी सीमाओं को परिभाषित किया है। ये तीनों वर्ग लिखित रूप में हैं। चतुर्थ वर्ग में कॉमन लॉ (Common Law) के सिद्धान्त हैं जिनके अनुसार सरकार के कृत्यों, शक्तियों, तरीकों और सम्बन्धों का विनियम होता है

* इस अन्तर का सविस्तार वर्णन अगले पृष्ठों पर देखिये।

† मेगना कार्टा तथा अधिकार-पत्र के लिये अगला अध्याय देखिये।

जैसे वाक्-स्वातन्त्र्य तथा सभा संस्था बनाने के अधिकार, राजा के परमाधिकार (Prerogatives), जूरी द्वारा मुकद्मे का अधिकार आदि हैं। इन सिद्धान्तों को संसद् ने कभी नहीं बनाया, वरन् ये परिपाटी तथा परम्परा के आधार पर बने हैं। किन्तु विधि-न्यायालय उन्हें मान्यता देते हैं। वे सिद्धान्त तथा संविधान की परिपाटियां अथवा अभिसमय ब्रिटिश संविधान के लिखित भाग में आते हैं जिनका नीचे वर्णन करना है, किन्तु संविधान की विधि के प्रथम तीन तत्त्व उसके लिखित भाग में शामिल हैं। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, लिखित भाग बढ़ता जाता है।

Conventions

**सांविधानिक अभिसमय**— चार्टर, विधियां, न्यायिक विनिश्चय और कॉमन लॉ के सिद्धान्त, जिनका ऊपर निर्देश किया गया है, ब्रिटिश सविधान के एक भाग में ही समाविष्ट हैं। दूसरे भाग के अन्तर्गत, जो अब अधिक बड़ा है, सांविधानिक अभिसमय आते हैं। सांविधानिक अभिसमयों में वे सब समझौते, रीतियां तथा आचरण शामिल हैं, जो लिखित विधि से बाहर हैं तथा उसके द्वारा मान्य भी नहीं हैं, तो भी उनका प्रभाव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि लोक अधिकारियों की कार्यवाहियों तथा संबन्धों का भी निर्धारण उनके द्वारा होता है। उनसे ही यह निश्चय होता है कि संविधान का कानूनी ढांचा कैसे चलेगा; उन्हीं के कारण यह ढांचा जनता की परिवर्तनशील सामाजिक आवश्यकताओं तथा राजनैतिक विचारधाराओं के अनुरूप चलता है। यह कहा जा सकता है कि अभिसमयों से संविधान के अस्थिपिंजर में रक्तमांस का आवरण चढ़ता है, अथवा वे संविधान-यन्त्र के लिये तेल के समान होते हैं। उन्हीं के कारण ब्रिटिश सविधान का विकास हो सका है और वह समय की आवश्यकताओं के अनुरूप बनता चला गया है। ब्रिटिश संविधान के सारे अभिसमयों की सूची बनाना असम्भव है, किन्तु उनके उदाहरण स्वरूप कुछ सिद्धान्तों का उद्धरण दिया जा सकता है, जिन्हें राजनीतिज्ञों ने मान्यता दी है तथा उन पर आचरण किया है। उनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं :

१. संसद् प्रतिवर्ष एक बार अवश्य बुलाई जानी चाहिये। २. जो मंत्रिमंडल लोकसभा का विश्वासपात्र न रहे उसे त्यागपत्र दे देना चाहिये, जब तक कि वह उस सभा का विघटन (Dissolution) न करवा सके। ३ राजा प्रायः मन्त्रिमंडल की मन्त्रणा पर सभा का विघटन कर देता है, यदि हाल ही में उसका विघटन न हुआ हो। ४. यदि मतदाताओं का निर्णय मंत्रिमंडल के विरुद्ध हो तो उसे पदत्याग करके उस दल के लिये स्थान छोड़ देना चाहिये जिसे बहुमत प्राप्त हो गया हो। ५. राजा सरकार का निर्माण करने के लिये बहुसंख्यक दल के नेता को ही बुलाये। ६. मन्त्रिमण्डल राजा को जो भी मन्त्रणा दे उसके विषय में वह सामूहिक रूप से संसद् के प्रति उत्तरदायी है। ७ जब तक संसद् के प्रति उत्तरदायी मन्त्री राजा को कोई मन्त्रणा न दे तब तक राजा कुछ नहीं कर सकता। ८. जब तक राजा सिफ़ारिश

न करे तब तक धन-व्यय सम्बन्धी या कोई करारोपण सम्बन्धी किसी प्रस्ताव पर लोकसभा विचार नहीं कर सकती।* ९. संसद् द्वारा पारित विधेयक पर राजा को अपनी अनुमति देनी होती है। १०. लोकसभा के अध्यक्ष (Speaker) को दलबन्दी से दूर रहना चाहिये। ११. पिछली लोकसभा के अध्यक्ष को, जब तक वह चाहे, उसके निर्वाचन-क्षेत्र से निर्विरोध चुनकर अध्यक्ष बना दिया जाता है। १२. लॉ-लार्डों के अतिरिक्त अन्य पीयर (Peer) लार्डसभा के न्यायिक (Judicial) कार्य में भाग नहीं लेते।

उपर्युक्त सूची से पता लगेगा कि ब्रिटेन की सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल-प्रणाली सांविधानिक अभिसमयों पर ही निर्भर है। इस संबन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि मंत्रिमंडल-प्रणाली ब्रिटिश संविधान-यंत्र का मूलभूत आधार है जिसके बिना उसका विद्यमान रूप बना नहीं रह सकता। अतएव चाहे वे अभिसमय किसी विधि-ग्रन्थ मे नहीं हैं और देश की विधि के अन्तर्गत नहीं हैं, फिर भी वे क़ानूनों के समान ही ब्रिटिश संविधान के आवश्यक अङ्ग हैं। कोई भी विद्यार्थी उनकी अवहेलना करके ब्रिटिश संविधान को समझने की सम्भवतया आशा नहीं कर सकता।

इंगलिस्तान तो अभिसमयों का प्रमुख स्थान है ही, किन्तु हम यह भी नहीं कह सकते कि वे केवल ब्रिटिश संविधान मे ही पाए जाते हैं। संसार में ऐसा कोई संविधान नहीं हो सकता जिसमें कालक्रम से अभिसमय न बन जाते हों। ये तो सब राजनैतिक व्यवस्थाओं में पाये जाते हैं। किन्तु ब्रिटेन के संविधान-तंत्र में प्रथाओं और अभिसमयों का महत्त्व जितना है उतना अन्यत्र नहीं। जिन मामलों के लिये अन्य देशों के संविधानों में लिखित विधियां बन गई हैं, उनका भी विनियमन अभी तक ग्रेट ब्रिटेन में अभिसमयों तथा रीतिरिवाजों द्वारा होता है। इसका कारण एक तो यह है कि ब्रिटिश राजनैतिक पद्धति का विकास एक विशेष प्रकार से हुआ है तथा दूसरा कारण अंग्रेजों का राष्ट्रीय स्वभाव है। अधिकांश अभिसमय राजा तथा जनता के लम्बे संघर्ष मे बने थे; राजा से लोकसभा को शांतिपूर्वक तथा शनैः शनैः शक्ति हस्तांतरण मे उनसे सहायता मिली थी।

सांविधानिक अभिसमयों के विषय में कई प्रश्न उठते हैं। निम्नलिखित दो प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं; सांविधानिक विधियों और उनमे क्या अन्तर है? उनका पालन क्यों किया जाता है? आगे आने वाले पैराग्राफों में इनका उत्तर देने का प्रयत्न किया जायेगा।

प्रथम प्रश्न के विषय में हम कह सकते हैं कि सांविधानिक विधियों और सांविधनिक अभिसमयों का अन्तर वास्तव में मूलभूत नहीं है; शास्त्रियों के लिये भले ही उनमें अन्तर हो, किंतु जनसाधारण के लिये तो कोई अन्तर नहीं है चाहे किसी

---

* यह लोकसभा का स्थायी आदेश सं० ६६ है। यहाँ राजा का अर्थ केबिनेट है।

सांविधानिक आचरण के पीछे विधि का बल है या वह केवल अभिसमय ही है। विद्वान लोग उनमे तीन प्रकार का भेद कर सकते हैं। सर्वप्रथम वे कह सकते हैं कि विधियाँ अधिक पवित्र हैं; उनका उल्लघन करने की सभावना कम होती है। सविधान की विधि का पालन एक मुख्य कर्तव्य होता है, अभिसमय का पालन उतना महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता। निस्संदेह यह सत्य है किन्तु यह मामला अधिकांश मे मनोवैज्ञानिक है। विधि के नियम का पालन उसके रूप के कारण नहीं, उसके आशय के कारण होता है। कोई अभिसमय विधि के समान ही महत्त्वपूर्ण तथा आधारभूत हो सकता है, और उस अवस्था में उसका उल्लंघन करना इतना ही कठिन होगा जितना कि किसी विधि को तोड़ना। कोई यह कल्पना नहीं कर सकता कि कोई मंत्रिमंडल लोकसभा में पराजित होने के पश्चात् त्यागपत्र भी न दे तथा देश से अपील भी न करे, यह भी कल्पना करना उतना ही कठिन है कि ससद द्वारा पारित किसी विधेयक पर राजा अनुमति देने से इनकार करदे। कम महत्त्वपूर्ण अभिसमयो का अतिक्रमण कुछ न कुछ हो सकता है। दूसरी बात यह है कि किसी अभिसमय के उल्लंघन का निर्णय करने का कोई औपचारिक तरीका नहीं है। विधि न्यायालय विधियों के उल्लघन पर ध्यान देते हैं, अभिसमयो के अतिक्रमण पर नहीं। दूसरे शब्दो मे सविधान की विधि को न्यायालय लागू करेंगे, परन्तु अभिसमय को नहीं।

यह तो सत्य है ही पर इसका कारण यह है कि अधिकांश मामलो मे अभिसमयो का उल्लंघन इतना स्पष्ट प्रतीत नहीं होता जितना स्पष्ट विधि का उल्लंघन हो जाता है, और वह 'गलतफहमी की धुन्ध मे भी आसानी से छुप सकता है'।* अन्ततः विधियों की भाषा ठीक ठीक होती है, अभिसमयों की नहीं। वे व्यवहार से उत्पन्न होते हैं और उनका उचित रूप या भाषा कोई निश्चित नहीं कर सकता। उदाहरण के लिये, व्यवहार मे यह नियम है कि किसी पीयर (Peer) को प्रधान मंत्री नहीं बनाया जायेगा किन्तु यह इतना स्पष्ट और सुनिश्चित रूप मे नहीं है जितना कि यह अभिसमय है कि राजा किसी उत्तरदायी मंत्री की मंत्रणा के बिना कोई सार्वजनिक कार्य नहीं कर सकता। किन्तु कुछ अभिसमय बहुत सुनिश्चित और ठीक हैं।

जब यह प्रश्न उठता है कि अभिसमयों पर इतनी दृढता से आचरण क्यों होता है, तो हम कह सकते हैं कि इसका पूर्णतः सतोषजनक उत्तर नहीं हो सकता। कुछ समय तक लागू रहने के पश्चात् किसी सविधान मे जो परिपाटियां तथा प्रथायें आ जाती हैं उन्हे *'अभिसमय'* नाम देने वाले प्रथम लेखक, प्रोफेसर डायसी, ने कहा है कि महत्त्वपूर्ण अभिसमयो का पालन इस कारण होता है कि सांविधानिक विधियों के साथ उनका इतना गहन सम्बन्ध होता है कि उनका उल्लंघन विधियो का ही उल्लंघन होगा। उन्होंने इसका यह उदाहरण दिया है यदि ससद को उचित समय

*Jennings 'Cabinet Government' (जेनिंग्स : मंत्रिमंडल का शासन)

पर आहूत न किया जावे और वित्तीय वर्ष की समाप्ति तक वार्षिक सेना अधिनियम ( Army Act ) तथा वार्षिक विनियोग अधिनियम (Appropriation Act) पारित न किये जायें, तो सेना पर सरकार का आनुशासनिक प्राधिकार समाप्त हो जायेगा और समूचा शासन-यंत्र बिगड़ जायेगा। इस प्रकार इस अभिसमय के पालन न करने का अर्थ स्वयं संविधान का उल्लंघन ही हो जायेगा। इस युक्ति में बल है; सांविधानिक अभिसमयों का पालन न करने से जो कुपरिणाम होंगे उनके कारण हम उनका उल्लंघन नहीं करते। किन्तु यह पूर्ण उत्तर नहीं है। सारे अभिसमयों का इस प्रकार विधियों के पालन से सम्बन्ध नहीं होता; कुछ अभिसमय कम महत्त्वपूर्ण हैं और इस प्रकार कि उनकी अवहेलना करने से सांविधानिक विधि का कोई अतिक्रमण नहीं होता। दूसरी बात यह है कि संसद् चाहे तो संविधान में ऐसा संशोधन कर सकती है कि वार्षिक विनियोग और वार्षिक सेना अधिनियम ही की अपेक्षा न रहे। आयव्ययक (बजट) को द्विवार्षिक या त्रिवार्षिक बनाया जा सकता है, जिससे कि प्रति वर्ष संसद् का सत्र या सेशन बुलाना संविधान के अनुसार आवश्यक न रहे। इस कल्पित बात से ही सिद्ध हो जाता है कि डायसी का उत्तर असंतोषजनक है। लॉवेल (Lowell) ने इस प्रश्न का अधिक संतोषजनक उत्तर दिया है। वे कहते है कि अभिसमयों पर आचरण इसलिये होता है कि वे हमारे लिये मान-मर्यादा बन गये हैं। "वे हमारे नियम हैं और जिस वर्ग के हाथ में अंग्रेजी सार्वजनिक जीवन की बागडोर रही है वह वर्ग इस प्रकार के दायित्वों पर विशेषतः दृढ़ है। इसके अतिरिक्त, वह एक वर्ग समस्त राष्ट्र की इच्छा से उसके विश्वासपात्र के रूप में शासन करता है, अत. वह वर्ग बहुत ध्यान रखता है कि वे समझौते भंग न हों जिन पर उसका विश्वास निर्भर है।"* संक्षेप में, लावेल का मत है कि जनमत ही ऐसा बल है जिसके आधार पर संविधान के अभिसमय निर्भर हैं। जनता यह आशा करती है कि संसद् को प्रति वर्ष बुलाया जायेगा और जो सरकार किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर लोकसभा में पराजित हो जाये उसे पदत्याग करना होगा। यदि ऐसी बातें नहीं होंगी तो निश्चय ही जनता में अत्यधिक क्षोभ उत्पन्न हो जायेगा, और जनता की अप्रसन्नता तथा क्षोभ के ही भय से विभिन्न दल इन अभिसमयों का पालन करते हैं।

संविधान की विधियों के समान वे भी जनता की स्वीकृति पर निर्भर हैं। जब तक प्रचलित विचारों तथा सिद्धान्त के अनुसार किसी विधि की या अभिसमय की आवश्यकता होगी तब तक उसका पालन होगा; जब वह समाज की आवश्यकताओं से असंगत होकर समाज में विरोध का कारण बनेगा तब उसे हटा दिया जायेगा। इससे भी यही सिद्ध होता है कि संविधान की विधियों और अभिसमयों में कोई आधारभूत अन्तर नहीं है।

---

*Lowell : 'The Government of England'. Vol. 1, pages 12–13.

अध्याय २

# ब्रिटिश संविधान का विकास

**विषय प्रवेश—** आज ब्रिटेन की बहुत सी राजनैतिक संस्थायें अतीत से इतनी सम्बद्ध हैं कि जब तक हम उनके इतिहास को न जानें तब तक हम उनके रूप को और उनके कार्यों को भी नहीं समझ सकते। अतः इसके अध्ययन के लिये ब्रिटिश इतिहास की एक झांकी अत्यावश्यक है।

**आंग्ल-सेक्सन काल—**सेक्सन आक्रमण के पूर्व इंगलिस्तान में सेलटिक आदिमजातियां निवास करती थीं और वह रोमन साम्राज्य का अंग था। रोमन लोगों के चले जाने पर वहां की जनता के पास रक्षा का कोई साधन न रहा तथा डेन लोग, ऐंग्ल लोग और सेक्सन लोग बहुत संख्या में इंगलिस्तान पर चढ़ आये तथा सेल्ट लोगों को पश्चिम की ओर धकेल कर वहां सात छोटे छोटे राजतन्त्र (Kingdoms) स्थापित किये जिनमें से प्रत्येक का एक मुखिया होता था। समय बीतते बीतते सातों में से एक मुखिया ने अन्य सबको पराजित कर दिया तथा वह इंगलिस्तान का राजा बन गया। इस प्रकार आंग्ल-सेक्सनों के समय में ही 'राजा' अथवा 'बादशाह' का पद स्थापित हुआ। किन्तु सेक्सनों के समय में राजाशाही कभी शक्तिशाली नहीं बन सकी और इंगलिस्तान कबीले (Tribal) राज्यों का एक ढीला संगठन मात्र ही रहा। विजेता विलियम के समय में जाकर देश में दृढ़ केन्द्रीय शासन स्थापित हुआ। विलियम ने बहुत चतुरता, बुद्धिमानी तथा दूरदर्शिता से समस्त देश पर अपना आधिपत्य जमा लिया जैसा कि कोई पूर्ववर्ती सेक्सन राजा न कर सका था। ऐंग्लो-सेक्सनों ने इंगलिस्तान में एक और पद्धति स्थापित की। उन्होंने स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था चालू की जिसने समस्त राज्य में काफी एकरूपता ग्रहण करली थी और जिसने राष्ट्रीय एकता की भावना को जन्म दिया। प्रत्येक ग्राम में अपना स्थानीय स्वशासन था। बहुत से गांवों को मिला कर जिले या 'हण्ड्रेड्स' (Hundreds) बना दिये गये जिनमें स्थानीय सभा (Assembly) होती थी। 'हण्ड्रेड्स' को मिला कर 'शायर' (Shires) बना दिये गये— जिनसे आजकल की 'काउंटियां' बनी हैं। अपने गांवों, हण्ड्रेडस' तथा 'शायर्स' में अंग्रेजों ने स्वशासन का पहला सबक सीखा और प्रतिनिधि चुनने की प्रणाली का विकास किया। सेक्सनों द्वारा स्थापित स्थानीय संस्थाएं उनके द्वारा स्थापित राजाशाही से अधिक दृढ़ थीं।

**नॉरमन काल—** १०६६ में जब इंगलिस्तान पर नारमंडी के विलियम (William of Normandy) ने अधिकार कर लिया तब वहां नॉरमन काल आरंभ हुआ जो ब्रिटिश राजनैतिक संस्थाओं के विकास के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण था। जैसा

ऊपर कहा जा चुका है विजेता विलियम ने वहां शक्तिशाली केन्द्रीय शासन स्थापित कर दिया था। किन्तु वह भी जनता की सद्भावना प्राप्त करना चाहता था। अतः उसने उनकी प्राचीन प्रथाओं, संस्थाओं और विधियो को अछूता ही रहने दिया, केवल ऐसी सीमा तक ही उनमें परिवर्तन किया जहां तक कि ऐसा करना उसकी राजकीय शक्ति को सुदृढ़ बनाने के लिये आवश्यक था। इस प्रकार सेक्सन और नॉरमन राजनैतिक आदर्शों का सम्मिश्रण हो गया जो इंगलिस्तान के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ। देश मे एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन बन गया और शक्तिशाली स्थानीय संस्थाओं का लाभ भी उसे मिला, यद्यपि विलियम तथा उसके उत्तराधिकारियों ने कई उपायों से उन्हें अपने अधीन बना लिया।

नॉरमन राजाओं ने दो नई संस्थाओं का विकास भी किया। उनमे से ही कालान्तर मे ब्रिटिश संसद, प्रिवी परिषद (Privy Council), एक्सचेकर तथा विधि-न्यायालय आदि विकसित हुए। वे संस्थाये थीं 'मेगनम कॉन्सीलियम' अर्थात् महा परिषद और 'क्यूरिया रेजिस' अर्थात् लघु परिषद। मेगनम कॉन्सीलियम तो सेक्सन राजाओं की पुरानी 'विटन' (Witan) का ही नया नाम था। उसमें विशप, राजपरिवार के पदाधिकारी, मुख्य जमींदार, और ऐसे अन्य उच्च अधिकारी होते थे जिन्हें राजा प्रशासन के कार्य की देखभाल मे, राज्य की नीतियों के विनिश्चय मे विधियों के निर्माण मे तथा न्याय के प्रशासन मे मंत्रणा के लिये बुलाता था। उसमे कोई निर्वाचित व्यक्ति नहीं होते थे और उसकी बैठक राजा के बुलाने पर वर्ष मे तीन चार बार होती थी। चाहे इसका काम विटन के समान ही था, किन्तु यह उससे निश्चय ही कम शक्तिशाली तथा प्रभावशाली थी, क्योकि एक बात तो यह है कि राजा की शक्ति बढ़ गई थी और दूसरी बात, उसके सदस्य भी राजा के हाथ की कठपुतलियां थे। फिर भी वह एक परामर्श देने वाली संस्था थी और राजा विधि-निर्माण तथा राज्य-कर के लागू करने मे उसकी मंत्रणा लेता था। वही उसका विधि-न्यायालय था। किन्तु राजा उसकी मंत्रणा को मानने के लिये बाध्य नहीं था।

महा परिषद बहुत अधिक समवेत नहीं होती थी; और जब बुलाई जाती थी तो एक बार में कुछ दिनो तक ही उसका सत्र (Session) रहता था किन्तु सदा कुछ न कुछ काम तो रहता ही था। अतः 'क्यूरिया रेजिस' अर्थात् लघु परिषद की स्थापना हुई। उसमे राजा के थोड़े से अधिकारी— उसका चेम्बरलेन, चान्सलर, स्टयूवर्ट आदि— होते थे। वे सदा उसके साथ ही रहा करते थे। अतएव आवश्यकता पड़ने पर वह उनसे परामर्श लेता था। इन दोनों निकायों (Bodies) के क्षेत्राधिकार भी भिन्न भिन्न नहीं थे। राजा चाहता तो महा परिषद की बैठक बुला लेता था अन्यथा अपनी सुविधा या इच्छानुसार लघु परिषद से ही परामर्श कर लेता था। यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों

परिषदों की सलाह मानना राजा के लिए कहाँ तक जरूरी था। किन्तु यही बात महत्त्वपूर्ण है कि नारमन राजा राज्य के प्रमुख लोगों को बुलाकर राज्य के महत्त्वपूर्ण मामलों पर उनकी मंत्रणा अवश्य लेते थे। यही बात रूढ़ि बन गई और बाद में उसने एक सांविधानिक सिद्धांत का रूप धारण कर लिया। 'महा परिषद् के अधिवेशनों से ही ब्रिटिश संसद का विकास हो गया, क्यूरिया में से प्रिवी परिषद, एक्सचेकर, तथा उच्च न्यायालयों का जन्म हो गया। अतएव इंगलिस्तान में बीसवीं शताब्दी में शासन का जो ढाँचा है वह इस प्राचीन परिषद से ही बना है जिसके बड़े और छोटे सत्र होते थे।'*

**प्रिवी परिषद आदि का विकास—** क्यूरिया से प्रिवी परिषद्, एक्सचेकर तथा न्यायालयों का विकास किस प्रकार हुआ, इस विषय पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। इतना ही स्मरण रखना चाहिये कि विजेता विलियम के समय में क्यूरिया भिन्न भिन्न प्रकार के कार्य करती थी। वह प्रशासनीय मामलों को भी देखती थी और न्यायिक मामलों को भी देखती थी। जब उसका कार्य बढ़ने लगा तो उसकी दो शाखायें बन गईं। एक शाखा जो प्रशासनीय मामलों को संभालती थी उसका नाम प्रिवी परिषद् पड़ गया। दूसरी शाखा से आगे चलकर एक्सचेकर तथा न्यायालयों का विकास हुआ। ध्यान रहे यह विभाजन अथवा पृथक्करण शनैः शनैः हुआ और इसके लिये जान-बूझ कर न कोई कार्यवाही ही की गई और न कोई योजना ही बनाई गई।

**संसद का विकास—** महा परिषद् (Great Council) से ब्रिटिश संसद के विकास का इतिहास अधिक रुचिकर है और उसका ज्यादा विस्तृत वर्णन किया जायेगा। पहले राज्य के प्रमुख व्यक्तियों को, अर्थात् बड़े बड़े जमींदारों को ही महा परिषद् में बुलाया जाता था। किन्तु राजा जोन को धन की आवश्यकता थी और वह छोटी बड़ी सब जमीन जागीरों पर कर लगाना चाहता था। वह चाहता था नये करों को एक बड़ी और अधिक प्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकार कराया जाये, इसलिये उसने शेरिफों को निर्देश दिया कि वे आक्सफोर्ड में होने वाले महा परिषद् के सत्र में प्रत्येक काउन्टी से चार नाइटों (Knights) अर्थात् उपाधि-प्राप्त व्यक्तियों को भेजें। इस प्रकार महा परिषद में सदस्य बढ़ने आरम्भ हुए। इससे एक सुविख्यात सिद्धान्त की भी नींव जम गई कि 'प्रतिनिधित्व के बिना करारोपण नहीं होना चाहिये।' राजा का उद्देश्य तो केवल यही था कि छोटे व्यक्तियों की सहायता से सुगमतापूर्वक धन उगाहा जाये और उसे सिद्धान्त से कोई मतलब नहीं था। किन्तु उसके इस कार्य के फलस्वरूप ही बाद में चलकर उस सुविख्यात सिद्धान्त का विकास हो गया।

---

* मनरो : यूरोप की सरकारें, पृष्ठ २६

इसके बाद बड़ा कार्य यह हुआ कि राजा ने मेगना कार्टा अर्थात् महान चार्टर पर हस्ताक्षर करके महा परिषद् को अधिक अधिकार दे दिये। इससे महा परिषद् का संगठन अधिक सुनिश्चित हो गया तथा उसकी शक्तियां बढ़ गईं। जब राजा जोन ने मूर्खताएं तथा अत्याचार करने आरम्भ किये तब उसके बेरन (सामंत) लोग तथा क्लर्जी (पंडे) लोग विप्लव की धमकियां देने लगे, जिनके फलस्वरूप उसे १५ जून १२१५ को मेगना कार्टा पर हस्ताक्षर करने पड़े। उसमें मुख्य शर्त यह थी कि राजा परिषद् की स्वीकृति के बिना कुछ विशेष प्रकार के कर नहीं लगा सकेगा और उसकी बैठकों में वह सब बड़े बेरन लोगों को तथा शायरों के नाइटों (उपाधि-प्राप्त लोगों) को शेरिफों के द्वारा बुलायेगा। यद्यपि महान चार्टर में जनसाधारण को कोई अधिकार नहीं मिले थे और कोई प्रतिनिधि सरकार बनाने का उपबन्ध नहीं था तथा केवल बेरनों को ही कुछ अधिकार मिले थे, किन्तु फिर भी इस चार्टर का ब्रिटिश सांविधानिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि उससे राजा के लिये यह क़ानूनी कर्तव्य बन गया कि उसे कुछ मामलों में परिषद् की राय लेनी ही होगी। इससे पहले यह उसकी इच्छा पर ही निर्भर था कि वह परिषद् से सलाह करता या न करता। अब बेरन लोग यह ध्यान भी रखने लगे कि राजा अपने समझौते को पूरा करता है या नहीं। अब यह बात निश्चित हो गई कि राजा सुनिश्चित सिद्धान्तों के अनुसार देश पर शासन करेगा तथा मनमानी नहीं करेगा; इस प्रकार सांविधानिक शासन की नींव डाल दी गई। यह बहुत बड़ी बात थी और बाद में जाकर वे ही अधिकार, जो इस चार्टर में बेरन और क्लर्जी लोगों को दिये गये थे, अन्य लोगों को भी प्राप्त हो गये। यही कारण है कि अङ्गरेज इस चार्टर को अपनी स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र समझते हैं। बाद के राजाओं तथा संसदों ने इस चार्टर का बार बार समर्थन किया है।

संसद् के विकास क्रम में अगला कदम यह था कि महा परिषद् में नगरों तथा बॉरोज (Boroughs) के प्रतिनिधियों को भी ले लिया गया, जिससे कि वह प्रतिनिधि संस्था बन गई। यह बात ऐसे हुई कि एक दूसरे राजा हेनरी तृतीय को धन की आवश्यकता पड़ी। राजा जोन के समान उसने भी परिषद् की बैठक बुलाई किन्तु उसमें बेरन लोगों ने प्रस्तावित करों को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया जिसके फलस्वरूप सशस्त्र युद्ध हुआ। उसमें राजा परास्त हो गया तथा बेरनों के नेता सायमन डी मांटफोर्ड (Simon De Montford) राज्य का वास्तविक तानाशाह जैसा बन गया। उसे भी धन की आवश्यकता पड़ी तब उसने परिषद् की बैठक बुलाई जिसमें बिशपों (पादरियों), बेरनों तथा शायरों के नाइटों (Knights of the Shires) के अतिरिक्त उन २१ नगरों के, जो उसके पक्ष में थे, दो दो प्रतिनिधि भी बुलाये गये। इस बार भी परिषद् के बुलाये जाने के पीछे लोक-

प्रतिनिधित्व के जनतन्त्रात्मक सिद्धान्त के प्रति भक्ति की भावना न थी, वरन् यही उद्देश्य था कि अपने पक्ष वाले लोगों का समर्थन प्राप्त करके काम निकाल लिया जावे। मांटफोर्ड की मृत्यु के पश्चात् नगरों के प्रतिनिधियों को बुलाने की प्रथा समाप्त होगई किन्तु १२६५ में उसका फिर से आरम्भ हुआ। एडवर्ड प्रथम को युद्ध संचालन के लिये धन की आवश्यकता हुई तो उसने भी १२६५ में वेरनों, क्लर्जी लोगों, नाइटों तथा नगरों के प्रतिनिधियों की एक बैठक बुलाई जिसमें ४०० व्यक्तियों से अधिक थे। इनमें शहरों तथा 'बॉरोज' के १७२ प्रतिनिधि थे, अत यह सच्चे अर्थ में प्रतिनिधि संसद् थी और उसे 'वास्तविक संसद्' कह सकते हैं। वेरन, क्लर्जी, नाइट और नागरिकों ने राजा की प्रार्थना को एकत्र होकर सुना किन्तु बाद में प्रत्येक वर्ग उस पर विचार करने के लिये अलग चला गया तथा सभी वर्गों ने अलग अलग राजा के पास वापस आकर धन की मांग पर अपने अपने मत दिये। यदि यही व्यवस्था स्थायी हो जाती तो आज ग्रेट ब्रिटेन में तीन सदनों का विधान-मंडल होता। किन्तु वेरन और क्लर्जी लोगों के हित सामान्य थे अतः उनका एक संगठन बन गया जिससे बाद में हाउस आफ लार्ड्स बना; इसी प्रकार शायर के नाइटों तथा नगर जनों ने एक दूसरी सभा में संगठित होकर लोकसभा (House of Commons) के लिये आधार स्थापित कर दिया। इस प्रकार ब्रिटिश संसद् (Parliament) में जो दो सभाएं हैं वे घटनावश ही बन गईं; उनकी योजना जान बूझ कर नहीं बनाई गई। दो सभा प्रणाली अगले सौ वर्षों में स्थायी हो गई तथा इंगलिस्तान से संसार के दूर दूर के देशों में फैल गई, जिसमें हमारा देश भी शामिल है।

नारमन राजाओं के समय में जो मेगनम कॉन्सीलियम थी उसने कहीं तीन सौ वर्षों से भी अधिक समय में दो सभा वाली ब्रिटिश संसद् का रूप धारण किया। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि चौदहवीं शताब्दी की ससद् आज की संसद् से बिल्कुल भिन्न प्रकार की थी। उस समय वह कानून नहीं बनाती थी। कानून तो राजा अपने परामर्शदाताओं (Councillors) की स्वीकृति से बनाता था। लोकसभा के सदस्य (Commoners) तो राजा को केवल प्रार्थनापत्र (Petitions) ही पेश कर सकते थे। वित्तीय मामलों (Financial matters) में लोकसभा से सदस्यों को कोई सत्ता प्राप्त नहीं थी और उनकी बात का कोई प्रभाव भी नहीं पड़ता था: उनका काम तो केवल यही था कि राजा जिन करो का प्रस्ताव रक्खे वह उन पर अपनी सहमति प्रकट कर दें। किसी को संसद् में बुलाया जाता तो वह उसे भार समझता और टालने का प्रयत्न करता था, और कोई उसमें सम्मान समझ कर यह प्रयत्न नहीं करता था कि उसे भी बुलाया जाये, नगर जनो के विषय में विशेषतः यही स्थिति थी। उस समय इंगलिस्तान में लोक सभा का सदस्य बनने से न कोई लाभ होता था और न कोई सत्ता (Authority) प्राप्त होती थी।

किन्तु शनैः शनैः लोकसभा के सदस्य अपना महत्त्व समझने लगे। उन्होंने देख लिया कि उनकी सहायता और स्वीकृति के बिना राजा नये कर नहीं लगा सकता था; उसे संसदीय अनुदानों (Parliamentary grants) की आवश्यकता थी। इसी बात को लेकर उन्होंने धन संबन्धी मामलों में सत्ता प्राप्त कर ली। १४०७ में हेनरी चतुर्थ ने लोकसभा को यह आश्वासन दिया कि भविष्य में सब धन-अनुदानों पर पहले लोकसभा विचार करके स्वीकृति देगी, तब वह लार्ड सभा में जायेंगे। इस प्रकार लोकसभा को धन संबन्धी सत्ता प्राप्त हो गई। प्रार्थना-पत्र पेश करने के अधिकार को आधार बना कर विधि-निर्माण के कार्य में लोकसभा का अधिकार प्राप्त किया गया। सर्वप्रथम छोटी छोटी प्रार्थनाओं को मिलाकर एक बड़ा प्रार्थना-पत्र तैयार किया जाता था जो समूचे सदन की ओर से राजा को पेश किया जाता था। उस प्रार्थनापत्र का नाम 'राजा के प्रति सम्बोधन' पड़ गया। बाद में इसी संबोधन को कानून का रूप दिया जाने लगा और इस प्रकार लोकसभा को विधि-निर्माण में भाग लेने का अधिकार मिल गया। चौदहवीं शताब्दी के कानूनों में लिखा होता था 'राजा ने लोकसभा की प्रार्थना पर (तथा लार्डों की अनुमति से) यह विधि बनाई है', पर पन्द्रहवीं शताब्दी के कानूनों की भाषा यह बन गई 'राजा ने लोकसभा और लार्डों की मंत्रणा पर यह विधि बनाई'। लोकसभा को यह शक्ति इस कारण प्राप्त हो गई कि वह राजा को धन संबन्धी स्वीकृति देने का अधिकार रखती थी जिसकी कि राजाओं को शासन चलाने तथा युद्धों के लिये आवश्यकता थी।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि सोलहवीं शताब्दी में विधि-निर्माण (Law-making) की तथा वित्तीय (Financial) शक्तियां मिल जाने से संसद सर्व-शक्तिमान बन गई थी। अब भी वास्तविक शक्ति राजा के हाथ में ही थी और वही असली कार्यपालिका था। लोकसभा से वह जो चाहता करवा सकता था और उसे डरा धमका कर अपनी आज्ञा पर चला सकता था। ऐसा कहा जाता है कि रानी एलिजाबेथ ने लोकसभा के दो सदस्यों को, अपनी इच्छा के विरुद्ध एक योजना का समर्थन करने पर, जेल भिजवा दिया था। यदि सभा राजा की आज्ञा का पालन नहीं करती थी तो जब राजा चाहता उसका विघटन किया जा सकता था; और राजा की इच्छानुसार चलने वाली लोकसभा को कई वर्षों तक रहने दिया जा सकता था, क्योंकि निर्वाचन सम्बन्धी कोई नियम नहीं थे। राजा जिन 'बॉरोज' को अपने अनुकूल समझता उन्हीं के प्रतिनिधियों को बुलाता था। संसद को पिछली कुछ सदियों में चाहे कितनी ही शक्ति क्यों न मिली हो, फिर भी सोलहवीं शताब्दी में ट्यूडर राजा लगभग निरंकुश ही थे। किन्तु वे इतने चतुर थे कि संसद से परामर्श करके अपनी निरंकुशता को छिपा लिया करते थे। किन्तु इनके उत्तराधिकारी स्टुअर्ट राजा ऐसे नीतिज्ञ नहीं थे। पहले ही स्टुअर्ट

राजा जेम्स प्रथम ने राज्य करने के अपने दैविक अधिकार की दुहाई दी और संसद् से उसका संघर्ष शुरू हो गया। सौभाग्य से उसके राज्यकाल में कोई खुला झगड़ा नहीं हुआ। किन्तु उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी चार्ल्स प्रथम कम नीतिज्ञ था और उसने ग्यारह वर्षों तक तो विना संसद् के ही शासन किया किंतु उसके बाद अपने विरोधियों से सशस्त्र संघर्ष कर बैठा, जिसके फलस्वरूप १६४६ में उसके जीवन को समाप्त कर दिया गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् वहां गणराज्य की घोषणा कर दी गई तथा राजपद और लार्डसभा को समाप्त कर दिया गया। ओलीवर क्रोमवेल इङ्गलिस्तान का 'रक्षक' नियुक्त हुआ। किन्तु लोकसभा के साथ उसकी भी नहीं पटी। दस बारह वर्ष तक गणराज्य रहने के पश्चात् इङ्गलिस्तान १६६० में पुनः एक राजतन्त्र बन गया तथा एक दूसरे स्टूअर्ट राजा चार्ल्स द्वितीय को गद्दी पर बैठाया गया। उसने संसद के साथ निर्वाह कर लिया, किन्तु उसके उत्तराधिकारी जेम्स द्वितीय ने जो कि उसका भाई था, और दूसरे मिजाज का था, संसद् की एक विधि को रद्द करके अपने सिर पर आफत बुलाली। जब किसी ने उसका साथ नहीं दिया तो वह फ्रांस भाग गया और संसद् ने विलियम, प्रिन्स आफ आरेंज, को उसकी पत्नी 'मेरी' सहित जो कि जेम्स की सब से बड़ी पुत्री थी १६८६ में संयुक्त शासक बना दिया।

किन्तु क्रांति से लाभ उठाने तथा आगे के लिये सङ्घर्ष के कारणों को हटाने की इच्छा से १६८६ में ही संसद ने एक अधिकार-पत्र पारित किया जो इङ्गलैण्ड के सांविधानिक इतिहास में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लेख्यों (Documents) में से है। उसमें उस रक्तहीन क्रान्ति के परिणामों का तथा उस समय तक के समस्त सांविधानिक विकास का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख कर दिया गया। तत्पश्चात् उस अधिकार-पत्र में यह घोषणा की गई कि राजा संसद् के समर्थन के बिना किसी विधि (Law) का निलम्बन (suspend) नहीं कर सकता, कोई कर नहीं लगा सकता और शान्ति-काल में सेना नहीं रख सकता। उसमें यह भी उल्लिखित था कि संसद् के सदस्यों को वाद-विवाद और वक्तृता की स्वतन्त्रता होगी, नागरिकों को राजा से प्रार्थना करने का अधिकार होगा तथा प्राटेस्टेण्ट धर्मावलम्बी प्रजा को अपनी रक्षार्थ शस्त्र धारण करने का अधिकार होगा। उसमें यह भी लिखा था कि संसद् के सत्र अधिक बार होने चाहियें और उसके चुनाव स्वतन्त्र रूप से होने चाहियें। यह कहा जा सकता है कि अधिकार पत्र की ही बदौलत राजाओं का दैविक अधिकार सदा के लिये समाप्त हो गया और वहां राजतन्त्र सीमित बन गया। ब्रिटिश संविधान के आधारभूत सिद्धान्त, विधि-शासन (Rule of law) तथा संसद् की वैधानिक प्रभुता, सुदृढ़ बन गये और भविष्य में उनकी वैधानिकता पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता था।

**सन् १६८६ के पश्चात् सांविधानिक विकास**— सन् १६८६ से पूर्व ग्रेट ब्रिटेन मे जो सांविधानिक परिवर्तन हुए थे वे आधारभूत थे, किन्तु उसके बाद में जो परिवर्तन हुए वे अधिकांश मे आधारभूत न होकर विस्तार-सम्बन्धी थे। उस समय तक संविधान की रूपरेखा (Outline) तो लगभग निश्चित हो ही चुकी थी, अब केवल विस्तार की बातें शेष रह गई थी, और यही कार्य बाद के वर्षों मे पूरा हुआ। इस काल मे केबिनेट (अंतरंग परिषद्) का विकास हुआ और राजनैतिक दलों का जन्म हुआ, जिनसे राजनैतिक ढांचा पूर्ण होकर उसमे मांसचर्म का आवरण चढ़ गया। यद्यपि ये दोनो बातें परस्पर सम्बन्धित हैं और एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ा था, किन्तु हम पहले केबिनेट के विकास का ही विवेचन करेंगे तथा राजनीतिक दलों के विषय पर बाद में विचार करेंगे।

सन् १६८८-८६ की घटनाओं से यह बात निस्संदेह निश्चित हो गई कि संसद राजा से अधिक शक्तिशाली है और ब्रिटिश राजा राजनैतिक रूप मे लोकसभा पर आश्रित हो गया। किन्तु एक बड़ी भारी कमी थी, वह यह थी कि : *ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी जिससे कि संसद दिन प्रतिदिन के कार्यों के विषय में राजा पर प्रभावशाली नियंत्रण रख सके।* राजा के पास अब भी बहुत से विशेषाधिकार थे और सार्वजनिक कार्यो तथा नीतियो पर उसका बहुत नियंत्रण था, वह नाम मात्र का राजा नहीं था, जैसा कि वह अब है। जब तक राजसी विशेषाधिकारों (Royal Prerogatives) का प्रयोग संसद की इच्छानुसार नहीं होने लगता और जब तक राज्य के मामलों के प्रशासन मे राजा की शक्ति कम नहीं हो जाती तब तक संसद की प्रभुता पूर्ण नहीं कही जा सकती थी। शासन-यंत्र के आधार केबिनेट के विकास से यह बात भी पूरी हो गई।

यह विकास भी सादा नहीं था और किसी योजना के अनुसार नहीं हुआ था, यह एक घटना थी। यह विकास परिस्थितियों के वश हुआ था, स्वतन्त्रता की भावना की वृद्धि के कारण नहीं। इसके दो पहलू थे : (१) राजा की शक्तियों मे कमी होना, और (२) केबिनेट की शक्तियों का विकास तथा लोकसभा के प्रति उसका उत्तर-दायित्व। दोनों के विषय में नीचे कुछ शब्द कहने आवश्यक हैं।

**(क) राजा की शक्तियों का न्यूनन**— यह बात याद रखनी चाहिये कि विलियम आफ आरेंज और उसकी पत्नी मेरी, और उनके बाद रानी एन नाममात्र के लिये ही राज्य के प्रधान नहीं थे जैसे कि उनके बीसवीं शताब्दी के उत्तराधिकारी राजा हैं। अधिकार-पत्र (Bill of Rights) तथा समझौता अधिनियम (Act of Settlement) के होते हुए भी वे राज्य की नीतियों और प्रशासन पर बहुत नियंत्रण रखते थे। किन्तु उनके पश्चात् जो 'जार्ज' नामक राजा बने, वे लगभग

विदेशी ही थे। वे अंग्रेजी बहुत कम जानते थे, और शायद इन्हें ब्रिटिश मामलों में दिलचस्पी भी अधिक नहीं थी। अतएव उनके हाथों से शनैः शनैः वह सब शक्तियाँ जिन्हें उनके पूर्ववर्ती राजाओं ने प्रयोग किया था, निकलती गईं और मंत्रियों के हाथों में चली गईं। या हम इस प्रकार कह सकते हैं कि परिस्थितियों के वश वे वस्तुतः नाममात्र के राजा रह गये। उनके उत्तराधिकारियों ने उन खोई हुई शक्तियों को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु वे असफल रहे। किन्तु ब्रिटिश राजतन्त्र पूर्णतः सांविधानिक तो रानी विक्टोरिया के ही काल में बना जब कि वास्तविक शक्ति 'केबिनेट' को मिल गई।

**(ख) केबिनेट का विकास**— जैसे कि आधुनिक संसद नारमन राजाओं की महा परिषद में से बनी और उसका विकास शनैः शनैः कई शताब्दियों में हुआ, उसी प्रकार आधुनिक केबिनेट भी कई शताब्दियों में शनैः शनैः प्रिवी परिषद् में से विकसित हुई। इसके विकास का इतिहास संक्षेप में निम्नलिखित है :—

१- आरम्भ में राजा प्रिवी परिषद के बहुत से सदस्यों में से कुछ थोड़े से लोगों को अपनी इच्छानुसार चुन लेता था जिनसे वह परामर्श लिया करता था। वही छोटा सा, अनौपचारिक, अनियमित वर्ग केबिनेट का प्रारंम्भिक-स्वरूप था। वे लोग राजा को परामर्श देते थे किन्तु प्रिवी परिषद की अनुमति बिना राज्य की नीति पर वे कोई प्रस्ताव पारित नहीं कर सकते थे और कोई शासन-सम्बन्धी कार्य नहीं कर सकते थे। उस समय उसे केबिनेट नहीं कहते थे। यह बात चार्ल्स द्वितीय से पूर्व की है। इसकी आवश्यकता केवल इसी लिये पड़ी थी कि प्रिवी परिषद् का आकार बहुत बड़ा था।

२. विकास का दूसरा कदम चार्ल्स द्वितीय के शासन-काल में लिया गया। उसने देखा कि प्रिवी परिषद् इतनी बड़ी थी कि कोई कार्य शीघ्रता तथा गुप्तता से नहीं कर सकती थी। अतः वह थोड़े से मंत्रियों की मंत्रणा लिया करता था। उन मंत्रियों की टोली को 'कबल' (Cabal) कहा करते थे। किन्तु उसकी यह स्थिति विधिवत् मान्य नहीं थी और प्रिवी परिषद् को ही राजा के परामर्शदाताओं की सभा माना जाता था, 'कबल' उसका स्थान नहीं ले सका था। 'कबल' के कारण कुछ लोगों में ईर्ष्या और अविश्वास पैदा हो जाने से कुछ समय के लिए इसे बन्द करना पड़ा। चार्ल्स द्वितीय को अपने शासन के अन्त के दिनों में एक नवनिर्मित प्रिवी परिषद् से काम चलाना पड़ा।

३. केबिनेट के विकास में तीसरा कदम विलियम तृतीय ने सन् १६६५ में उठाया। उसने देखा कि लोकसभा में दो वर्ग बन गये थे और उन दोनों वर्गों में से लिये गये मन्त्रियों की सहायता से ठीक तरह काम नहीं चल सकता। अतएव उसने यह तरीका निकाला कि राज्य के बड़े बड़े पदों पर केवल उसी दल के सदस्यों को

रखा जाये जिसका सदन मे बहुमत हो। इस प्रकार उसका मन्त्रिमण्डल कुछ कुछ आधुनिक प्रकार का था। प्रिवी परिषद् की महत्ता घट गई और केबिनेट ही अनन्य सर्वोच्च परामर्शदात्री और राज्य मे वास्तविक कार्यपालिका बन गई। किन्तु उस समय तक कोई प्रधान मन्त्री नहीं था जो केबिनेट के राजनैतिक मुखिया के रूप मे कार्य कर सकता। राजा ही अपने मन्त्रियों की बैठको मे सभापतित्व करता; मन्त्री उसके 'सेवक' थे जो उसकी इच्छाओं को पूरा करने मे उसकी सहायता करते थे।

४. विकास का चौथा क्रम जार्ज राजाओं के समय में पूरा हुआ। वे अंग्रेजी भाषा नहीं जानते थे। अतएव उन्होंने अपने केबिनटों की बैठको में सभापतित्व करना बन्द कर दिया, और अपने राज्य के प्रशासन को मन्त्रियो पर छोड़ दिया। आधुनिक अर्थ मे पहले प्रधान मन्त्री सर रॉबर्ट वालपोल थे जो बहुसंख्यक दल के नेता थे और जिन्होंने अपने राजनैतिक विचारों तथा धारणाओं के अनुसार प्रशासन चलाया था। १७४२ मे लोकसभा ने जब उनके विरूद्ध मत दिया तो उन्होंने त्यागपत्र दे दिया, जो बाद में संसदीय शासन प्रणाली का एक आधारभूत सिद्धान्त बन गया। उससे पहले ऐसी व्यवस्था थी कि जो मन्त्री लोकसभा की इच्छानुसार नहीं चलते थे उनको महाभियोग (Impeachment) लगा कर ही हटाया जा सकता था।

५. गत शताब्दी मे प्रधान मन्त्री की शक्ति बढ़ती गई तथा केबिनेट प्रणाली की अन्य विशेषतायें स्थिर हो गईं और वे ब्रिटिश संविधान के ढांचे का अङ्ग बन गईं।

इससे पता चलेगा कि कई शताब्दियों के लम्बे विकास के पश्चात् केबिनेट का ऐसा स्वरूप बना कि (१) उसमे विधान-मण्डल के ही सदस्य हों, (२) वह लोकसभा मे बहुमत प्राप्त दल मे से ही हो, (३) एक स्थिर नीति पर चले, (४) लोकसभा के प्रति व्यक्तिगत और सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करे, और (५) एक राजनैतिक नेता की अधीनता स्वीकार करे। बहुत समय तक तो यह व्यवस्था केवल रूढ़ि के आधार पर किसी लिखित विधि के आश्रय के बिना ही चलती रही। किन्तु हाल ही मे सांविधानिक विधि द्वारा उसे मान्यता प्रदान कर दी गई है और वह सांविधानिक अभिसमय (Convention) मात्र नहीं रही है।

**अन्य सांविधानिक विकास**— केबिनेट प्रणाली तथा राजनैतिक दलों के विकास के अतिरिक्त १६८८ के पश्चात् कुछ अन्य सांविधानिक परिवर्तन भी हुए। उनमें सब से महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों मे से एक परिवर्तन लोकसभा का लोकतन्त्रीकरण (Democratisation) है। यह परिवर्तन १८३२ के 'सुधार-अधिनियम' (Reform Act) से आरम्भ हुआ था तथा १९१८ और १९२६ के 'लोक प्रतिनिधित्व अधिनियमों' (Peoples' Representation Acts) के पारित होने पर पूरा

हुआ। दूसरा परिवर्तन यह था कि लार्डसभा का पद और उस की शक्तियां शनै: शनै: कम होती गईं और अन्त मे १९११ और १९४९ के 'संसद्-अधिनियम' पारित हुए। उन से यह परिवर्तन पूरा हुआ। उधर १८३५ और १९२९ के बीच में स्थानीय स्वशासन का पुनर्संगठन तथा लोकतंत्रीकरण हुआ, और १८७० के बाद के दस वर्षों मे न्याय-व्यवस्था का भी कायाकल्प कर दिया गया। वर्तमान शताब्दी की सबसे मुख्य बात यह है कि केबिनेट का आधिपत्य इतना बढ़ गया कि लोकसभा भी उसके अधीन बन गई है। इसके अतिरिक्त सरकार के कार्य भी अब बहुत बढ़ गये हैं। १७०७ में इंगलिस्तान तथा वेल्स का स्काटलैंड के साथ तथा १८०० में इनका आयरलैंड से संघटन, १९२१-२२ मे आयर के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना, दूर-दूर तक ब्रिटिश साम्राज्य का विकास तथा उसके कुछ सदस्य देशों को अधिराज्य-पद (Dominion Status) की प्राप्ति, ये सब अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएं हैं। किन्तु हम उनका वर्णन यहाँ नहीं करेंगे क्योंकि स्वयं ग्रेट ब्रिटेन के राजनैतिक ढाँचे के विकास पर इनका बहुत ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ा है।

**शासन तंत्र के विभिन्न अङ्ग**— ब्रिटिश संविधान के विकास की इस संक्षिप्त समीक्षा को समाप्त करने से पहले हम उन विभिन्न अंगों का वर्णन करेंगे जिनसे आजकल के शासनतंत्र की रचना हुई है। आगे के अध्यायों मे हम इनमे से प्रत्येक अङ्ग पर सविस्तार विचार करेंगे।

जैसा पहले बताया जा चुका है ग्रेट ब्रिटेन में एकात्मक (Unitary) शासन व्यवस्था है, संघीय (Federal) नहीं। इस बात में वह फ्रांस के समान है किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका से बिल्कुल भिन्न है। इसका अर्थ यह है कि समस्त देश में एक ही विधान-मंडल है, एक ही कार्यपालिका है और एक ही सर्वोच्च-न्यायपालिका है। आजकल शासन के तीनों कार्यों के करने के लिये तीन अंग हैं। वे ये हैं:— (१) संसद्-सहित-राजा विधियां बनाता है. (२) केबिनेट, सिविल-सर्विस तथा बहुत से विभाग राज्य के कार्यों को करते हैं तथा प्रशासन चलाते हैं; और (३) न्यायालयों की एक बड़ी संख्या न्याय-व्यवस्था चलाती है। किन्तु पुराने समय मे जब सेक्सन, नारमन तथा ट्यूडर राजा उस देश पर लगभग निरंकुश शासन करते थे तब इन तीनों अंगो मे कोई अन्तर नहीं था। राजा विधियों को बनाता था और उन्हें कार्यान्वित करता था और अपनी प्रजा को न्यायदान करता था। आज तीनों में जो अन्तर है वह भी सांविधानिक विकास का ही परिणाम है। अब विधान सम्बन्धी (Legislative) तथा न्याय सम्बन्धी (Judicial) कार्य राजा के हाथ से लेकर अन्य निकायों (Organs) को सौंप दिये गये हैं। क्राउन के पास केवल कार्यपालिका (Executive) सम्बन्धी कार्य बचा है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ग्रेट ब्रिटेन में शक्तियों के पार्थक्य (Separation of Powers) के प्रसिद्ध

सिद्धान्त पर पूरी तरह अमल किया गया है। किन्तु यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि वास्तव में केबिनेट अर्थात् संसदीय शासन-व्यवस्था के विकास से इस सिद्धान्त का प्रभाव बहुत कम हो गया है और कार्यपालिका तथा विधायिका में निकट सहयोग स्थापित हो गया है। यहाँ तक कि राज्य के मामलो में केबिनेट की स्थिति ऐसी है कि यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश संविधान की क्रियात्मक विशेषता शक्तियो का पार्थक्य नहीं है अपितु केबिनेट मे *उत्तरदायित्व का केन्द्रीकरण* (Concentration of responsibility) है। ऐसा शक्ति या उत्तरदायित्व का केन्द्रीकरण संयुक्त राज्य अमरीका या फ्रांस के संविधान मे बिल्कुल नहीं पाया जाता।*

शासन के तीन मुख्य अंगो मे से, विधान-मंडल मे राजा और संसद, दोनो शामिल हैं। जिनमे से संसद मे दो सदन हैं— लोकसभा तथा लार्डसभा। राजा दोनों सदनो मे से किसी का सदस्य नहीं है, किन्तु वह विधान-निर्माण की व्यवस्था का अभिन्न अंग है क्योंकि संसद द्वारा पारित कोई विधेयक (Bill) तब तक विधि नहीं बन सकता और न्यायालय तब तक उस पर अमल नहीं कर सकते जब तक कि राजा उस पर अपनी स्वीकृति न दे दे। हम लोकसभा और लार्डसभा के गठन, शक्तियो और कार्यों का विवरण भिन्न-भिन्न अध्यायो मे करेंगे।

राज्य की सर्वोच्च कार्यपालिका सत्ता क्राउन (Crown) मे निहित है। नये पाठक 'क्राउन' का अर्थ शायद आसानी से नहीं समझ पायेंगे। शायद वे क्राउन (Crown) का अर्थ राजा समझे जिससे वह वैधानिक सिद्धान्त में या सांविधानिक व्यवहार में बिल्कुल अलग नहीं की जा सकती। ग्रेट ब्रिटेन की कार्यपालिका के वास्तविक स्वरूप को समझने का सरलतम तरीका यह है कि औपचारिक (Formal) और वास्तविक (Real) कार्यपालिका मे फर्क समझ लिया जाये। राजा औपचारिक कायपालिका है और केबिनेट वास्तविक अथवा राजनैतिक कार्यपालिका है। समस्त कार्यपालिका कार्यवाही राजा के नाम से की जाती है, उसके द्वारा नहीं। राजा या क्राउन (Crown) के नाम से लगातार ऐसी शासकीय कार्यवाहियां होती रहती हैं तथा कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य होते रहते हैं जिनके विषय मे राजा को व्यक्तिगत रूप से बहुत ही कम अथवा कुछ भी पता नहीं होता और जिनके वह व्यक्तिगत रूप से कभी विरुद्ध भी हो सकता है। इस सबका कारण यह है कि ग्रेट ब्रिटेन मे औपचारिक और वास्तविक कार्यपालिका मे अन्तर है। वहाँ एक स्थायी कार्यपालिका भी है जिसे सिविल-सर्विस (Civil Service) कहते हैं, जो प्रशासन मे महत्त्वपूर्ण भाग लेती है। कार्यपालिका के वर्णन में उसके इन तीनो अंगो का निर्देश अवश्य होना चाहिये। यदि आरम्भ मे ही ब्रिटिश पद्धति के इन दो आधारभूत

---

* पिछले पृष्ठ १०, ११ को देखिये।

सिद्धान्तों को समझ लिया जायेगा तो आगे की बातें आसानी से समझ में आ जायेंगी। ये दोनों निम्नांकित हैं :—

(१) राजा केवल अपनी मर्जी से किसी सार्वजनिक कार्य को नहीं कर सकता जब तक कि कोई उत्तरदायी मंत्री उसे ऐसा करने की मंत्रणा न दे और उसके प्रमाण-स्वरूप हस्ताक्षर न करे; और (२) ऐसे सब कार्यों के लिये जो मंत्रियों के द्वारा किये जाते हैं या जो वह स्वयं करते हैं, मंत्री व्यक्तिगत रूप से तथा सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

'राजा कोई गलती नहीं कर सकता' इसका अभिप्राय यह है कि उसके नाम से जो सार्वजनिक कार्य किये जाते उनके लिये उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। सब उत्तरदायित्व मंत्रियों का होता है, उसका नहीं।*

संसार में तीन विधि-प्रणालियाँ प्रचलित हैं, उनमें से एक ब्रिटिश प्रणाली है, शेष दो रोमनेस्क (Romanesque) तथा मुस्लिम प्रणालियाँ हैं। उसमें कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषतायें हैं जिनके कारण उसका विशेष अध्ययन होना चाहिये।

आजकल राजनैतिक दल प्रत्येक राज्य में शासन के महत्त्वपूर्ण अंग हो गये हैं, चाहे वे विधि द्वारा मान्य हों या न हों। ग्रेट ब्रिटेन में तीन राजनैतिक दल हैं जिनका निर्देश करना आवश्यक है। काउन्टी और बोरो परिषदें आदि स्थानीय स्वशासन संस्थायें (Local Self-Government Institutions) भी शासन-यंत्र के अभिन्न अङ्ग हैं अतः उनका भी विशेष विवरण अपेक्षित है। स्थानीय स्वशासन की ब्रिटिश व्यवस्था के लिये एक अध्याय रक्खा जायेगा। हम ब्रिटिश संविधान के अध्ययन में आयरलैंड या किसी अन्य अधिराज्य की शासन-व्यवस्था का वर्णन नहीं करेंगे।

अब हम सर्वप्रथम कार्यपालिका को लेंगे जो ऐतिहासिक रूप से प्राचीनतम है; और ब्रिटिश संविधान की महत्त्वपूर्ण विशेषतायें और सिद्धान्त उसमें निहित हैं।

---

* 'राजा कोई गलती नहीं कर सकता' इस उक्ति का एक और भी अर्थ है जो अगले अध्याय ३ में समझाया जायेगा।

अध्याय ३

# औपचारिक कार्यपालिका (Formal Executive)

## क्राउन, राजा और प्रिवी परिषद्

**राजा और क्राउन में अन्तर** — इंगलिस्तान में सब से पहले निरंकुश राजतन्त्र था। उसके आरम्भिक नरेश सेक्सन, नारमन, ट्यूडर आदि राजा भी थे, शासक भी। पहले राजा और क्राउन में कोई अन्तर नहीं था; राजा भी क्राउन के सब अधिकारों और विशेषाधिकारों का प्रयोग करता था। आज परिस्थिति बदल गई है। एक बार ग्लेड्स्टन ने कहा था कि 'राजा और क्राउन का अन्तर ब्रिटिश संविधान में तथा उसको समझने के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।' इस अन्तर को न समझने पर छात्र ब्रिटिश राजा को ऐसी शक्तियों से सम्पन्न समझ सकता है जो उसके पास हैं ही नहीं। उदाहरण के लिये जब हम कहते हैं कि क्राउन मंत्रियों को नियुक्त और पदच्युत करता है, संसद को आहूत (Summon) या विघटित (Dissolve) करता है, युद्ध की घोषणा या शांति-संधि करता है, और अपराधियों को दंड देता है, तब यह नहीं समझना चाहिये कि इगलिस्तान का नरेश ही इन सब या इनमें से किसी कार्य को व्यक्तिगत रूप से करता है। पुराने जमाने में वह इन सब कामों को करता होगा जब वह राजा भी था, शासक भी, किन्तु निस्संदेह वह आजकल ये सब कार्य नहीं करता, क्योंकि अब वह राजा तो है, पर शासक नहीं। हमें सबसे पहले यह सर्वप्रधान विभेद समझ लेना चाहिये।

संक्षेप में, राजा और क्राउन में यह अन्तर है कि राजा तो व्यक्तिगत रूप में नरेश को ही कहते हैं और क्राउन का अर्थ राजतन्त्र की संस्था से है। राजतन्त्र को जब एक सांविधानिक संस्था का स्वरूप दे देते हैं तो उसे क्राउन कहते हैं। इन दोनों का अन्तर समझने के लिये हमें याद रखना चाहिये कि व्यक्तिगत रूप में राजा का जन्म होता है, अभिषेक होता है, और आखिर में मृत्यु हो जाती है; वह गद्दी से उतारा भी जा सकता है और स्वयं भी गद्दी का परित्याग कर सकता है। संस्था के रूप में क्राउन कभी पैदा नहीं होता और मरता नहीं, न उसे गद्दी से उतारा जा सकता है और न वह गद्दी त्याग ही सकता है। राजा की मृत्यु से उसके अधिकारों और कार्यों का निलम्बन भी नहीं होता और उनमें बाधा भी नहीं पड़ती। क्योंकि क्राउन तो अदृश्य संज्ञा (Abstraction) है जिसका अर्थ जनता की इच्छा भी लिया जा सकता है। यह विभेद इस कारण उत्पन्न हो गया है कि अंग्रेज लोगों ने राजा के साथ लम्बे संघर्ष के बाद उसकी शक्ति को विचित्र उपायों द्वारा कम किया। उन्होंने राज्य के प्रधान के रूप में राजा की शक्ति और सत्ता को समाप्त नहीं किया किन्तु उनके प्रयोग के नियम बना कर उसे ऐसा बाध्य कर दिया कि यदि वह उन

नियमों पर चले तो उसके लिये मनमानी करना असम्भव हो जाये, विधि की सर्वोच्च सत्ता निश्चित हो जाये तथा अन्ततः जनता की प्रभुता स्थापित हो जाये। इन उद्देश्यों में वे पूरी तरह सफल हुये हैं। आजकल ग्रेट ब्रिटेन का राजा निरंकुश नहीं है, अपितु संसदीय लोकतन्त्र का वंशगत और सांविधानिक प्रधान है। वह मुकुट (क्राउन) धारण करता है और उसका बहुत सम्मान होता है किन्तु उसे कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। पहले जिन शक्तियों का प्रयोग वह करता था वे अब क्राउन को हस्तान्तरित कर दी गई हैं। किन्तु यदि कानूनों और उद्घोषणाओं में, परिषद्-आदेशों में और समस्त औपचारिक लेखों में राजा के स्थान पर 'क्राउन' शब्द रखा जाता, अर्थात् वैधानिक शब्दावली में राजा और क्राउन के अन्तर का ध्यान रखा जाता तो इस अन्तर को समझने में कठिनाई नहीं होती। कानूनी सिद्धान्त में अब भी समस्त सत्ता का स्रोत राजा ही है। संविधान की विधियों में या अभिसमयों में कहीं भी वास्तविक राजा और क्राउन के अधिकारों, शक्तियों और विशेषाधिकारों में कोई अन्तर नहीं किया जाता है।

यद्यपि क्राउन ही ब्रिटिश व्यवस्था की केन्द्रीय और संयोजनात्मक शक्ति है, किन्तु यह बताना आसान नहीं है कि वह क्या है। क्राउन की परिभाषा नहीं हो सकती अतः सिडनी लो ने उसकी तुलना ईथर (Ether) से की है जिस पर वैज्ञानिकों के कई सिद्धान्त निर्धारित हैं। ईथर के समान क्राउन भी बोधगम्य नहीं है और उसे कल्पना का आधार बनाकर कई काम निकाल लिये जाते हैं। क्राउन क्या है, यह समझने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि हम उसके कार्यों को समझ लें।

**क्राउन के कार्य:**— पहली बात यह है कि क्राउन ग्रेट ब्रिटेन की सर्वोच्च कार्यपालिका सत्ता है। अतएव वह सब राष्ट्रीय विधियों का पालन करवाता है, लगभग सभी उच्च कार्यपालिका संबन्धी तथा प्रशासनीय पदों पर नियुक्तियां करता है; स्थल, जल तथा वायु सेना के पदाधिकारियों को नियुक्त करता है, देश के विदेशी मामलों को चलाता है, उपनिवेशों (Colonies) और अधीनस्थ प्रदेशों का प्रबन्ध करता तथा अधिराज्यों (Dominions) से सम्बन्ध रखता है, क्षमा की शक्ति का प्रयोग करता है, और प्रशासन के लिये निर्देश देता है। क्राउन ही राजदूतों और वाणिज्यदूतों को नियुक्त करता है तथा उन्हें विदेशी राज्यों को भेजता है व अनुदेश देता है। वह विदेशी शक्तियों के राजदूतों और प्रतिनिधियों का अपने देश में स्वागत करता है। वह अन्य राज्यों के साथ वार्ता करके उनसे संधियां और समझौते करता है। केवल क्राउन ही युद्ध तथा शान्ति कर सकता है। किन्तु कुछ संधियां तब तक प्रभावशाली नहीं होतीं जब तक कि संसद उनका समर्थन न करदे। जहां तक इस कार्यपालिका-संबंधी कार्य को समूचा मंत्रिमंडल अथवा व्यक्तिगत रूप से कोई मंत्री करता है वहां तक हम कह सकते हैं कि वे क्राउन के अंग हैं।

क्राउन औपचारिक रूप से कोई विधि नहीं बनाता; विधान-निर्माण संसद्-सहित-राजा का कार्य है। किन्तु नयी लोक-सभा की रचना के लिये व्यवस्था करना, संसद् को बुलाना, समाप्त करना और विघटन करना भी क्राउन का अधिकार है और इन कार्यों के द्वारा कुछ हद तक वह विधान-निर्माण के कार्य मे भी भाग लेता है। इसके अतिरिक्त संसद् द्वारा पारित कोई भी विधेयक (Bill) तब तक कानून नहीं बनता जब तक कि उस पर राजा की स्वीकृति प्राप्त न हो जाये। क्योकि अभी तक राजा का वैधानिक रूप से तथा वास्तव मे क्राउन से सम्बन्ध है अतः विधान-निर्माण मे क्राउन का भाग अनिवार्य है। उसका भाग तब तो और भी अधिक दिखाई देगा जब हम यह ध्यान देंगे कि क्राउन के मंत्री ही यह निश्चय करते हैं कि संसद् में कौन से विधेयक (Bill) पेश होंगे और वे ही उन्हे वहां पारित करवाते हैं। क्राउन का विधान निर्माण से एक और रूप मे भी संबंध है, कि सपरिषद् राजा बहुत से परिषद्-आदेश निकालता है जो संसद् द्वारा पारित विधियो के समान ही प्रभावशाली होते हैं। परिषद् आदेश निकालना भी क्राउन का ही काम है। राजा संसद् द्वारा पारित विधेयकों पर स्वीकृति देता है, लोकसभा के अध्यक्ष के निर्वाचन का अनुसमर्थन करता है, संसद् को बुलाता है, उसका सत्रावसान (Prorogue) करता है और उसे विघटित करता है, इस हद् तक वह क्राउन का ही अभिन्न अंग है, चाहे वह ये सब कार्य राज्य के मुख्य मंत्री की मंत्रणा से तथा सहमति से ही करता है।

क्राउन 'सम्मान का स्रोत' (Fountain of Honour) भी है। इस पद का अर्थ यह है कि सब सार्वजनिक सम्मानों को राजा ही प्रदान करता है। प्रधान मंत्री की सिफारिश पर राजा ही नये 'पीयर' बनाता है तथा व्यक्तियो को नाइट (Knight) पद तथा अन्य उपाधियां प्रदान करता है। इस मामले मे भी राजा की अपनी इच्छा का कोई मूल्य नहीं है, जब तक कि उसके किसी सुझाव को स्वीकार करके प्रधान मंत्री किसी नाम को सूची मे घटा बढ़ा न दे।

एक प्राचीन परम्परा के अनुसार जिसका अब कोई महत्त्व नहीं रहा है, परन्तु जो अभी तक मौजूद है, क्राउन को न्याय का स्रोत (Fountain of Justice) भी कहते हैं। इस परम्परा का अब कोई अर्थ नहीं रहा क्योंकि राजा के कोई न्याय-पालिका सम्बन्धी कार्य नहीं हैं, सिवाय इसके कि वह प्रिवी परिषद् की न्यायिक समिति (Judicial Committee) की मंत्रणा के अनुसार उपनिवेशों के न्यायालयो की अपीलें सुनता है। १९४७ से पहले क्राउन भारत के उच्च न्यायालयो से भी अपीलें सुनता था; पर १९५० मे भारत के गणराज्य घोषित होने पर यह प्रथा बन्द हो गई। वह ब्रिटिश न्यायालयों की रचना नहीं कर सकता और उनकी प्रक्रिया का नियमन नहीं कर सकता। वह केवल यही कर सकता है कि अपराधियों को क्षमा कर दे, किन्तु यह कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य है, न्यायपालिका सम्बन्धी नहीं।

क्राउन ही इंगलिस्तान के गिरजे का प्रधान भी है। इस हैसियत से वह आर्क-विशपों और विशपों को नियुक्त करता है तथा केन्टरबरी और यार्क के कन्वेन्शनों (Conventions) द्वारा निर्मित नियमों विनियमों पर अपनी स्वीकृति देता है।

यह भी उल्लेख कर देना चाहिये कि मुकुट की शक्तियों में परिवर्तन भी होता रहता है। समय समय पर वे बढ़ती और घटती रही हैं। मेगना कार्टा तथा अधिकार-पत्र (Bill of Rights) से वह काफी मात्रा में कम हो गई थीं। दूसरी ओर ग्रेट ब्रिटेन (तथा अन्य देशों में भी) राज्य को कार्यवाहियां बहुत बढ़ जाने से उसकी शक्तियां भी बहुत बढ़ गई हैं। नये कामों के लिये नये विभागों की स्थापना का अर्थ क्राउन की शक्तियों का विकास ही है। इससे ही हम इस विरोधाभास (Paradox) को समझ सकते हैं कि ग्रेट ब्रिटेन में लोकतंत्र के विकास के साथ साथ क्राउन की शक्तियां भी बढ़ती जाती हैं।

अब तक के विवरण से यह स्पष्ट हो चुका है कि क्राउन की शक्तियों का प्रयोग विविध रूपों में होता है। उनमें से कुछ शक्तियों का प्रयोग तो समूची केबिनेट करती है, कुछ का प्रधान मंत्री, कुछ का दूसरे मंत्री, कुछ का प्रिवी परिषद और उसकी विविध समितियां करती हैं तथा कुछ शक्तियों का प्रयोग केबिनेट अथवा प्रधान-मंत्री की मन्त्रणा पर राजा करता है, किन्तु कभी भी वह अपनी शक्तियों का प्रयोग अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पर नहीं करता, सिवाय एक विषय में, जबकि वह प्रधान-मंत्री को नियुक्त करता है। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि राजा का क्राउन से कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है वह सिद्धान्त में या व्यवहार में उससे अलग भी कदापि नहीं है।

इन सब बातों को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि संस्था के रूप में क्राउन वास्तव में, राजा, प्रिवी परिषद, केबिनेट, तथा किसी हद तक संसद, इन सबका समन्वय अथवा सम्मिश्रण है।

**राजा का पद : उसका औचित्य और लाभ**— ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो गया है कि ग्रेट ब्रिटेन में राजा देश के शासन का निर्देशक नहीं है। वह राष्ट्रीय नीति निश्चित नहीं कर सकता तथा सार्वजनिक मामलों पर नियंत्रण नहीं रख सकता। यद्यपि वह क्राउन (मुकुट) का धारण करने वाला है तथा उसमें औपचारिक रूप से उसकी समस्त शक्तियाँ निहित हैं तो भी वह उसमें से किसी का भी प्रयोग अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकता। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, राजा के नाम से निकलने वाले सब राजकीय आदेशों पर किसी मंत्री के हस्ताक्षर अवश्य होने चाहियें और वही उनके लिये उत्तरदायी होता है। इन परिस्थितियों में स्वभावतः यह प्रश्न उठता है: राजा के पद को रखा ही क्यों जाये? उसे समाप्त

करके, प्रधान मंत्री को राष्ट्र का कार्यपालिका प्रधान क्यों न बना दिया जाये, जो वह वास्तव में है ही, और इस प्रकार ४,१०,००० पाउण्ड प्रति वर्ष क्यों न बचा लिया जाये जो राजा पर खर्च होता है ?*

ग्रेट ब्रिटेन में राजतन्त्र को बनाये रखने के कई कारण बताये जाते हैं। ब्रिटिश स्वभाव का भी इससे सम्बन्ध है। अंग्रेज बहुत रूढ़िवादी हैं, और कभी कोई बात क्रांतिकारी तरीके से नहीं करते ; उन्होंने राजा के पद को उस समय भी समाप्त नहीं किया जबकि ऐसा करना सरल था, उदाहरणार्थ, जब जेम्स द्वितीय को संसद से लड़ कर फ्रांस भागना पड़ा। तब भी अंग्रेजों ने विलियम ऑफ ऑरेंज और उसकी पत्नी मेरी को खाली गद्दी पर बैठा दिया। सच्ची बात यह है कि उन्हें गणराज्यवाद के प्रति अधिक श्रद्धा नहीं है। जनसाधारण की भावना जितनी राजतंत्र के पक्ष में है उतनी उसके विरुद्ध नहीं। हां, एक समय ऐसा आया था, जब राजपद का सम्मान बहुत कम रह गया था, किन्तु गत सत्तर वर्षों में जनमत बहुत बदल गया है और अब राजा के प्रति स्नेह भावना और सम्मान पहले से कहीं अधिक है। साम्यवादियों के अतिरिक्त जनता का कोई भी वर्ग राजपद के विरुद्ध नहीं है, यहां तक श्रम दल (Labour party) भी, जो कि कुलीनतंत्रीय लार्डसभा की जोरों से आलोचना करता है, राजपद के विरुद्ध नहीं है।

किन्तु यदि इस राजपद की संस्था से कुछ विशेष लाभ नहीं होते तो ब्रिटिश रूढ़िवादी स्वभाव भी उसे समाप्त होने से नहीं बचा सकता था। यह कहना सर्वथा गलत है कि अब राजपद से कोई भी लाभ नहीं रहा है ; इसके विपरीत, यह उपनिवेशों, अधीनस्थ प्रदेशों, और अधिराज्यों की निष्ठा (Loyalty) का ऐसा बहुमूल्य आधार बन गया है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिये जानबूझ कर उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाया है। राजपद का सबसे बड़ा मूल्य यह है कि वह साम्राज्य की एकता का प्रतीक और उसे जोड़ने वाली कड़ी है। क्राउन के प्रति निष्ठा के कारण ही दूर तक विस्तृत साम्राज्य के सदस्य प्रगाढ़ सम्बन्धों से बंधे रहते हैं। इस कड़ी को तोड़ते ही ब्रिटिश राष्ट्रमंडल (Commonwealth) के स्वशासन प्राप्त सब अंग छिन्न भिन्न हो जायेंगे। यह विश्वास करना कठिन है कि यदि ब्रिटेन गणराज्य बन जायेगा तो उसके निर्वाचित राष्ट्रपति का भी कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा अन्य अधिराज्यों में वही सम्मान होगा जो अब वंशगत मुकुटधारी नरेश का होता है। राजा का तो राष्ट्रमंडल (Commonwealth of

---

* एडवर्ड सप्तम तथा जार्ज पंचम को प्रति वर्ष ४,७०,००० पाउण्ड दिया जाता था। इसे सिविल लिस्ट कहा जाता है, और प्रत्येक राजा के अभिषेक के समय संसद इस राशि को निर्धारित करती है।

Nations) से भी सम्पर्क है जिसका भारत भी एक सदस्य है।*

राजा में प्रताप, अद्भुत आकर्षण तथा प्रभाव होता है जो निर्वाचित राष्ट्रपति में नहीं आ सकता। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने राजा से घरेलू मामलों में जितना लाभ उठाया है उतना ही साम्राज्य सम्बन्धी मामलों में भी उठाया है। उन्होंने राजपरिवार का ऐसे मामलों से भी सम्बन्ध जोड़ दिया है जो श्रमिक वर्गों को प्रिय है, इस प्रकार राजा लोकतंत्र का भी प्रतीक बन गया है। शासन को शक्तिशाली बनाने के लिये राजा धर्म के समान बलवान सिद्ध हुआ है। उससे भावनाओं पर प्रभाव पड़ता है जो प्रायः बहुत शक्तिशाली होती हैं। राजा का सम्मान बढ़ने का एक कारण उसकी यह 'राजनैतिक उपादेयता' है।

साम्राज्य की एकता का प्रतीक तथा साम्राज्य को जोड़ने वाली अंतिम कड़ी होने के अतिरिक्त ग्रेट ब्रिटेन में राजा के अन्य राजनैतिक उपयोग भी हैं। ग्रेट ब्रिटेन में केबिनेट-शासन-प्रणाली है; राजनीतिशास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि इस प्रकार की व्यवस्था में मुख्य राजनैतिक कार्यपालिका के अतिरिक्त राज्य का एक नाममात्र का प्रधान भी होना चाहिये। यदि अंग्रेज राजतंत्र को समाप्त करदें परन्तु संसदीय लोकतंत्र को रखना चाहें तो उन्हें राजा के स्थान पर कोई और प्रधान रखना होगा। वह एक निर्वाचित राष्ट्रपति ही हो सकता है जिसकी पदावधि निश्चित हो जैसे फ्रांस में होता है। किन्तु इस परिवर्तन से कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि राज्य के औपचारिक-प्रमुख पद के लिये वंशगत राजा निर्वाचित राष्ट्रपति से कहीं अच्छा रहता है। केबिनेट-शासन-प्रणाली का यह मूलभूत सिद्धान्त है कि राज्य के 'औपचारिक प्रमुख' को दलबंदी में भाग नहीं लेना चाहिये और राजनैतिक विवाद में नहीं फँसना चाहिये। सांविधानिक राजा किसी निर्वाचित राष्ट्रपति की तुलना में दलबंदी से कहीं अधिक दूर रह सकता है तथा उस पर अधिक भरोसा किया जा सकता है कि वह स्वतंत्र रूप से कार्य करेगा।† राष्ट्रपति के समान राजा का किसी दल से संबंध नहीं होता तथा किसी दल के प्रति उसे निष्ठा नहीं होती। उसका प्रशिक्षण विशेष प्रकार का होता है तथा उसका राज्यकाल स्थायी होता है अतः वह

---

* २७ अप्रेल, १९४९ को कामनवेल्थ के प्रधान मंत्रियों ने यह घोषणा की कि 'ब्रिटिश सम्राट् कामनवेल्थ के स्वतंत्र सदस्य-राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध का प्रतीक है और इस नाते वह कामनवेल्थ का प्रधान है।'

† 'सांविधानिक राजा से यह लाभ है कि राज्य का प्रधान दलबंदी से स्वतंत्र रहता है: एक राजनीतिज्ञ, जो राष्ट्रपति बनेगा, अपने विगत को भूल नहीं सकता; यदि वह भूल भी जाये तो दूसरे नहीं भूल सकते।' (जेनिंग्स: केबिनेट सरकार, पृष्ठ २५०)। यह आशय नहीं है कि वंशगत राजा में कोई त्रुटियाँ नहीं होतीं। हानियाँ भी हैं पर लाभ अधिक हैं।

अधिक अच्छी तरह देख सकता है कि समस्त राजनैतिक दल नियमानुसार अपना राजनैतिक खेल खेले। इस प्रकार अंग्रेजों को राजा पर जितना धन व्यय करना पड़ता है वह उससे प्राप्त होने वाले राजनैतिक लाभ के मुकाबले में कुछ ज्यादा नहीं है।

**ब्रिटिश सार्वजनिक जीवन में राजा का स्थान**— ब्रिटिश राजा केवल नाम मात्र का प्रधान ही नहीं है जैसा कि उसे कभी कभी समझा जाता है। ठीक है कि वह देश पर शासन नहीं करता; न वह सार्वजनिक मामलों का नियन्त्रण और निर्देशन करता है और न राष्ट्रीय नीति को ही निश्चित करता है, उसे अपने मंत्रियों के निश्चयों को स्वीकार करना पड़ता है; किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यह महान पद समस्त शक्ति से रिक्त होकर शून्य ही बन गया है। उस पद के स्वरूप और शक्तियों में जो परिवर्तन हुआ है उसके विषय में कहा जा सकता है कि *शक्ति* का स्थान *प्रभाव* ने ले लिया है। ब्रिटिश राजा के पास अब शक्ति नहीं है किन्तु एक विशाल क्षेत्र में वह अपने प्रभाव का प्रयोग करता है जो राजा के व्यक्तित्व पर, परिस्थितियों पर, उसकी योग्यता तथा ज्ञान पर निर्भर रहता है। जेनिंग्स ने कहा है कि "क्राउन का प्रभाव उसके पहनने वाले पर निर्भर रहता है, मुकुट से सम्मान बढ़ जाता है किन्तु योग्यता नहीं बढ़ती।" रानी विक्टोरिया का प्रभाव बहुत था, उसके राज्यकाल के ब्रिटिश राजनैतिक इतिहास के प्रत्येक स्थल पर उसके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट है। उसके उत्तराधिकारी, एडवर्ड सप्तम और जार्ज पंचम आदि भी राज्य के मामलों में सक्रिय दिलचस्पी लेते थे।

कई राजनैतिक कार्य ऐसे हैं जो अब भी राजा करता है, किन्तु उनमें से केवल दो कार्य महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि जब नयी लोकसभा का निर्माण होता है, अथवा एक सरकार त्यागपत्र देती है तथा नई सरकार बननी होती है, तब यह राजा का ही कर्त्तव्य है कि वह किसी व्यक्ति को चुनकर उसे सरकार बनाने का निमंत्रण दे। प्रायः उसकी पसन्द का क्षेत्र सीमित होता है; उसे बहुसंख्यक दल के नेता को ही बुलाकर मंत्रिमंडल बनाने का अधिकार देना होता है। बहुधा लोकसभा में किसी न किसी दल का पूर्ण बहुमत होता है और उसका अपना मान्य नेता भी होता है। दूसरे शब्दों में, प्रायः राजनैतिक स्थिति से ही संकेत मिल जाता है कि प्रधान मंत्री कौन बनेगा। किन्तु जब तीन राजनैतिक दल हों और उनमें से किसी का भी पूर्ण बहुमत न हो, या किसी कारण से बहुसंख्यक दल का कोई औपचारिक रूप से मान्य नेता न हो, तब राजा अपने प्रधान मंत्री को सचमुच स्वयं पसन्द कर सकता है, जैसे कि १९२४ में उसने श्री रैमजे मैक्डॉनेल्ड से मंत्रिमंडल बनाने के लिये कहा था, यद्यपि उनका सदन में बहुमत नहीं था। ऐसे अवसरों से उसे सार्वजनिक जीवन पर प्रभाव डालने का मौका मिलता है। कौन जानता है कि १९३१ में रैमजे मेकडॉनेल्ड को तथा मई १९४० में श्री चर्चिल को प्रधान मंत्री नियुक्त करने में राजा का कितना हाथ था।

ब्रिटिश राजा का दूसरा महत्त्वपूर्ण राजनैतिक कार्य यह है कि संसद् के विघटन के प्रस्ताव पर वह अपनी स्वीकृति देकर साधारण चुनाव का आदेश दे सकता है। जब कोई सरकार लोकसभा में पराजित हो जाये और केबिनेट देश से अपील करना चाहे, तब, सिद्धान्त के अनुसार, राजा अपनी स्वीकृति देने से इनकार कर सकता है यदि उसके विचार में दूसरी सरकार बनना संभव है। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि गत सौ वर्षों में विघटन को भी राजा ने कभी नहीं रोका है और कदाचित् भविष्य में भी न रोके। राजा के लिये उस प्रार्थना को भी अस्वीकार करना कठिन है; उसका यह अधिकार भी काम न आने से व्यर्थ हो गया है। यह कार्य भी औपचारिक ही बन गया है।

तीसरी बात यह है कि एक प्रधान मंत्री के त्यागपत्र देने के पश्चात् तथा दूसरे व्यक्ति के प्रधान मंत्री बनने तक के अंतरिम काल में, सब राजनैतिक सत्ता तथा कार्यपालिका शक्ति राजा में निहित होती है। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि उसका सार्वजनिक मामलों पर नियंत्रण होता है। यह भी वास्तव में औपचारिक बात ही है।

राजा ही विदेशी राजदूतों का स्वागत करता है, यद्यपि यह भी औपचारिक बात ही है क्योंकि उसका कोई न कोई मंत्री उस समय उपस्थित रहता है। वह लोकसभा के अध्यक्ष के निर्वाचन पर अपनी स्वीकृति देता है तथा 'सिंहासन की वक्तृता' को पढ़ता है, यद्यपि उसकी ओर से कोई अन्य भी उस वक्तृता को पढ़ सकता है। राजा संसद् द्वारा पारित अधिनियमों पर अपनी स्वीकृति देता है; उसके बिना वे कानून लागू नहीं हो सकते। किन्तु अब यह स्वीकृति देना रस्म अदायगी सी हो गया है; वह उससे इन्कार नहीं कर सकता, चाहे व्यक्तिगत रूप में राजा किसी अधिनियम के कितना भी विरुद्ध क्यों न हो। यद्यपि यह स्वीकृति सर्वथा आवश्यक वस्तु है, किन्तु अब यह केवल रस्म के रूप में रह गई है। इसके अतिरिक्त जब प्रिवी परिषद् से परिषद्-आदेश निकाले जाते हैं और जब महत्वपूर्ण प्रशासनीय विधान पारित होते हैं तब राजा प्रिवी परिषद् की बैठकों में भाग लेता है।

ये सब कार्य लगभग थोड़े से समय के लिये किये जाते हैं। किन्तु सार्वजनिक मामलों में राजा के प्रभाव के दृष्टिकोण से ये महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उन सब बातों से अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 'राजा प्रति दिन समालोचक, परामर्शदाता, और मित्र के रूप में कार्य करता है।' यह सच है कि वह अब केबिनेट की बैठकों में भाग नहीं लेता, और इसलिये अपने मंत्रियों के विचारों पर सीधा प्रभाव नहीं डाल सकता, जैसा कि उसके ट्यूडर पूर्वज डालते थे; किन्तु प्रधान मंत्री उसे राज्य के मामलों की पूरी सूचना देता रहता है। महत्त्वपूर्ण मामलों पर विचार करने के लिये केबिनेट की बैठक होने से पूर्व प्रधान मंत्री उन सब पर राजा के साथ विचार-विमर्श

कर लेता है, अपने विचारो को और अपने केबिनेट के साथियो के विचारों को उसे समझाता है तथा उसके विचारों को समझने का प्रयत्न करता है। यह आवश्यक नहीं है कि केबिनेट सदैव राजा की सम्मति को स्वीकार ही करे; वह उसे सर्वथा अस्वीकार कर सकती है और उसके विरुद्ध भी काम कर सकती है। किन्तु उसे राजा की मंत्रणा पर विचार अवश्य करना पड़ता है। राजा की मंत्रणा का मूल्य एक तो इसलिये बहुत होता है कि वह बहुत उच्च व्यक्ति होता है और दूसरी बात उसे सामान्यत. बहुत अनुभव होता है, अतएव उसकी मंत्रणा की केबिनेट आसानी से अवहेलना नहीं कर सकती। प्रधान मंत्री केबिनेट की बैठको से पहले राजा से सब विषयों पर बातचीत कर लेता है, और केबिनेट मे जो भी फैसले होते हैं उन्हें क्रियान्वित करने से पहले इस 'प्रतिष्ठावान, अधिकार-युक्त, सर्वोच्च प्रभावशाली आलोचक' के समक्ष रखा जाता है। एक बार रानी विक्टोरिया ने एक पत्र की भाषा को, जो विदेश विभाग ने अमरीका को लिखा था, नरम बना दिया जिससे उस देश के साथ संघर्ष होता होता रुक गया। परामर्शदाता और आलोचक के रूप मे राजा का कार्य विदेशी सम्बन्धों के क्षेत्र में विशेषतः महत्वपूर्ण है।

एक बार बेजहॉट (Bagehot) ने कहा था कि राजा को तीन अधिकार हैं: परामर्श देने का अधिकार, प्रोत्साहन देने का अधिकार, और चेतावनी देने का अधिकार। और उसने आगे कहा है कि बुद्धिमान और विवेकशील राजा इससे अधिक किसी अधिकार की मांग भी नहीं करेगा। मंत्रणा देने के अधिकार का यह मतलब है कि उसे राज्य के प्रत्येक मामले की पूरी सूचना दी जाये, और केबिनेट के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण निर्णय को क्रियान्वित करने से पूर्व उसके विचारार्थ पेश किया जाना चाहिये। इस बात को पहले ही समझाया जा चुका है। इसके अतिरिक्त उसके लिये कर्मचारी गण होते हैं जो उसे राजनैतिक स्थिति के विषय मे सूचना देते रहते हैं। प्रोत्साहन देने के अधिकार का अर्थ यह है कि राजा किसी नीति को पसंद करता है और वह मन्त्रियों से उसे पूरा करने के लिये कहता है। चेतावनी देने के अधिकार का अर्थ यह है कि राजा अनुभव करता है कि उसके समक्ष जो प्रस्थापना रखी गई है वह बुरी है, और उसका हानिकारक प्रभाव हो सकता है। वह अपने विचारो के पक्ष मे युक्तियां देता है और उन्हे उपाय भी बताता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह मंत्रियो का *विरोध* कर सकता है। यदि राजा की मंत्रणा पर ध्यानपूर्वक विचार करने के पश्चात् मंत्री यह अनुभव करते हैं कि उनका तरीका ही ठीक है तो राजा उनका समर्थन करेगा। सिडनी लो ने राजा से निम्नलिखित कल्पित शब्द कहलाये हैं जिनसे राजा और मंत्रियो के सम्बन्ध स्पष्ट हो जायेगे। राजा अपने मंत्री से कहता है: 'इन कार्यों का उत्तरदायित्व आप पर है। आप जो भी उपाय ठीक समझेंगे वही किया जायेगा। आप जो भी ठीक समझेंगे मैं उसका पूरा समर्थन

करूंगा। किन्तु आप देखेंगे कि अमुक अमुक कारण से आपकी प्रस्थापना बुरी है, और दूसरी प्रस्थापना अच्छी है। मैं विरोध नहीं करता, विरोध करना मेरे कर्त्तव्य नहीं है, किन्तु देखिये, मैं *चेतावनी दिये देता* हूँ।'* इन्हीं अधिकारों के प्रयोग से ब्रिटिश राजा को ऐसे अवसर मिलते हैं कि वह सार्वजनिक मामलों में प्रभाव डाल सके तथा घटनाओं को बदल सके और इसी से वह प्रतिमा मात्र बनने से बच जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है उसकी मंत्रणा का बहुत प्रभाव होता है। एक तो उसकी उच्च स्थिति के कारण और दूसरी बात, यदि वह दस बारह वर्ष के लगभग गद्दी पर रह चुका है तो उसे सार्वजनिक मामलों का अपने कई मंत्रियों से अधिक अनुभव होगा, और तीसरी बात, वह दलबंदियों से परे होने के कारण किसी भी मामले पर निष्पक्ष होकर ठंडे दिमाग से सोच सकता है; इन सब कारणों से उसकी मंत्रणा का बहुत प्रभाव हो सकता है, चाहे उसका अपना निजी मूल्य कम ही क्यों न हो। शीशा भी हीरा बन सकता है। राजा के आदेशों की यूं ही अवहेलना नहीं की जा सकती; किन्तु यह भी याद रखना चाहिये कि वे उसके मंत्रियों पर बाध्यकारी नहीं हो सकते; हो सकता है कि वे उन पर आचरण न करें।

रानी विक्टोरिया के बाद के राजाओं के विषय में एक बात समझ लेनी चाहिये कि चाहे वे अपने पूर्वजों के समान शासन नहीं करते थे, किंतु वे अपने शक्तिशाली मंत्रियों के हाथ में कठपुतलियां भी नहीं थे। *रानी विक्टोरिया के पत्रों* से स्पष्ट हो जाता है कि वह शासन के कार्य में बहुत सक्रिय और दृढ़ थीं। वह अपने मंत्रियों को चुनने में बहुत भाग लेती थीं और उन्होंने कुछ अपनी पसन्द के मन्त्रियों को नियुक्त करवाया भी तथा कुछ को नियुक्त होने से रोका भी। वह गिरजे सम्बन्धी नियुक्तियों में भी हस्तक्षेप करती थीं। उनके पुत्र एडवर्ड सप्तम का प्रभाव उनसे भी अधिक था। 'वह नियुक्तियों पर प्रभाव डालने में बहुत शक्तिशाली थे। सेना और नौसेना सम्बन्धी सुधारों के विषय में उनका नियन्त्रण बहुत था। भारत के शासन के विषय में उनके विचारों का मंत्रिमंडल पर बहुत प्रभाव पड़ा था।' † इसी प्रकार विश्वास किया जाता है कि जार्ज पंचम ने १९११–१४ के आयर सम्बन्धी संकट में बहुत भाग लिया था। यहां यह भी कह देना असंगत न होगा कि एडवर्ड सप्तम और जार्ज पंचम ने ग्रेट ब्रिटेन और अन्य देशों के बीच अच्छे सम्बन्ध बढ़ाने के लिये महत्वपूर्ण कार्य किया था। एडवर्ड सप्तम ने कई देशों का भ्रमण किया था जिसके फलस्वरूप फ्रांस, पुर्तगाल तथा इटली से मित्रता स्थापित हो गई थी तथा जर्मनी से संघर्ष टल गया था।

ब्रिटेन में राजा का प्रभाव राजनैतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है; वह राष्ट्रीय

---

* 'दा गवर्नेन्स ऑफ इंगलैंण्ड', पृष्ठ २६४

† Laski : 'Parliamentary Government in England', page 398

जीवन की अन्य शाखाओ मे भी दृष्टिगोचर होता है। भारतीय राजाओं, महाराजाओ और प्राचीन सम्राटों के समान ब्रिटिश राजा भी कला, साहित्य और विज्ञान में दिलचस्पी लेता है।

वह ब्रिटिश समाज का नेता भी होता है तथा शिष्टाचार और सदाचार के आदर्श उपस्थित करता है। राजा और रानी तथा राजसी परिवार के अन्य व्यक्तियों के कथन और कार्य वहां के धनी मानी लोगो के लिये एक प्रकार के नैतिक नियम से वन जाते हैं और उनके वाद वे अन्य लोगों मे पहुँच जाते हैं। जनसाधारण की दशा सुधारने के लिये जो आन्दोलन आरम्भ किये जाते हैं उनमे राजपरिवार से प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्राप्त होता है। दान-धर्म के कार्यों में राजा राष्ट्र का निर्देशक होता है, जैसे मकानो की व्यवस्था, चिकित्सा, सेवा सदन, आदि कार्यों मे वह भाग लेता है।

ग्रेट ब्रिटेन के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में राजा के स्थान का विवरण समाप्त करने से पहले यह वताना आवश्यक प्रतीत होता है कि वह कुछ व्यक्तिगत विमुक्तियों और विशेपाधिकारो का उपभोग करता है और कुछ निर्योग्यताओं के अधीन भी है। राजा भूमि और अन्य सम्पत्ति का स्वामी हो सकता है और उसका प्रवन्ध भी कर सकता है तथा सव प्रकार से उसे वेच या खरीद सकता है। किन्तु ऐसे किसी कार्य के विपय मे उसके विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। उसके किसी व्यक्तिगत आचरण के लिये किसी न्यायालय मे उससे जवाव नहीं मॉगा जा सकता, चाहे वह असावधानी से या जानबूझ कर किसी नागरिक को उसके जीवन या सम्पत्ति से वंचित ही क्यों न कर दे। वह विधि से परे हैं, वह कोई ग़लती नहीं कर सकता।* दूसरी वात यह है कि राष्ट्र उसे राजकोप मे से उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओ तथा राजसी ठाटवाट को वनाये रखने के लिये काफी राशि देता है। यह सिविल लिस्ट कहलाती है और प्रत्येक राजा के राज्यकाल के आरम्भ में संसद द्वारा निश्चित की जाती है। तथा राजा के जीवनकाल मे उस राशि को वदला नहीं जाता। उसकी मुख्य निर्योग्यता यह है कि वह प्रोटेस्टेण्ट धर्म के अतिरिक्त किसी अन्य मत का अनुयायी नहीं हो सकता तथा ऐसी किसी महिला से विवाह नहीं कर सकता जो प्रोटेस्टेण्ट न हो। यदि अभिपेक के पश्चात् राजा अपना मत परिवर्तन कर ले और रोमन केथोलिक या हिन्दू वन जाये, या ग़ैर प्रोटेस्टेण्ट महिला

---

* पिछले अध्याय में यही वात कही गई थी पर वहां उसका आशय दूसरा था। वहां 'राजा कोई ग़लती नहीं कर सकता' इसका आशय यह लिया गया था कि उसके नाम से जो कार्य किये जायें उनके लिये वह उत्तरदायी नहीं है। यहां इस उक्ति का दूसरा अर्थ है। इसका आशय है कि वह विधि से परे है, वह न्यायालयों के अधिकार से मुक्त है। इस कथन की पूर्ण व्याख्या के लिये दोनो अर्थों को समझना चाहिये; कोई भी एक अर्थ दूसरे के विना अधूरा ही रहेगा।

से विवाह कर ले तो उसकी प्रजा उसके प्रति निष्ठा से मुक्त हो जायेगी। एडवर्ड अष्टम को अपनी प्रेमिका से विवाह नहीं करने दिया गया था; और उससे विवाह करने के निमित्त उसे सिंहासन-त्याग करना पड़ा था। राजपरिवार, में सिंहासन का अधिकार सर्वप्रथम ज्येष्ठ पुत्र को मिलता है; यदि वह जीवित न हो तो उसके ज्येष्ठ पुत्र को, अथवा, उसके न होने पर ज्येष्ठा पुत्री को मिलता है।

प्रिवी परिषद्— क्राउन के अधिकांश औपचारिक कार्य प्रिवी परिषद् के द्वारा होते हैं, अतएव ब्रिटेन की औपचारिक कार्यपालिका का विवरण समाप्त करने से पहले इस संस्था के विषय में भी कुछ शब्द कह देना वांछित प्रतीत होता है, यद्यपि यह संस्था बहुत कुछ विस्मृत सी है। हम पहले बता ही चुके हैं कि इसका जन्म किस प्रकार 'क्यूरिया रेजिस' में से हुआ था। यहां हम उसकी वर्तमान रचना तथा कार्यों का ही उल्लेख करना चाहते हैं।

उसकी सदस्य-संख्या निश्चित नहीं है; वह समय समय पर बदलती रहती है। इस समय उसमें लगभग ३२० व्यक्ति हैं जिनमें निम्नलिखित समाविष्ट हैं; केन्टरबरी तथा यार्क के आर्कबिशप और लन्दन का बिशप, बहुत से पीयर जिनमें वे व्यक्ति भी शामिल होते हैं जो देश में और उसके अधीनस्थ देशों तथा उपनिवेशों में उच्च प्रशासन-पदों पर रह चुके हैं, बहुत से उच्च न्यायाधीश तथा निवृत्त (Retired) न्यायाधीश, कुछ औपनिवेशिक राजनीतिज्ञ, समस्त वर्तमान और भूतपूर्व केबिनेट मन्त्री, और वे सब व्यक्ति जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला, या राज्य की सैनिक या राजनैतिक सेवा में ख्याति प्राप्त करने पर राजा (अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा पर) प्रिवी परिषद् की सदस्यता सम्मान के रूप में प्रदान करना चाहता है। हमारे भी कुछ देशवासी इसके सदस्य थे, उनमें मुख्य के नाम ये हैं: स्वर्गीय सर्वश्री तेजबहादुर सप्रू, श्रीनिवास शास्त्री तथा शादीलाल। प्रिवी परिषद् की सदस्यता जीवन-काल के लिये होती है। 'एक बार प्रिवी पारिषद् बन कर सदा प्रिवी पारिषद् ही रहता है' ऐसी उक्ति प्रसिद्ध है। प्रिवी पारिषद् को इस प्रकार सम्बोधित करते हैं 'राइट आनरेबल'। प्रिवी परिषद् के काम में केवल केबिनेट-मन्त्री ही भाग ले सकते हैं जो कि इसके पदेन (Ex-officio) पारिषद होते हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे पारिषदों से जिन्हें कि सम्मानस्वरूप यह पद दिया जाता है कोई सलाह नहीं ली जाती और उन्हें राज्य के कोई भेद भी नहीं बताये जाते।

यद्यपि प्रिवी परिषद् क्यूरिया रेजिस की वंशज है और किसी समय वह महत्त्वपूर्ण संस्था थी किन्तु अब उसके पास राज्य के गहरे प्रश्नों पर विचार और निश्चय का कोई काम नहीं है; उसका कार्य केवल औपचारिक है। सिवाय उस समय के जबकि नये राजा का अभिषेक होता है अथवा कोई ऐसी रस्म होती है, समूची परिषद् की बैठक कभी नहीं बुलाई जाती। कार्य के लिये प्रायः केबिनेट के चार पांच

मुख्य सदस्यों को ही बुलाने की प्रथा है। वे प्रायः बकिंघम-प्रासाद में समवेत होते हैं तथा समूची परिषद् के नाम से कार्य करते हैं। प्रायः ऐसी बैठकों में, जो वर्ष भर में लगभग बीस बार होती है, राजा भी शामिल होता है, किन्तु उसकी उपस्थिति अपेक्षित नहीं है। परिषद् का लार्ड प्रधान, जो केबिनेट का सदस्य होता है, और परिषद् का क्लर्क सदा बैठक में उपस्थित होते हैं। तीन सदस्यों से गणपूर्ति (Quorum) हो जाती है। परिषद् का कार्य सपरिषद्-राजा के नाम से होता है।

परिषद् प्रायः निम्नलिखित कार्यों के लिये समवेत होती है: आज्ञप्तियों (Decrees) तथा अध्यादेशों (Ordinances) को जारी करना, जिन्हें प्रायः परिषद्-आदेश अथवा आर्डर्स-इन-काउन्सिल कहते हैं (इस शब्द को बाद में समझाया जायेगा); जब कोई नई सरकार बनती है तब मन्त्रियों को उनके पद की शपथ दिलाना, 'शेरिफों' की नियुक्ति; विश्वविद्यालयों, नगरपालिकाओं तथा अन्य निकायों को चार्टर देना; अनुज्ञप्तियों (Licences) को मन्जूरी तथा जुर्मानों की माफी। परिषद् में ही नये नियुक्त बिशप राजा का अभिवादन करते हैं और परिषद् में ही मन्त्री राजा से पद की मुद्रा प्राप्त करते हैं। किन्तु सब से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य परिषद्-आदेशों का जारी करना है। यह समझना आवश्यक है कि वे क्या होते हैं।

अगले अध्याय में यह दिखाया जायेगा कि ग्रेट ब्रिटेन में असली कार्यपालिका केबिनेट है। वही सब मामलों पर विचार तथा विनिश्चिय करती है। किन्तु कुछ समय पहले तक संविधान की विधि में उसका नाम भी नहीं था; और वह केवल सांविधानिक अभिसमय (Convention) के रूप में ही अपना अस्तित्व बनाये रखती थी तथा सब काम चलाती थी। वह स्वयं कोई कार्यपालिका सम्बन्धी आदेश जारी नहीं कर सकती थी। यदि किसी विषय पर संसदीय मंजूरी की आवश्यकता होती थी तो केबिनेट का विनिश्चय (decision) अनुसमर्थन (ratification) तथा आवश्यक कार्यवाही के हेतु लोकसभा में भेज दिया जाता था। यदि संसदीय अनुमोदन (approval) की आवश्यकता नहीं होनी थी तो उस मामले को कार्यवाही के हेतु सपरिषद्-राजा (King-in-Council) के पास भेज दिया जाता था। यह व्यवस्था अब भी जारी है। केबिनेट निश्चय करती है कि ऐसा ऐसा आदेश पारित किया जायेगा या किसी विशेष कार्य के करने के लिये राजा को मन्त्रणा दी जायेगी। वह स्वयं आदेश जारी नहीं करती और न क्राउन को स्वयं मन्त्रणा ही देती है; वह तो केवल प्रिवी परिषद् को अनुदेश दे देती है कि वह उस आदेश पर अमल करे या क्राउन के नाम से उस पर कार्यवाही करे। और परिषद् केबिनेट के विनिश्चय को परिषद्-आदेश के रूप में जारी कर देती है। निम्नलिखित आदेश परिषद्-आदेशों (Orders-in-Council) के रूप में जारी किये जाते हैं: उद्घोषणाएँ; संसद् को बुलाने, उसका सत्रावसान करने और विघटन करने के लेख, नगरपालिकाओं तथा

अन्य स्थानीय सभाओं को चार्टर देने के आदेश ; स्थायी सिविल सर्विस सम्बन्धी आदेश ; उपनिवेशों तथा अधीनस्थ देशों के शासन सम्बन्धी आदेश ; युद्ध सम्बन्धी आदेश जैसे तटस्थ व्यापार और तटावरोध (Blockade)। प्रति वर्ष ऐसे लगभग ६०० आदेश निकलते हैं। यह संख्या बढ़ती जाती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रिवी परिषद् केबिनेट के विनिश्चयों को अपनी आज्ञप्तियों तथा अध्यादेशों द्वारा, जिन्हें परिषद्-आदेश कहते हैं, वैधानिक रूप देती है।

प्रिवी परिषद् अपना अधिकांश कार्य अपनी अनेकों समितियों के द्वारा करती है, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण 'न्यायिक समिति' (Judicial Committee) है। 'वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान विभाग' तथा 'भूतत्त्वीय परिमाप विभाग' और 'राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला' उसी के अधीन हैं। 'व्यापार मंडली' और 'शिक्षा मंडली' भी पहले उसी के अधीन थीं, किन्तु अब उन्हें अलग कर दिया गया है। कई वृत्ति संबंधी निकायों यथा 'चिकित्सा महापरिषद्' और 'चिकित्सा अनुसंधान परिषद्' आदि पर भी प्रिवी परिषद् का ही नियंत्रण है।

---

अध्याय ४

# मंत्रिमंडल और केबिनेट

**केबिनेट की केन्द्रीय स्थिति :—** ब्रिटिश सांविधानिक विकास की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा रोचक विशेषता यह है कि राजा की स्थिति में शनैः शनैः परिवर्तन हो गया है और वह शासक न रहकर केवल राजा ही रह गया है; उसकी शक्ति मिट गई है परन्तु प्रभाव शेष रह गया है। इस परिवर्तन में सबसे महत्त्वपूर्ण हाथ केबिनेट का है। जो शक्ति पहले राजा के हाथ में थी वह अब केबिनेट के हाथ में चली गई है। यद्यपि राजा का प्रत्येक कार्य अब भी राजा के नाम से ही होता है किन्तु सब जानते हैं कि वास्तविक कार्यपालिका-सत्ता केबिनेट ही है। फिर क्या आश्चर्य है यदि केबिनेट को वह धुरा समझा जाता है जिसके चारों ओर सारा शासन-चक्र घूमता है, या रैमजे म्योर के शब्दों में 'केबिनेट राज्य के जहाज का परिचालक चक्र (Steering wheel) है।' निस्संदेह यह समस्त शासन यंत्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुर्जा और समस्त ब्रिटिश राजनैतिक संस्थाओं में मुख्य है। ग्लैडस्टन के शब्दों में केबिनेट 'आधुनिक काल के राजनैतिक जगत में सब से विचित्र वस्तु है। अपनी प्रतिष्ठा के कारण नहीं, अपितु अपनी चतुरता, लचकीलेपन तथा बहुमुखी शक्तिसंपन्नता के कारण।'

हम इसके मूल स्रोत तथा विकास पर पहिले विचार कर चुके हैं और उसे यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं है।* अब हमें उसकी परिभाषा करनी है, उसके गठन और कार्यों का वर्णन करना है, राजा और संसद् के साथ उसके संबन्धों को निर्धारित करना है तथा उसके कार्यसिद्धान्तों को बताना है। केबिनेट की परिभाषा करने से पूर्व, मंत्रिमडल (Ministry) से उसकी भिन्नता प्रकट कर देना आवश्यक-सा प्रतीत होता है।

**मंत्रिमंडल (Ministry)** :—मोटे तौर पर, आधुनिक सभ्य राज्य में शासन के कार्यपालिका-अंग के दो भाग होते हैं। एक भाग में राजनीतिज्ञ होते हैं, दूसरे में स्थायी नागरिक सेवा (Civil Service) के सदस्य। पहिले भाग के राजनीतिज्ञ विधान-मंडल से लिये जाते हैं, जिन्हें 'नई सरकार' बनाते समय प्रधान- मंत्री विविध कार्यालयो का भार सौंपता है। मोटे तौर पर प्रधान मन्त्री द्वारा नियुक्त इन अधिकारियों का कार्य नीति का निर्माण तथा कार्यों का निर्देशन होता है। उन सबको मिलाकर मन्त्रिमडल कहते हैं। ब्रिटिश मंत्रिमंडल की सदस्य-सख्या निश्चित नहीं है। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व उसमें पचास साठ सदस्य होते थे। युद्धकाल में उनकी संख्या बढ़ कर ९० होगई, और युद्ध के पश्चात् उसे फिर घटा कर ६५ के लगभग कर दिया गया। कार्यपालिका के दूसरे भाग में स्थायी नागरिक सेवा (Civil Service) के सदस्य होते हैं। सिद्धान्त के अनुसार उन्हें नीति का निर्माण नहीं करना पड़ता, उनका कार्य मन्त्रियों के आदेशों को क्रियान्वित करना ही होता है क्योंकि मंत्री ही विविध प्रशासकीय विभागों के प्रधान होते हैं। वे संसद के सदस्य नहीं होते; वास्तव में संसद् की सदस्यता और सिविल सर्विस का पद दोनो एक साथ नहीं चल सकते। निर्वाचनों में या लोकसभा में किसी दल की जय पराजय से उनकी पदावधि पर कोई 'प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरे शब्दों में, उनका पद राजनैतिक नहीं है। इसके विपरीत, मंत्रिमण्डल के सदस्य तभी तक पद पर रहते हैं जब तक कि संसद् में उनके दल का बहुमत रहता है; एक बार किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर लोकसभा में उनके विरुद्ध मतदान हो जाता है तो इसका अर्थ यह होता है कि वे सब सामूहिक रूप से पदत्याग कर देते हैं।

अतएव हम यह परिभाषा कर सकते हैं कि मंत्रिमंडल संसद् के उन सब सदस्यों की टोली है जिन्हें प्रत्येक नया प्रधान मंत्री, छोटे या बड़े, विविध पदों पर नियुक्त करता है, जबकि साधारण निर्वाचन में विजय के फलस्वरूप या पिछली सरकार के पदत्याग पर राजा उसे नई सरकार बनाने का आदेश देता है। ये सब व्यक्ति एक साथ पद ग्रहण करते हैं तथा एक साथ पद त्याग करते है। उनमें अधिकांश सदस्य प्रायः लोकसभा से लिये जाते हैं। उनमें और क्राउन के अन्य पदाधिकारियो में, जिन्हें सिविल सर्विस कहते हैं, यह अन्तर है कि मंत्री लोग लोकसभा के प्रति उत्तर-दायी होते हैं, अर्थात् उनका पद राजनैतिक होता है। उनकी कोई निश्चित पदावधि नहीं

---

* देखिये, पीछे अध्याय २ में।

होती, वे तभी तक अपने पदों पर रहते हैं जब तक कि संसद् केबिनेट को पद पर रखती है। केबिनेट के त्याग-पत्र का अर्थ मंत्रिमंडल का त्याग-पत्र होता है। यह बात याद रखनी चाहिये कि मंत्रिमंडल का कोई सामूहिक कार्य नहीं होता; उसके सारे सदस्य कार्यवश एक साथ समवेत भी कभी नहीं होते। उनमें से प्रत्येक का अलग अलग कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व होता है। सामूहिक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व केवल केबिनेट के ही होते हैं तथा वह ही एक साथ समवेत होती है और समुदाय के रूप में कार्य करती है।

आधुनिक मंत्रिमंडल में हमें चार पाँच भिन्न भिन्न श्रेणियों के व्यक्ति दिखाई देते हैं। सर्वप्रथम उसमें प्रधान प्रशासकीय विभागों के प्रमुख होते हैं, जैसे नौ सेना का प्रथम लार्ड (First Lord of Admiralty), चान्सलर ऑफ एक्सचेकर, शिक्षा मंडली का अध्यक्ष, गृह विषयक मामलों का राज्य सचिव। दूसरी श्रेणी में वे लोग हैं जो सरकारी विभागों के प्रमुख नहीं होते किन्तु कुछ उच्च पदों पर आसीन होते हैं, यथा परिषद् का लार्ड प्रेसीडेण्ट, और लार्ड चांसलर। तीसरी श्रेणी में संसदीय सचिव तथा उपसचिव होते हैं। किन्तु विभिन्न विभागों के स्थायी उपसचिव मंत्रिमंडल में नहीं होते, क्योंकि उनके पद राजनैतिक नहीं हैं। इसके अतिरिक्त मंत्रिमंडल में लोकसभा के सरकारी सचेतक (Whips) होते हैं। कुछ राजकीय प्रासाद के पदाधिकारी, जैसे कोषाध्यक्ष और उप-चेम्बरलेन भी मंत्रिमंडल के सदस्य होते हैं।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि मंत्रिमंडल के सारे सदस्यों का काम नीति का निर्माण या प्रशासन का निदेशन नहीं होता। छोटे मंत्रियों तथा संसदीय उपसचिवों का नीति के निर्माण से कोई सम्बन्ध नहीं होता, और सचेतकों का भी कोई प्रशासनीय कार्य नहीं होता।

**केबिनेट :** मंत्रिमंडल के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वह राज्य का मुख्य संचालक नहीं होता। एक दूसरी छोटी टोली होती है जो केबिनेट कहलाती है, वही 'सरकार' होती है और सब सार्वजनिक कार्यों का निदेशन और नियंत्रण करती है। यद्यपि केबिनेट और मंत्रिमंडल भिन्न हैं, किन्तु वे असम्बद्ध नहीं हैं, कुछ व्यक्ति दोनों के सदस्य होते हैं। केबिनेट के सब सदस्य मंत्रिमंडल के सदस्य भी होते हैं किन्तु मंत्रिमंडल का प्रत्येक सदस्य केबिनेट का सदस्य नहीं होता। यदि आधुनिक ब्रिटिश मंत्रिमंडल के प्रत्येक सदस्य को मंत्री कह दिया जाये तो हमें मंत्री और केबिनेट मंत्री में अन्तर रखना पड़ेगा। प्रधान मंत्री संसद् के दोनों सदनों में से जिस सदस्य को *राजनैतिक* पद पर नियुक्त करता है, वही मंत्री कहला सकता है; किन्तु वह केबिनेट मंत्री केवल तभी कहलाता है जब कि वह उस अन्तरंग और चुने हुए सदस्यों की मंडली में होता है जिससे प्रधान मंत्री सहज ही उच्च नीति के सब मामलों में परामर्श लेता है, और जो प्रधान मंत्री सहित, राज्य का सर्वोच्च शासक होती है। इस

अंतरंग चुनी हुई मंडली के सदस्यों को स्वयं प्रधान मंत्री चुनता है। इस दृष्टिकोण से केबिनेट की यह परिभाषा हुई कि वह मन्त्रिमंडल के उन अत्यन्त प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण सदस्यों की टोली है जिन्हें प्रधान मंत्री अंतरंग मंडली में आमन्त्रित करता है। यह नहीं समझना चाहिये कि प्रधान मंत्री को पूर्ण स्वतंत्रता है कि किसको केबिनेट में ले और किसे न ले। एक दर्जन से अधिक ऐसे पद हैं जिनके धारण करने वालों को अनिवार्यतः केबिनेट में लेना ही पड़ता है, उनमें मुख्य पद ये हैं; परिषद् का लार्ड प्रेसीडेंट, लार्ड प्रिवी सील, नौसेना का प्रथम लार्ड, चान्सलर आफ ऐक्सचेकर, और विदेश कार्यालय, युद्ध कार्यालय, गृह कार्यालय, अधिराज्य (Dominions) कार्यालय, उपनिवेश कार्यालय, स्काटलैंड सम्बन्धी कार्यालय 'आदि के प्रमुख, वायु सेना का मंत्री, और स्वास्थ्य तथा श्रम विभागों के मंत्री आदि। भारत सम्बन्धी राज्यसचिव भी सदा केबिनेट का सदस्य होता था, किन्तु अब वह पद समाप्त हो गया है। पोस्ट मास्टर जनरल, कृषि तथा मछली-क्षेत्रों के बोर्ड का अध्यक्ष, 'फर्स्ट कमिश्नर आफ वर्क्स' और आयरलैंड संबंधी लार्ड चांसलर आदि पदों के धारण करने वालों को कभी केबिनेट में ले लिया जाता है और कभी छोड़ दिया जाता है।

मन्त्रिमंडल के समान ही केबिनेट की सदस्य संख्या भी निश्चित् नहीं है; यह शनैः शनैः बढ़ती जाती है। अठारहवीं शताब्दी में केबिनेट में ७ से ६ तक सदस्य होते थे, उन्नीसवीं शताब्दी में यह संख्या १२ और १५ के बीच में रही, तथा प्रथम महायुद्ध से पूर्व २० हो गई थी। एक बार यह संख्या २२ तक भी पहुँच गई थी, किन्तु सामान्यतः बीस ही रहती है। केबिनेट की सदस्य संख्या बढ़ने का कारण यह है कि सामाजिक और आर्थिक मामलों संबंधी महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों की संख्या बढ़ गई है। किन्तु प्रथम विश्व युद्ध के समय इस बड़ी संख्या के कारण शीघ्रता से विनिश्चय न हो पाते थे। अतः जब १६१६ में श्री लायड जार्ज प्रधान मंत्री बने तब उन्होंने ५ व्यक्तियों का एक नया युद्ध केबिनेट बनाया, जिसे बाद में छठा सदस्य जोड़ कर मजबूत बनाया गया था। यह बात किसी को पसन्द न आई किन्तु युद्ध काल में उसे सहन कर लिया गया। १६१६ में शांति होने पर उसकी संख्या युद्ध पूर्व के समान २० तक पहुँच गई, यद्यपि लॉयड जार्ज उसे १२ तक सीमित रखना चाहते थे। यद्यपि कई ब्रिटिश और विदेशी प्रेक्षकों का ख्याल है कि केबिनेट बहुत बड़ी हो गई है जिससे कार्य प्रभावपूर्ण तरीके से नहीं होता किन्तु यह संख्या की वृद्धि अनिवार्य सी है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है इस वृद्धि की आवश्यकता का एक कारण यह भी है कि महत्त्वपूर्ण कार्यों संबंधी विभागों की संख्या में बढ़ोतरी हो गई है।

केबिनेट के गठन और कार्यों पर विचार करने से पूर्व केबिनेट और मन्त्रिमंडल के एक और अन्तर पर ध्यान देना चाहिये। मन्त्रिमंडल का कोई सामूहिक कार्य नहीं होता और वह कार्य के लिये कभी निकाय (Body) के रूप में समवेत

नहीं होता. किन्तु केबिनेट का सामूहिक उत्तरदायित्व होता है और उसके सदस्य राज्य की नीतियों पर विचार करने और विनिश्चय करने के लिये समवेत होते हैं। अथवा यों कहिये कि केबिनेट महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करके विनिश्चय करती है। किन्तु वह उनको आदेश नहीं देती और उन्हे क्रियान्वित नहीं करती, यह प्रिवी परिषद् का काम है कि उनको क्रियान्वित करने की आज्ञप्ति जारी करे और उन्हे क्रियान्वित करना व्यक्तिगत मन्त्रियों का कार्य है। मन्त्रिमंडल न विचार ही करता है, न आज्ञप्ति ही देता है और न उसे क्रियान्वित ही करता है। उसका निगमात्मक (corporate) अस्तित्व नहीं है। यह मुख्य अन्तर है। इसका अर्थ यह हुआ कि केबिनेट ब्रिटिश सांविधानिक व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु है और उसकी सर्वोच्च निदेशक सत्ता है। केबिनेट ही विभिन्न प्रकार के कार्य करने वाली विविधरूप सत्ताओं के समुदाय को जोड़ कर एक बनाये रखती है।

यद्यपि प्रिवी परिषद, मन्त्रिमंडल और केबिनेट तीनों भिन्न भिन्न वस्तुएँ है जिनके भिन्न भिन्न कार्य हैं, किन्तु २० व्यक्ति ऐसे होते हैं जो तीनों के सदस्य होते हैं। केबिनेट-मंत्री प्रिवी पारिषद् भी होता है तथा मन्त्रिमडल का सदस्य भी। केबिनेट-मन्त्री के रूप मे वह विचार करता है, प्रिवी पारिषद के रूप मे वह आदेश देता है, और मंत्री के रूप मे वह उसे क्रियान्वित करता है।

**केबिनेट का गठनः**— केबिनेट मे (और मंत्रिमंडल में भी) प्रधान मंत्री प्रमुख व्यक्ति होता है। उसका गठन भी वही करता है क्योंकि वही अपने केबिनेट की रचना, सदस्य संख्या और उसके सदस्यों मे विभाग वितरण का निर्धारण करता है। वही निश्चय करता है कि उसमे कितने सदस्य होंगे और कौन किस पद को ग्रहण करेगा। १६४८ मे केबिनेट के १७ सदस्य थे, और १५ अन्य मंत्री थे जो केबिनेट-पद के तुल्य थे और जब भी कार्यावली के अनुसार उनका भाग लेना अभीष्ट होता था तब उन्हें साप्ताहिक केबिनेट बैठकों मे बुला लिया जाता था। कुछ विभागो के प्रधान तो अनिवार्यतः केबिनेट मे लिये ही जाते हैं, किन्तु शेष के विषय मे वह निर्णय करता है कि उन्हें लेना चाहिये या नहीं।* अपने साथियों को चुनने मे और उनके पद निश्चित करने मे उसे सिद्धान्ततः स्वतन्त्रता होती है; संसद प्रत्यक्ष रीति से उसके कार्यों पर

---

* केबिनेट में निम्नलिखित सदैव समाविष्ट होते हैं :— प्रधान मन्त्री, परिषद का लार्ड प्रेसीडेण्ट, लार्ड चान्सलर, लार्ड प्रिवी सील, चांसलर आफ़ एक्सचेकर, गृह विभाग, विदेश विभाग, अधिराज्य (अब राष्ट्रमण्डल), स्काटलैंड (पहले भारत भी था) आदि विभागों के राज्यसचिव, प्रतिरक्षा मन्त्री, स्वास्थ्य मन्त्री, व्यापार मण्डली का अध्यक्ष शिक्षा मण्डली का अध्यक्ष, श्रम मन्त्री, कृषि तथा मीनक्षेत्र मन्त्री। इनके अतिरिक्त कुछ और मंत्री भी लिये जाते हैं।

नियंत्रण नहीं करती, और उसे विश्वास होता है कि वह जो भी सूची राजा को पेश करेगा उस पर वह स्वीकृति दे देगा ; वह स्वीकृति औपचारिक रूप मे अनिवार्य है। किन्तु वास्तव मे प्रधान मंत्री को कई कठिनाइयों और बंधनों के अधीन कार्य करना पड़ता है। यह याद रखना चाहिये कि प्रधान मंत्री अपने दल का नेता होने के नाते ही प्रधान मंत्री बनता है, और प्रधान मंत्री के रूप मे वह जो भी कार्य करता है उसमे उसे दल के सम्बन्ध को ध्यान में रखना पड़ता है। उसे अपने कुछ ऐसे साथियों को तो चुनना ही पड़ता है जिनको सरकार मे रखना दल आवश्यक समझता हो, वरन् कुछ तो ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपनी इच्छानुसार पद भी मांगते हैं। वह उनकी भी उपेक्षा नहीं कर सकता जो पहले केबिनेट में थे और अब भी दल में हैं, और उन नवयुवकों को भी नाराज नहीं कर सकता जो प्रसिद्धि प्राप्त कर गये हैं। उसे दल के विभिन्न तत्त्वों को संतुष्ट करना पड़ता है और मंत्रिपदों का ऐसा वितरण करना पड़ता है कि कोई भौगोलिक क्षेत्र बाहर न रह जाये। उसे जनमत का ध्यान रखना पड़ता है। इस प्रकार प्रधान मंत्री को ऐसी टोली चुननी पड़ती है जिससे दल के नेता सतुष्ट हो और कार्य ठीक चले, इसलिये वह अपनी इच्छानुसार ही सब कुछ नहीं कर सकता, अपितु दल के अपने अन्य साथियों से उसे परामर्श लेना पड़ता है तथा समझौता करके मध्यमार्ग अपनाना पड़ता है। फिर भी मन्त्रियों के चुनने मे उसकी इच्छा पर बहुत कुछ निर्भर है और अपने अनुयायियों पर जितना उसका प्रभाव होगा उतनी ही उसकी मर्जी अधिक चलेगी। यह भी याद रखना चाहिये कि उसे समस्त मंत्री संसद् में से ही लेने होते हैं,* और केबिनेट में कुछ लार्डसभा के सदस्यों को भी शामिल करना होता है। इस समय विधि यह है कि कम से कम तीन विभाग-प्रमुख पीयर होने चाहियें, लार्ड चांसलर इनके अतिरिक्त है। लार्ड सभा में सरकार के प्रवक्ता होने चाहियें जो उसकी नीति का स्पष्टीकरण कर सके तथा उसके निश्चयों पर सफाई पेश कर सके। अतएव मंत्रिमंडल बनाने का कार्य बहुत नाजुक है और उत्तरदायित्वपूर्ण है। ऐसा व्यक्ति सौभाग्यशाली होता है जो किसी को नाराज किये बिना इस कार्य को पूरा कर लेता है।

अब हमें जरा विषयान्तर करके यह देखना है कि कैसा व्यक्ति कैबिनेट मंत्री बनता है। क्या मंत्री बनाने से पूर्व प्रधान मंत्री उस व्यक्ति मे किसी विशेष योग्यता को देखता है ? इस प्रश्न का कोई पूर्ण उत्तर नहीं दिया जा सकता। ऊपर

---

* विशेष दशा में ऐसे व्यक्ति को भी मंत्री बनाया जा सकता है जो संसद का सदस्य न हो। किन्तु यदि छह मास में ही वह सदन में स्थान प्राप्त न कर सके तो उसे अपना पद त्यागना पड़ता है। उसे स्थान देने के लिये या तो 'पीयर' बना दिया जाता है या दल के किसी अन्य सदस्य को मना कर उसे त्यागपत्र दिला दिया जाता है और उसके स्थान पर उपचुनाव में वे मंत्री महोदय खड़े हो जाते हैं।

बताया ही जा चुका है कि प्रधान मंत्री अपने साथियों को चुनने में विभिन्न बातों पर विचार करता है। किन्तु एक बात कही जा सकती है। केबिनेट की सदस्यता संसद में सेवा का पुरस्कार है ; यह पुरस्कार बहुत समय तक राजनीति में कार्य करने के पश्चात् ही मिल पाता है। उस उच्च पद पर उसी व्यक्ति को नियुक्त होने का सौभाग्य प्राप्त होता है जो बहुत उच्च गुणों से युक्त हो। उन गुणों में मस्तिष्क, स्वभाव तथा आचार-विचार की उच्चता आ जाती है। अपने साथियों पर प्रभाव डालने के लिये तथा उनसे सम्मान प्राप्त करने के लिये उस व्यक्ति को बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करनी चाहिये, विस्तृत सामान्य ज्ञान, समझदारी, और निर्णयशक्ति, प्रयोजन की सचाई तथा किसी समस्या की तह तक पहुँच कर शीघ्रता से निश्चय करने की योग्यता, तथा दृढ़ नैतिक आचार, ये सब गुण प्रदर्शित करने होते हैं। भाषण की योग्यता भी सहायक होती है, किन्तु केवल तभी तक जब कि अन्य गुण भी हों अन्यथा केवल भाषण की योग्यता से उसे अधिक लाभ नहीं हो सकता। तर्क करने की शक्ति, उत्तर देने की क्षमता और आघात का सामना करने की योग्यता भी बहुत सहायक होती है। केबिनेट के सारे सदस्यों में चाहे इतनी योग्यताएँ न हों किन्तु कुछ ऐसे व्यक्ति केबिनेट में अवश्य होने चाहियें अन्यथा वह केबिनेट अधिक समय तक नहीं चलेगी। केबिनेट मंत्री में जो गुण चाहियें वे प्रधान मंत्री में तो और भी अधिक आवश्यक हैं। उसे मानवीय स्वभाव का ऐसा ज्ञान होना चाहिये कि वह अपने साथियों और सहायकों को चुन सके तथा उन पर भरोसा कर सके। बहुत से ब्रिटिश प्रधान मंत्री बहुत सुविख्यात व्यक्ति हुए हैं।

प्रधान मंत्री द्वारा तैयार की हुई मन्त्रि-सूचि को राजा स्वीकार करता है। राजा को प्रस्थापित नियुक्तियों पर विचार करने का अधिकार है ; वह कुछ नामों के रखने पर आपत्ति कर सकता है और उनके स्थान पर अन्य नामों का सुझाव दे सकता है। कहा जाता है कि रानी विक्टोरिया ने कुछ पदों पर कुछ व्यक्तियों की नियुक्ति को रुकवा दिया था ; उदाहरण के लिये उसने लॉर्ड रिपन को भारत का राजसचिव नहीं बनने दिया था। किन्तु यदि प्रधान मंत्री दृढ़ व्यक्ति है और अपनी सिफारिशों पर अड़ जाता है तो राजा को अपना विरोध वापिस लेना पड़ता है और सूची को स्वीकार करना पड़ता है। किन्तु राजा की राय मूल्यहीन नहीं होती। कुछ भी हो, मंत्रियों की नियुक्तियों पर विचार करने का अधिकार आधारभूत है ; इससे राजा को अधिकार मिल जाता है कि वह पदों के वितरण पर प्रभाव डाल सके।

केबिनेट के निर्माण में तो मुख्य हाथ प्रधान मत्री का होता ही है, उसके कार्य में भी उसी का मुख्य हाथ होता है। प्रत्येक केबिनेट के रंग ढंग पर प्रधान मंत्री के व्यक्तित्व का, उसके कार्यों का और उसकी कार्य-निर्देशन-प्रणाली का प्रभाव पड़ता है। प्रधान मंत्री की स्थिति और शक्तियों के वर्णन में यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

केबिनेट के अंत का भी मुख्य कारण प्रधान मंत्री ही होता है। उसके त्यागपत्र का अर्थ केबिनेट का त्यागपत्र तथा समस्त मंत्रिमंडल का त्यागपत्र होता है। लार्ड मोरले ने ठीक ही कहा है कि प्रधान मंत्री 'केबिनेट रूपी भवन की आधारशिला' है। हाल ही की घटनाओं से उसकी शक्ति और स्थिति बढ़ती जाती है।

**प्रधान मंत्री की नियुक्ति :** हम यह देख चुके हैं कि प्रधान मत्री केबिनेट के निर्माण तथा कार्य में केन्द्रीय व्यक्ति है, और केबिनेट राज्य की सर्वोच्च शासक सत्ता है, अतएव उस प्रणाली का निर्देश करना अभीष्ट है जिससे यह सर्वाधिक शक्तिशाली तथा महत्त्वपूर्ण अधिकारी वास्तव में चुना जाता है। नियमों के अनुसार तो प्रधान मंत्री को चुनना राजा का कार्य है। एक समय ऐसा था जब राजा लोग स्वयं अपने प्रधान मंत्रियों को चुना करते थे; अब भी ऐसे अवसर आ सकते हैं जब वह अनेक सम्भावित उम्मीदवारों में से सचमुच अपनी पसन्द का व्यक्ति ले सके। किन्तु साधारणतः हम कह सकते हैं कि राजा को चुनने की आवश्यकता नहीं पड़ती, राजनैतिक स्थिति से स्वतः आभास हो जाता है कि किसे प्रधान मत्री बनाया जाये। उसे लोकसभा में निर्वाचित बहुसख्यक राजनैतिक दल के नेता को बुलाना पड़ता है, और यदि सरकार सभा में हार चुकी है तो विरोधी दल के नेता को बुलाना पड़ता है। क्योंकि मतदाता ही एक दल को शक्ति प्रदान करते हैं अत. हम कह सकते हैं कि वास्तव में प्रधान मत्री मतदाताओं द्वारा निर्वाचित होता है; साधारण निर्वाचन वास्तव में प्रधान मंत्री का ही निर्वाचन है; किन्तु कभी कभी लोकसभा में दल के सदस्य ही अपने ससदीय नेता को चुनते हैं।* उस हद तक यह भी कहा जा सकता है कि प्रधान मत्री को चुनने में उनका भी हाथ होता है। मतदाता उस दल को चुनते हैं जिससे वे अपना शासन करवाना चाहते हैं; दल उस व्यक्ति को चुनता है जिसे वह यह सम्मान देना चाहता है, कई बार उसका पहले ही कोई नेता होता है जिसने उस दल का निर्वाचन में नेतृत्व करके उसे विजय दिलाई हो; फिर देश द्वारा और दल द्वारा चुने गये व्यक्ति को सरकार बनाने का निमंत्रण देकर राजा उस नेता के निर्वाचन का अनुमोदन कर देता है। इससे पता चलता है कि प्रधान मंत्री को चुनने में राजा की अपनी मर्जी कुछ अधिक काम नहीं करती; अधिकांश मामलों में वह प्रधान मंत्री को नियुक्त ही करता है चुनता नहीं। वह केवल तभी चुनता है जबकि किसी दल का पूर्ण बहुमत नहीं होता, जैसा कि

---

* श्रम दल कहता है कि संसद के श्रम सदस्यों को अपना नेता चुनने का अधिकार है, किन्तु रूढिवादी दल इस पर आचरण नहीं करता। वह प्रायः प्रधान मन्त्री को ही अपना नेता चुन लेता है। 'श्री बाल्डविन १९२३ में नेता बना, श्री चेम्बरलेन १९३७ में, और श्री चर्चिल १९४० में नेता बना, क्योंकि वे प्रधान मन्त्री थे।' (जेनिंग्स : ब्रिटिश संविधान, पृष्ठ १०९)

१६२४ में हुआ था, या जबकि बहुसंख्यक दल का कोई नेता नहीं होता।

प्रधान मंत्री की नियुक्ति के संबंध में एक दो बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। अब यह लगभग नियमित सांविधानिक अभिसमय बन गया है कि प्रधान मंत्री लोकसभा का ही सदस्य होगा। सरकार लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है, लॉर्डसभा के प्रति नहीं, उसी सदन में जनमत प्रतिबिम्बित होता है और वहीं संसदीय विरोधी दल भी होता है। तब आवश्यक है कि विरोधी दल की आलोचना और चुनौती का उत्तर देने के लिये प्रधान मंत्री को लोकसभा में उपस्थित होना चाहिये। १६२३ में जब बोनर लॉ ने त्यागपत्र दिया था तब राजा को दो व्यक्तियों में से प्रधान मन्त्री चुनना था, एक तो लार्ड कर्जन था जो लॉर्डसभा का सदस्य था और दूसरा श्री बाल्डविन था जो लोकसभा में रूढ़िवादियों में सर्वाधिक लोकप्रिय था। उन दोनों में से लार्ड कर्जन अधिक अनुभवी था किन्तु राजा को मंत्रणा दी गई थी कि वह श्री बाल्डविन को ही बुलाये क्योंकि श्रमदल का, जो मुख्य विरोधी दल था, द्वितीय सभा में लगभग कोई प्रतिनिधि नहीं था। दूसरी बात यह भी याद रखनी चाहिये कि राजा प्रायः निवृत्त होने वाले प्रधान मंत्री से भी सुझाव मांगता है कि उसका उत्तराधिकारी कौन हो, किन्तु वह ऐसा करने के लिये बाध्य नहीं है। ऐसे कई मामले हो चुके हैं जब कि राजा ने निवृत्त होने वाले प्रधान मंत्री से परामर्श नहीं किया। राजा अन्य लोगों से बातचीत करके स्वयं स्थिति का अनुमान लगा लेता है, यदि राजनैतिक स्थिति से स्पष्ट पता न लगे कि प्रधान मंत्री कौन हो।

**केबिनेट व्यवस्था की मूलभूत विशेषताएं:**—यह समझने के लिये कि केबिनेट देश का शासन कैसे करती है, उन सिद्धान्तों का ज्ञान सर्वथा आवश्यक है जिनके अनुसार केबिनेट कार्य करती है। उनसे पाठक 'केबिनेट क्या है' इस बात को भी स्पष्ट समझ जायेंगे। उनमें से कौन सा सिद्धान्त अधिक महत्त्वपूर्ण है और कौन सा कम, इस विषय पर विद्वानों में बहुत मतभेद हो सकता है।

केबिनेट की सबसे प्रधान और आधारभूत विशेषताओं में एक यह है कि वह दल के आधार पर बनती है। इसके कई आशय हैं। इसका अर्थ यह है कि केबिनेट का, वरन् मंत्रिमंडल का, प्रत्येक सदस्य साधारणतः एक ही दल में से लिया जाता है। (मिश्रित केबिनेटों की बात और है।) अनुभव से पता चलता है कि यदि केबिनेट में विरोधी राजनैतिक विचारों के व्यक्ति हो तो सुगमता से कार्य नहीं चलता। एक ही दल में से बनी हुई केबिनेट सबसे अच्छी रहती है क्योंकि उन सबका उद्देश्य एक ही होता है। इसका यह भी आशय है कि केबिनेट देश का शासन उस दल के नाम से चलाती है जिसके कारण उसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त होता है। इसी कारण हम प्रायः कहते हैं कि रूढ़िवादी दल का शासन है या उदार दल का या समाजवादी दल का। इसका यह भी आशय है कि केबिनेट उस दलीय कार्यक्रम को पूरा करने

का प्रयत्न करेगी जो निर्वाचनों के समय देश के समक्ष रखा गया था। जब तक वह दल के विनिश्चयो और नीतियों को क्रियान्वित करती रहती है तब तक उसके अनुयायी उसका समर्थन करेंगे और उसे शक्ति आरूढ बनाये रखेंगे। ज्योही वह दल की नीति से दूर हटती है, उसे बहुमत खो देने और इस प्रकार शक्ति ही खो देने का भय रहता है। इसी कारण कई बार कहा जाता है कि 'केबिनेट लोकसभा मे बहुमत प्राप्त दल की एक समिति है जिसे देश का शासन चलाने के लिये एक व्यक्ति चुनता है।' जहाँ मिश्रित केबिनेट होगी वहाँ वह कई दलो की समिति कहलायेगी।

केबिनेट की एकरूपता तथा एकता का कारण भी यही है कि वह दलीय आधार पर बनती है। स्पष्ट है कि जब केबिनेट के सारे सदस्य एक ही राजनैतिक दल से लिये जायेंगे तो वे अपनी राजनैतिक भावनाओं और विचारों मे बहुत साम्य प्रदर्शित करेंगे और वे अपने सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिये एक टोली के समान कार्य करेंगे। यदि केबिनेट के सदस्य विभिन्न राजनैतिक दलो के होंगे तो केबिनेट पद्धति की वास्तविकता नहीं रहेगी। मिश्रित केबिनेट वास्तव मे केबिनेट नहीं होती। १६३७ मे भारतीय-राष्ट्रीय-सभा (Indian National Congress) ने प्रान्तो मे मिश्रित केबिनेट बनाने से इन्कार करने मे यह दिखा दिया था कि वह केबिनेट की शासन पद्धति के सिद्धान्तों को भली भांति समझती है।

केबिनेट की एकता का केवल यही अर्थ नहीं है कि वह टोली के समान कार्य करती है। उसका यह भी अर्थ है कि किसी प्रश्न पर चाहे सदस्यो मे कुछ भी मतभेद क्यों न हो, वे मतभेद वाह्य जगत, राजा, लोकसभा तथा देश के समक्ष नहीं खोले जायेंगे। एक बार पर्याप्त विचार करके कोई विनिश्चय कर लिया जाता है तो सब सदस्यों को उसका समर्थन करना होता है, कोई भी सभा मे, पत्रों मे या मंच पर उसकी आलोचना या विरोध नहीं कर सकता। केबिनेट पद्धति को यह मुख्य विशेषता है।

केबिनेट के दलीय आधार का निकट सम्बन्ध इस बात से है कि उसमे प्रधान मंत्री की प्रमुखता और उसका नेतृत्व होता है। पहले यह बताया जा चुका है कि प्रधान मन्त्री उसका मुखिया होता है, उसके निर्माण, जीवन तथा मृत्यु मे उसका भाग महत्त्वपूर्ण होता है। वही दूसरे मंत्रियों को चुनता है और उन्हे अपने अपने पद पर प्रतिष्ठित करता है। वही उनके कार्य की सामान्य देखभाल करता है और उनकी कार्यवाहियों को विनियमित करता है। वह प्रत्येक मंत्री से परामर्श करता है, आवश्यकतानुसार उसे प्रोत्साहन, मंत्रणा या डाट फटकार देता है। यदि मंत्रियों मे मतभेद हो जाये तो वह उसे निबटाने का प्रयत्न करता है। यदि कोई मंत्री उसके अनुदेशों का पालन करने से इन्कार कर दे तो वह उससे त्यागपत्र मांग सकता है या क्राउन से

कह कर उसे पदच्युत करवा सकता है। यदि किसी महत्त्वपूर्ण बात पर बहुत से केबिनेट मंत्री उससे भिन्न विचार रखते हों तो वह कह सकता है कि या तो वे सब उसके विचारों को स्वीकार करें या, विकल्प में, वह त्यागपत्र देगा या वे सब देंगे। उसे हटाना बहुत कठिन होता है क्योंकि वह दल का नेता होता है। वह केबिनेट की कार्यावली पर नियंत्रण रखता है। वही केबिनेट और राजा के मध्य एकमात्र सचार का माध्यम (Channel of communication) होता है। जैसा पहले बताया जा चुका है वही केबिनेट में किसी महत्त्वपूर्ण मामले पर विचार करने से पहले राजा के साथ उस पर बातचीत कर लेता है और बाद में केबिनेट का विनिश्चय उसे सुना देता है। वही समस्त महत्त्वपूर्ण मामलों पर केबिनेट का प्रवक्ता है। सरकारी नीति की अधिकृत घोषणाओं तथा वक्तव्यों के लिये संसद तथा राष्ट्र उसी की ओर देखते हैं। उसी से आशा की जाती है कि वह संसद के समक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण विधेयकों पर बोले और सरकार की ओर से वाद-विवाद को संभाले। वही अकेला यह निर्णय करता है कि ससद को विघटित किया जाये या नहीं, और किया जाये तो कब। इन, और अन्य शक्तियों और कार्यों के कारण उसका केबिनेट में आधिपत्य होता है। केबिनेट में उसकी केन्द्रीय और प्रधान स्थिति होने के कारण यह कहना गलत है कि वह 'समकक्षियों मे प्रथम' (*Primus inter pares*) है। वास्तव में दूसरों को किसी अर्थ में उसके समान नहीं माना जा सकता। वह राज्य का कार्यवाहक प्रधान है, और उसकी ऐसी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा होती है जहां तक केबिनेट का कोई अन्य सदस्य पहुंच भी नहीं सकता, उसकी बराबरी करना तो दूर रहा।

किन्तु ब्रिटिश प्रधान मत्री उस अर्थ में अपने केबिनेट का स्वामी नहीं है जिस अर्थ में कि अमेरिकन राष्ट्रपति अपने केबिनेट का स्वामी होता है। दोनों की स्थिति समान नहीं हो सकती। यद्यपि ब्रिटिश प्रधान मंत्री अपने मत्रियों को चुनता है और पदों पर आसीन करता है, फिर भी वे उसके सेवक नहीं होते, वे उसके प्रति उत्तरदायी न होकर संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। उनके साथ वह निरंकुशता का व्यवहार नहीं कर सकता, वरन् उसे उनको साथ लेकर चलना पड़ता है। यह कहा जा सकता है कि केबिनेट में आधे सदस्य तो ऐसे होते हैं जो प्रधान मंत्री के अनुग्रह या कृपा के कारण वहां नहीं होते, वरन् दल मे अपनी प्रतिष्ठा के बल पर होते हैं। अमरीकी केबिनेट के सदस्यों के विषय में यह बात नहीं है। ब्रिटिश प्रधान मंत्री की अपेक्षाकृत-निर्बलता का एक और भी कारण है। उसकी 'सत्ता का आधार दल में उसका प्रभाव होता है और कोई परिभाषित शक्तियां नहीं होती जो विधि द्वारा प्रदत्त हों।'* इस प्रकार वह अपने साथियों को बाध्य नहीं कर सकता, अपितु उन्हें समझा बुझाकर अपने विचारों के अनुकूल चलने के लिये राजी करना पड़ता

* लास्की : 'इंगलिस्तान में संसदीय शासन', पृष्ठ २४१

है। प्रधान मंत्री की शक्तियों के विषय में आगे भी कुछ लिखा जायेगा।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि फ्रांस में केबिनेट पद्धति बिल्कुल भिन्न प्रकार से कार्य करती रही है और उसके परिणाम भी भिन्न हुए हैं, क्योंकि प्रधान मंत्री केबिनेट का उसी प्रकार नेतृत्व नहीं करता जैसे कि ब्रिटेन में प्रधान मंत्री करता है और फ्रांस में केबिनेट एकरूप नहीं होते।

केबिनेट पद्धति की तीसरी प्रमुख विशेषता मन्त्रियों का उत्तरदायित्व है। यह उत्तरदायित्व दो प्रकार का है, वरन् तीन ही प्रकार का है—वैधानिक, राजनैतिक और अंतःकेबिनेट उत्तरदायित्व। *वैधानिक* उत्तरदायित्व का यह अर्थ है कि क्राउन के नाम से जारी होने वाले कार्यपालिका संबन्धी आदेश या आज्ञप्ति पर जो मन्त्री हस्ताक्षर करता है वह उसके लिये उत्तरदायी है और यदि उसे अवैध (illegal) सिद्ध कर दिया जाये तो उसके कुपरिणामों के लिये उस पर न्यायालय में दावा हो सकता है। *राजनैतिक* उत्तरदायित्व, जो शासन-विज्ञान और कला में ब्रिटेन की मुख्य देन है, उससे सर्वथा भिन्न है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक मन्त्री को अपने सार्वजनिक कामों के लिये लोकसभा के समक्ष उत्तर देना होगा, चाहे वह मंत्री केबिनेट का सदस्य हो या न हो। यह उत्तरदायित्व सुशासन के लिये उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि मंत्रियों की कार्यकुशलता और ईमानदारी। इसका केवल यही अर्थ है कि यदि विधान-मंडल की लोकसभा किसी मंत्री के सार्वजनिक कार्य की निन्दा करती है तो उसे पद-त्याग करना होता है। कोई मंत्री राज्य के मामलों का प्रशासन तभी तक कर सकता है जब तक कि उसके कार्यों और नीति का अनुमोदन संसद कर दे। ज्योंही वह उसके विश्वास को खो देता है, त्योंही उसे पदत्याग करना पड़ता है। किसी मंत्री की नीतियों को अस्वीकर करने के लिये संसद के पास कई तरीके हैं। वह उसमें अविश्वास का सीधा प्रस्ताव ही पारित कर सकती है, या उसके किसी विशेष कार्य की आलोचना और निन्दा कर सकती है, या उसके द्वारा पेश किये हुए किसी विधेयक को पारित करने से इनकार कर सकती है या उसमें ऐसे परिवर्तन कर सकती है जो उसे स्वीकार न हों। संक्षेप में, राजनैतिक उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि अप्रसन्न लोकसभा किसी मंत्री को या समूचे केबिनेट को ही पदत्याग करने के लिये विवश कर सकती है। *अन्तःकेबिनेट* उत्तरदायित्व को सामूहिक उत्तरदायित्व भी कहते हैं। राजनैतिक उत्तरदायित्व के समान यह भी केबिनेट पद्धित का विशेष गुण है। इसका अर्थ यह है कि केबिनेट का प्रत्येक सदस्य समूचे केबिनेट के विनिश्चयों के लिये उत्तरदायी है और उससे बाध्य है। "केबिनेट में जो कुछ होता है उसके लिये उसका प्रत्येक सदस्य, जो त्यागपत्र नहीं दे देता, सर्वथा उत्तरदायी होता है, और उसे बाद में यह कहने का अधिकार नहीं है कि वह समझौते के लिए किसी बात पर सहमत हो गया था या किसी और बात

पर अपने साथियों द्वारा फुसला लिया गया था।" यह बात १८७८ में लार्ड सेलिस्बरी ने कही थी। केबिनेट एक इकाई के रूप में काम करती है, राजा के सम्बन्ध में वह एक इकाई है और संसद तथा देश के सम्बन्ध में भी वह एक इकाई है। वह राजा को एक होकर मंत्रणा देती है और संसद के समक्ष अपने विचारों को एक होकर ही पेश करती है। केबिनेट के किसी सदस्य को यह अधिकार नहीं होता कि वह उसके किसी विनिश्चय की आलोचना या विरोध कर सके। यदि उसका केबिनेट से मतभेद हो जाये तो उसके लिये यही विकल्प है कि वह पद-त्याग करदे। एक मंत्री के विरुद्ध निन्दा-प्रस्ताव समूचे मंत्रिमंडल के विरुद्ध निन्दा-प्रस्ताव समझा जाता है। वे एक साथ ही तैरते या डूबते हैं। केबिनेट पद्धति का सिद्धान्त यह है 'प्रत्येक सब के लिये है और सब प्रत्येक के लिये हैं।' यहां तक कि जब कोई मंत्री केबिनेट में किसी बात पर विचार किये बिना अकेला ही अपने विभाग में किसी प्रश्न पर विनिश्चय कर लेता है तब भी समूची केबिनेट उसके लिये उत्तरदायी हो जाती है। किन्तु ऐसे मामलों मे केबिनेट को यह अधिकार है कि वह उस मंत्रि के विनिश्चय को न अपनाये; और फिर सम्बद्ध मंत्री ही त्यागपत्र देता है। सर सेम्युअल होर ने एबीसीनिया के विषय में लॉवल से जो संधि की थी उसे केबिनेट ने नहीं अपनाया था जिसका परिणाम यह हुआ था कि जब संसद ने उसको अस्वीकार कर दिया तब केवल सर सेम्युअल को ही विदेश सचिव के पद से त्यागपत्र देना पड़ा था।

मंत्रिमंडलीय उत्तरदायित्व का सिद्धान्त ब्रिटिश पद्धति का मूलाधार है और शासन की यही कला और विज्ञान ग्रेट ब्रिटेन की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है। किन्तु फ्रांस या अन्य देशों के समान वह ब्रिटेन की सांविधानिक विधि का अङ्ग नहीं है, बल्कि पूरे तौर पर प्रथा या अभिसमय (Convention) पर आधारित है। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सामूहिक उत्तरदायित्व का मूल अन्ततोगत्वा इस बात में है कि केबिनेट 'दल के आधार' पर बनती है। केबिनेट पद्धति को ठीक प्रकार से चलाने के लिये यह अनिवार्य है क्योंकि नीतियों के निर्माण में इसी से पारस्परिक विश्वास तथा सहिष्णुता उत्पन्न होती हैं जिनके बिना मन की एकता असम्भव है।

सामूहिक उरदायित्व के सिद्धान्त के साथ यह बात भी है कि केबिनेट एक *गुप्त* समिति होती है। केबिनेट अपना विचार-विमर्श गुप्त रूप में करती है और उस पर परदा डाल देती है। प्रत्येक केबिनेट मंत्री को प्रिवी परिषद् के समक्ष शपथ लेनी पड़ती है कि वह केबिनेट के भेद किसी को नहीं बतायेगा। उसके लिये 'शासन-भेद-अधिनियम' (Official Secrets Act) भी है। किन्तु शायद इस नियम का पालन अधिकांश में उसकी व्यावहारिक उपयोगिता के कारण किया जाता है। केबिनेट पद्धति तभी सुचारु रूप से काम कर सकती है जब कि उसके सदस्यों के मतभेदों को

संसार मे न खोला जाये। केबिनेट एक ओर तो राजा के समक्ष तथा दूसरी ओर संसद् मे, तभी संयुक्त मोर्चा बना सकती है ; और तभी सामूहिक उत्तरदायित्व बना रह सकता है जब कि पर्दे के पीछे होने वाली बातों को संसार के समक्ष न खोला जाये। यदि किसी मंत्री का प्रत्येक कथन जनता को ज्ञात हो जाये तो कभी स्वतन्त्र रूप से वाद-विवाद नहीं हो सकता। किन्तु गुप्तता का नियम पूर्णतः कठोर नहीं है। जब कोई मंत्री अपने साथियों के साथ या प्रधान मंत्री के साथ गम्भीर मतभेद होने के कारण त्यागपत्र देता है, और सभा मे स्पष्टीकरण देना चाहता है तो कुछ केबिनेट के भेद अवश्यमेव खुल जाते हैं। इसके अतिरिक्त जब केबिनेट की कार्यवाहियां इतिहास का अङ्ग बन जाती हैं तब इस नियम पर जोर नहीं दिया जाता।

इसी नियम के कारण सदस्यो को केबिनेट की कार्यवाही लिखने की मनाही है। केवल प्रधान मंत्री को, और अब केबिनेट के सरकारी सचिव को भी, उस कार्यवाही का विवरण लिखने का अधिकार है। प्रधान मंत्री समाचारपत्रों को केबिनेट के महत्त्वपूर्ण विनिश्चियो का संक्षिप्त विवरण दे सकता है। इस पद्धति की एक अन्य विशेषता भी है। केबिनेट विधान-मंडल (Legislature) से भिन्न कोई वस्तु नहीं है, अपितु उसका 'अभिन्न और सजीव अङ्ग' समझा जा सकता है। ब्रिटिश संसद ही केबिनेट को जीवन प्रदान करती है और उसके समर्थन वापस ले लेने पर केबिनेट को पदत्याग करना पड़ता है। ब्रिटिश और अमरीकी पद्धतियो में यही मूल अंतर है।

उपरोक्त विवरण को संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ग्रेट ब्रिटेन में केबिनेट पद्धति की निम्न मुख्य विशेषताएँ हैं :— प्रधान मंत्री का नेतृत्व ; केबिनेट का दलीय आधार, और उसमे एकरूपता संगठन और एकता का होना ; उसका सामूहिक उत्तरदायित्व और लोकसभा के प्रति उसकी जवाबदेही ; अंततः उसकी कार्यवाही का गुप्त रहना। ये सब विशेषताएँ फ्रांस और अन्य देशों मे, जिन्होंने इस पद्धिति को अपनाया है, नहीं पाई जातीं ; क्योंकि ब्रिटेन मे जो परिस्थितियाँ हैं वे अन्य देशों मे नहीं पाई जातीं।

**केबिनेट के कार्य:—** केबिनेट के कार्यों का वर्णन संक्षेप मे करना आसान नहीं है ; वे इतने विविध हैं जितने कि किसी देश की सरकार के कार्य हो सकते हैं। केबिनेट राष्ट्र की उच्चतम कार्यपालिका (executive) होती है, वह राष्ट्रीय नीति का निदेशन तथा निर्माण करती है और शासन के विभिन्न प्रशासन-विभागों से उस पर अमल करवाती है। शासन के कार्य मे जो समस्यायें उत्पन्न होती हैं उसके विषय मे उसका निर्णय अन्तिम होता है। केबिनेट की स्वीकृति के बिना किसी महत्त्वपूर्ण नीति का निर्धारण या उसमे परिवर्तन नहीं हो सकता। लास्की के शब्दों में कहा जा

सकता है कि उसका वास्तविक कार्य 'उस दल के या उन दलों के नाम से देश पर शासन करना है जिनके कारण उसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त है'।*

शासन-यंत्र समिति (Machinery of Government Committee) की रिपोर्ट के अनुसार, केविनेट के तीन मुख्य कार्य हैं। वह ये हैं; (१) संसद में पेश की जाने वाली नीति का अन्तिम निर्धारण, (२) संसद द्वारा निर्धारित नीति के अनुरूप राष्ट्रीय कार्यपालिका का सर्वोच्च नियंत्रण, और (३) राज्य के विभिन्न विभागों के प्राधिकारों (authorities) का निरन्तर परिसीमन करना तथा उन्हें संबन्धित करना। किन्तु ग्रेट ब्रिटेन में केविनेट के केवल ये ही कार्य नहीं हैं। वह और भी कई कार्य करने लगी है जो इतने ही महत्त्वपूर्ण हैं। रैमजे म्योर (Ramsay Muir) ने निम्नाङ्कित कार्यों का उल्लेख किया है: (४) केविनेट ही सब विधि-निर्माण के लिये उत्तरदायी है, और संसद में पेश होने वाले लगभग सभी विधान-विधेयकों को विस्तार से तैयार करने का उत्तरदायित्व भी उसी का है। वास्तव में विधि-निर्माण में उसका भाग इतना महत्त्वपूर्ण होता है कि हम कह सकते हैं कि आजकल केविनेट ही संसद की सहमति से यह करती है। (५) क्रियात्मक रूप में वही यह भी निर्धारित करती है कि क्या राजस्व (Revenue) उगाहा जायेगा, किस प्रकार उगाहा जायेगा और उसे कैसे व्यय किया जावेगा। वजट (Budget) को संसद में पेश करने से पूर्व सदा केविनेट में रखा जाता है तथा वहां उस पर विचार होता है। (६) वही काफी हद तक यह भी विनिश्चय करती है कि संसद में क्या कार्य पेश होगा और विविध कार्यों पर विचारार्थ कितना कितना समय दिया जायेगा। (७) अन्ततोगत्वा, ग्रेट ब्रिटेन में तथा बाहर लगभग समस्त महान राज्य-पदों पर नियुक्तियां भी केविनेट ही करती है।†

पहले तीन कार्यों पर तो टिप्पणी की आवश्यकता ही नहीं है। वे तो केविनेट के कार्य हैं ही, क्योंकि केविनेट राज्य में सर्वोच्च नीति-निर्मात्री तथा सामान्य-नियन्त्रक निकाय होती है। वही राष्ट्रीय नीति के आधार को निर्धारित करती है तथा वही निश्चय करती है कि विविध राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान कैसे किया जाये। जब वह नीति का निर्धारण करके प्रत्येक सामयिक समस्या का हल निकाल लेती है तब यदि उस पर संसद की स्वीकृति आवश्यक होनी है तो उसे उसमें पेश कर दिया जाता है अन्यथा उसे आवश्यक कार्यवाही के लिये समुचित विभाग को सौंप दिया जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि स्वयं केविनेट राज्य-कार्यों का प्रशासन नहीं करती और न किसी नीति को ही क्रियान्वित करती है। यह काम तो विविध विभागों का

---

* Laski. *op ct* page 221.

† जेनिंग्स कहता है कि नियुक्तियों को तब तक अस्थायी माना जाता है जब तक संसद उनका समर्थन न करदे।

है जिन पर केबिनेट के विविध सदस्य प्रधान होते हैं। केबिनेट का कार्य तो केवल नीति का निर्धारण करना तथा विभिन्न विभागों के कार्य का समन्वय करना है। केबिनेट के अतिरिक्त इन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्यों को करने वाला कोई निकाय नहीं है। केबिनेट किसी विभाग के कार्य की बारीकियों पर विचार नहीं करती और जिस प्रश्न का कोई राजनैतिक महत्त्व न हो उसका विनिश्चय मन्त्री पर छोड़ दिया जाता के। मन्त्री अपने विवेक से ही यह निर्णय करता है कि उसके विभाग के किन मामलो को केबिनेट मे प्रस्तुत किया जाये; यदि उसे किसी विषय मे सन्देह हो तो वह प्रधान मन्त्री से परामर्श कर सकता है। यदि किसी विषय का दो तीन विभागो से सम्बन्ध हो तथा उनमे उसके विषय मे मतभेद हो जाये तो उसे अवश्यमेव केबिनेट मे ही विनिश्चय के लिये भेज दिया जाता है। जब संसद का सत्र चालू होता है तब केबिनेट प्रायः एक बार प्रति सप्ताह कार्य करने के लिये समवेत होती है तथा संसद के विश्रामकाल मे वह कम बार समवेत होती है। उसकी विशेष बैठकें रात्रि या दिन में कभी भी हो सकती हैं और उनके लिये अल्पकालिक सूचना ही पर्याप्त है।

नीति-निर्माण तथा विविध विभागों के कार्य का निरीक्षण तो प्रत्येक देश मे केबिनेट करती ही है, किन्तु ग्रेट ब्रिटेन मे वह जिस रूप मे संसद के कार्य का निदेशन तथा नियन्त्रण करती है वैसा यूरोप के अन्य देशों मे, जिन्होने केबिनेट-पद्धति को अपनाया है, कहीं नहीं होता। ग्रेट ब्रिटेन में केबिनेट प्रत्येक संसद-सत्र के आरम्भ मे विधान कार्य-क्रम पेश करती है; उसके सदस्य सब विषय के विधान-विधेयकों को लोकसभा मे पेश करते हैं, उनकी व्याख्या करते हैं तथा उन्हें उसमे पारित करवाते हैं। केबिनेट को जिन मामलों मे रुचि होती है उनके विचारार्थ वह लोकसभा का अधिकांश समय ले लेती है। दूसरे स्थान पर बताया जायेगा कि वह राज्य की वित्त-नीतियों (financial policies) पर भी लगभग पूरा नियन्त्रण रखती है। केबिनेट लोकसभा पर जो नियन्त्रण रखती हैं उसी के आधार पर रैमजे म्योर ने उसे सर्वशक्तिमान तथा डिक्टेटर बताया है।

केबिनेट का एक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है जिसकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए बेजहॉट (Bagehot) ने कहा है कि 'केबिनेट कार्यपालिका तथा विधान सम्बन्धी विभागों को जोड़ने वाली कड़ी है, उनको साथ रखने वाला कब्जा है।' केबिनेट राजा और संसद के बीच मे पुल है, और कार्यपालिका तथा विधान-मण्डल का प्रगाढ़ सम्पर्क कराती है, जो 'राष्ट्रपति-पद्धति' की शासन व्यवस्था (Presidential system of Government) मे सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त केबिनेट संसद का नेतृत्व भी करती है। केबिनेट व्यवस्था मे यह निश्चय रहता है कि शासन के कार्यो को वे ही लोग चलाते हैं जिनके विचार लोकसभा मे

बहुमत के विचारों से मेल खाते हैं और वे लोग राष्ट्र के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं ; लास्की के शब्दों मे 'केबिनेट राज्य के सर्वोच्च अङ्ग का समर्थन प्राप्त करके सब कार्यों के लिये एक दृष्टिकोण की धारा वहा देती है।' (It pushes a stream of tendency through affairs by obtaining for its course the approval of the sovereign organ of the state )

**केबिनेट की बैठकें तथा समितियां**— केबिनेट की बैठकें प्राय. प्रधान मंत्री के सभापतित्व में तथा उसके सरकारी निवासस्थान पर अर्थात् १०, डाउनिंग स्ट्रीट मे होती हैं। उसमे कार्यवाही के नियम नहीं होते तथा निश्चित गणपूर्ति (Quorum) भी नहीं होती, और वाद-विवाद भी प्रायः अनौपचारिक तथा वातचीत जैसा होता है। सिवाय उस अवस्था के जब मतभेद आधारभूत हो जाये, प्राय विनिश्चय बहुमत के आधार पर नहीं होते। प्राय. पारस्परिक आदान-प्रदान के द्वारा लगभग एकमत होकर समझौते करने का प्रयत्न किया जाता है। एक लेखक ने कहा है कि समझौता ही प्रथम तथा अन्तिम नियम है। इस प्रकार केबिनेट मत्री किसी विषय पर तब तक बातचीत करते रहते हैं जब तब कि कोई मध्य मार्ग न निकल आये।

बैठकों को कार्य-सूची प्रधान मंत्री ही तैयार करता है। किन्तु ध्यान रहे , बाह्य परिस्थितियों से अधिकांश में निर्धारित हो जाता है कि प्रधान मन्त्री केबिनेट के समक्ष क्या क्या बातें रखेगा। लोकसभा किसी विषय पर पर्याप्त आलोचना करके उस पर विचार करने के लिये केबिनेट को बाध्य कर सकती है, दूसरी ओर लोकमत भी उसे ऐसे ही बाध्य कर देता है। किसी विदेशी शक्ति की किसी कार्यवाही से भी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। संक्षेप में, देश में तथा बाहर की घटनाओं के कारण केबिनेट के विचारार्थ प्रश्न स्वयमेव उठ खड़े होते हैं।

अन्य निकायों के समान केबिनेट को भी समितियों का प्रयोग करना आवश्यक प्रतीत हुआ है। समिति द्वारा ही सारांश में मतभेद मिटाकर मध्यमार्ग ढूँढ लिया जाता है और समितियां ही विभागो द्वारा विस्तार से उन विनिश्चयों को क्रियान्वित करवाती हैं जिन्हें सिद्धान्त रूप मे केबिनेट स्वीकार कर चुकी हो। किन्तु कोई नियमित तथा नियत समितियो की व्यवस्था नहीं है ; जैसी आवश्यकता होती है, वैसी ही विशिष्ट समितियां बना दी जाती हैं। गृह विभाग तथा वित्त विषयों सम्बन्धी दो समितियां स्थायी होती हैं। साम्राज्य रक्षा समिति (Committee of Imperial Defence) केबिनेट समिति न होते हुए भी उस रूप में कार्य करती है। उसका सभापति प्रधान मन्त्री होता है। कभी कभी उसमें अधिराज्यों (Dominions) के प्रतिनिधियों को भी बुलाया जाता है।

सन् १६१७ तक केबिनेट की कार्यवाही तथा विनिश्चयों का कोई सरकारी अभिलेख (Record) नहीं रखा जाता था। प्रधान मन्त्री के अतिरिक्त कोई भी

सदस्य किसी कार्यवाही को लिख नहीं सकता था, और प्रधान मन्त्री भी केवल राजा को सूचना देने के लिये या अपने प्रयोजनार्थ ही लिखा करता था। प्रथम विश्व युद्ध मे लॉयड जार्ज ने इस परम्परा को तोड़ कर एक केबिनेट सचिव (Secretary) उसके विनिश्चयों का अभिलेख रखने के लिये नियुक्त कर दिया। यह व्यवस्था उपयोगी सिद्ध हुई तथा अब एक नियमित केबिनेट सचिवालय (Secretariat) है। अब एक नई चीज भी बन गई है जिसे प्रायः 'अंतरङ्ग केबिनेट' (Inner Cabinet) भी कहते हैं। इसके निर्माण के कई कारण तो यह हैं कि केबिनेट बहुत बड़ी हो गयी है; किसी विभाग मे कार्य को अविलम्ब सम्पन्न करने की आवश्यकता से प्रेरित होकर भी मन्त्री केवल प्रधान मन्त्री से ही परामर्श कर लेता है और उस मामले को केबिनेट मे नहीं भेजता चाहे वह महत्त्वपूर्ण ही क्यों न हो। किन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि प्रत्येक केबिनेट में प्रायः चार पॉच व्यक्ति बहुत योग्यता, अनुभव तथा महान् व्यक्तित्व वाले होते हैं जिनसे प्रधान मन्त्री प्रायः महत्त्वपूर्ण विषयो पर परामर्श करता है। ये ही व्यक्ति अंतरग परिषद् मे होते हैं जो समूचे मंत्रि-मंडल की नीति का निदेशन करती है। दोनों विश्व युद्धो मे जो युद्ध केबिनेट बनी थीं वे भी युद्ध सम्बन्धी अंतरंग केबिनेट के समान ही थीं।

**प्रधान मन्त्री की शक्तियां तथा कार्य:**- हम केबिनेट के कार्यों का वर्णन कर चुके हैं जो ऐसी धुरी होता है जिसके चारो ओर शासन का समस्त यत्र घूमता है। अब हम पुन. प्रधान मंत्री के विषय को लेते हैं जिसे एक बार ग्लेड्सटन ने 'केबिनेट रूपी भवन की मुख्य आधार-शिला' बताया था। वह इससे भी अधिक है; विधि के अनुसार चाहे उसकी स्थिति ऐसी न हो फिर भी वास्तव में वह इगलैंड का राजनैतिक शासक होता है, राज्य के प्रशासन का प्रधान होता है। यद्यपि विधि-रूप मे उसकी शक्ति की कहीं भी परिभाषा नहीं की गई है, फिर भी 'उसे इतनी शक्ति प्राप्त है जितनी संसार मे किसी भी सांविधानिक शासक को प्राप्त नहीं है, सयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति को भी नहीं। जब तक उसके दल का लोकसभा मे बहुमत है, तब तक वह ऐसे काम कर सकता है जो अमेरिका का राष्ट्रपति भी नहीं कर सकता; वह वचन दे सकता है कि अमुक प्रकार की संधि की जायेगी तथा स्वीकृत हो जायेगी, अमुक विधि पारित की जायेगी, या अमुक अमुक धन राशि संसद द्वारा स्वीकार कर ली जायेगी।'*

हम पहले ही देख चुके है कि प्रधान मन्त्री को केबिनेट का नेता होने के नाते कितनी शक्तियां प्राप्त हैं। राजा की सहमति से वह मंत्रियो को नियुक्त करता तथा हटाता है और उनमे विभागो का बँटवारा करता है। वही विभागों के आपसी मतभेदों को निबटाता है और मंत्रियो के बीच उत्पन्न होने वाली कठिनाइयो को दूर

* Ramsay Muir 'How Britain is Governed', page 83.

करता है। मन्त्री अपने विभागों की प्रमुख समस्याओं के विषय में उसी से परामर्श करते हैं और वह माँग भी कर सकता है कि उससे इस प्रकार परामर्श किया जाये। किन्तु उसके लिये प्रत्येक विभाग के कार्य से सम्पर्क बनाये रखना असंभव है; क्योंकि सरकार के कार्य बहुत अधिक बढ़ गये हैं। वह केवल इसी बात का ध्यान रखने की आशा कर सकता है कि मंत्री सरकार की नीति पर निष्ठापूर्वक अमल करें, और अपने विभागों की नीति निर्धारित करने में स्वच्छन्दता न बरतें। महत्त्वपूर्ण नियुक्तियों में, जो क्राउन द्वारा की जाती हैं, जैसे कि १९४७ से पूर्व भारत के गवर्नर जनरलों, तथा अब भी उपनिवेशों (Colonies) के गवर्नरों आदि की नियुक्तियों में आखिरी फैसला उसकी ही राय पर निर्भर होता है और इस प्रकार वह बहुत लोगों को लाभ पहुँचा सकता है; वह सब विभागों पर आंख रखता है तथा देखता है कि वे केबिनेट के फैसलों पर अमल करें। केबिनेट के मन्त्रियों को यदि कोई सूचना सम्राट् तक पहुँचानी होती है अथवा सम्राट् किसी विषय पर केबिनेट मंत्रियों से सम्बन्ध कायम करना चाहता है तो वह प्रधान मन्त्री के द्वारा ही होता है। और ब्रिटिश सरकार व डोमीनियनों के प्रधान मन्त्रियों के बीच सम्बन्ध भी प्रधान मन्त्री के द्वारा ही स्थापित होता है। अर्थात् वह केबिनेट और राजा के मध्य 'संचार का माध्यम' (Channel of Communication) है, और अधिराज्यों (Dominions) के प्रधान मन्त्रियों से उसका सीधा संचार होता है। वह साम्राज्य-रक्षा-समिति तथा आर्थिक-मन्त्रणा-परिषद् जैसे निकायों का निर्माण करता है और उपरोक्त समिति की तथा साम्राज्य सम्मेलनों (Imperial Conferences) की बैठकों में सभापतित्व करता है। वह कई बार विदेशी राजदूतों का स्वागत करता है तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधित्व करता है। वह लोकसभा का नेता होता है तथा उससे सब महत्त्वपूर्ण मामलों और समस्याओं पर सरकार की ओर से बोलने की आशा की जाती है। वह लोकसभा में सामान्य व्यापक-नीति के विषय में प्रश्नों का उत्तर देता है। विदेश नीति का निर्माण करने में भी उसका बहुत बड़ा भाग होता है। वह अपने दल का नेता होता है और उस रूप में वह दल की केन्द्रीय व्यवस्था पर नियंत्रण रखता है तथा राजनैतिक प्रचार में भी महत्त्वपूर्ण भाग लेता है।

प्रधान मन्त्री की बहुमुखी शक्तियों को याद रखने तथा समझने के लिये यह ध्यान रखना चाहिये कि (१) वह केबिनेट-भवन की मुख्य आधार-शिला है। सर्वोच्च और पूरा पूरा नियत्रण करने वाली सत्ता अर्थात् केबिनेट में वह केन्द्र है। प्रधान मंत्री ही केबिनेट को बनाता है, जब तक वह रहता है तभी तक उसकी केबिनेट भी रहती है; केबिनेट को खतम करना भी उसी पर निर्भर है। (२) लोकसभा का नेता है, (३) विशेष रूप में क्राउन का विश्वस्त सलाहकार है तथा बादशाह और केबिनेट के मध्य कड़ी है, और (४) अप्रत्यक्ष रूप से मतदाताओं का नामजद व्यक्ति है। ब्रिटिश

संविधान में उसकी स्थित सबसे ज्यादा महत्त्व की होती है, तथा उसे हम सूर्य के समान समझ सकते हैं जिसके चारों ओर सांविधानिक ढांचे के बहुत से नक्षत्र चक्कर लगाते हैं। हाल की घटनाओं के फलस्वरूप उसका प्राधिकार और भी बढ़ गया है। किन्तु इस संबंध में दो बातें याद रखनी चाहियें। प्रधान मंत्री का पद 'जैसा उसका अधिकारी उसे बनाना चाहे और जैसा उसे अन्य मंत्री बनाने दें वैसा ही बन सकता है।'* दूसरे शब्दों में उसकी शक्ति और प्राधिकार बहुत हद तक उसके व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा और अपने सहयोगियों के साथ उसके सबंधों पर निर्भर हैं। डिसरायली, ग्लेड्स्टन, पील और चर्चिल जैसे महान व्यक्ति शक्तिशाली प्रधान मंत्री होते हैं जिनके प्राधिकार को बहुत कम सहयोगी चुनौती दे सकते हैं। दूसरी बात, जैसा कि पहले बतांया जा चुका है, वह अपनी शक्तियों का प्रयोग अपने दल की व्यवस्था के अनुसार ही कर सकता है। लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के कारण ही उसे समस्त शक्ति तथा प्राधिकार प्राप्त होते हैं। यदि उसके दल का बहुमत समाप्त हो जाये या वह दल उसके नेतृत्व के विरुद्ध विद्रोह कर दे तो उसकी सारी शक्ति समाप्त हो जाती है। इसका आशय यह है कि चाहे उसको शक्ति कितनी भी महान हो, फिर भी उसे उस शक्ति के प्रयोग में अपने साथियों का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है। वह निरंकुश शासक के समान व्यवहार नहीं कर सकता। इस विषय में वह सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की तुलना में कम शक्तिशाली ठहरता है।

अंत में हमें ब्रिटेन की अन्य विसंगतियों (anomalies) के समान यहां भी एक विसंगति दिखाई देती है। यद्यपि प्रधान मंत्री तथा केबिनेट ब्रिटिश सांविधानिक व्यवस्था में वास्तविक नियंत्रक तत्त्व हैं, तथापि दोनों का ही कुछ समय पूर्व तक संविधान-विधि में कोई स्थान नहीं था। संविधान की दृष्टि में, केबिनेट क्राउन के कुछ मंत्रियों का अनौपचारिक संगठन ही था जिसके विनिश्चयों का तब तक कोई वैध प्रभाव नहीं था जब तक कि संसद उन्हें स्वीकार न करले या प्रिवी परिषद उनका अनुसमर्थन न कर दे। प्रधान मंत्री अपना वेतन प्रधान मंत्री होने के नाते नहीं पाता था, अपितु ट्रेजरी का प्रथम लार्ड (First Lord of the Treasury) होने के नाते या अन्य किसी रूप में पाता था। प्रधान मंत्री के रूप में उसके कोई वैधानिक कर्तव्य भी नहीं थे, और उसका नाम संसद के अधिनियमों (Acts) में नहीं आता था १९०५ तक उसकी स्थिति को सामाजिक प्राथमिकताओं की तालिका (Table of Social Precedence) में भी मान्यता नहीं दी गई थी। जब प्रधान मंत्री १८६३ में क्लाइड (Clyde) गये थे तब एक जहाज का कप्तान उनका सम्मान करने के लिये तोपों की सलामी देना चाहता था, किन्तु जलसेना के नियमों में प्रधान मंत्री को कोई मान्यता नहीं दी गई थी। कप्तान ने उनका सम्मान लार्ड वार्डन ऑफ दी

---

* Jennings · 'The British Constitution', page 159

सिंक पोर्ट्स (Lord Warden of the cinque ports) के रूप में करके इस कठिनाई को हल किया। ग्लेडस्टन ने ठीक ही कहा है कि इस विस्तृत विश्व में 'कहीं भी इतने बड़े पदार्थ की इतनी छोटी छाया नहीं होती; कहीं भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसमें इतनी महान् शक्ति निहित हो, किन्तु औपचारिक उपाधि के रूप में दिखाने के लिये कुछ न हो।' १९३७ के क्राउन के मन्त्री अधिनियम (Ministers of the Crown Act) से स्थिति कुछ बदल गई है।

**क्राउन तथा केबिनेट**—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है ग्रेट ब्रिटेन में जिस प्रकार की संसदीय पद्धति लागू है उसमें औपचारिक कार्यपालिका (Formal executive) तथा वास्तविक कार्यपालिका में भेद करना होता है। क्राउन औपचारिक कार्यपालिका है: उसका साकार प्रतीक राजा है। केबिनेट वास्तविक अथवा राजनैतिक कार्यपालिका है, वह वास्तव में देश पर शासन करती है। हम पिछले पृष्ठों में क्राउन तथा केबिनेट की शक्तियों तथा कार्यों का वर्णन कर चुके हैं; अब दोनों के बीच संबन्ध निर्धारित करना शेष है।

ब्रिटिश संविधान का यह मूल सिद्धान्त है कि राजा ठीक अथवा गलत कुछ नहीं कर सकता। क्राउन के नाम से जो भी सार्वजनिक कार्य किये जाते हैं उनका उत्तरदायित्व मंत्रियों पर होता है, राजा पर नहीं। इसका अर्थ यह कि प्रत्येक सामयिक समस्या पर नीति निर्माण करना, विनिश्चय करना केबिनेट का ही काम है, और राजा को उस नीति तथा उन विनिश्चयों पर चलना पड़ता है। हाँ यह ठीक है कि यदि राजा किसी नीति को पसन्द न करे तो उसे त्यागने के लिये अपने मंत्रियों को समझाने का प्रयत्न कर सकता है, किन्तु यदि मंत्री अपनी बात पर दृढ़ हों तथा राजकीय मंत्रणा को मानने से इनकार करदें तो राजा को झुकना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में राजा सांविधानिक रूप में बाध्य है कि अपने मंत्रियों की मंत्रणा पर चले। फिर भी बुद्धिमान तथा उद्योगी राजा राज्य की नीतियों का निर्धारण में काफी प्रभाव डाल सकता है। उसका प्रधान मंत्री से लगातार सम्पर्क रहता है और नीति के महत्त्वपूर्ण अंगों के विषय में वह सूचना प्राप्त करता रहता है। वह अन्य मंत्रियों से भी मिल सकता है तथा उसके पास सूचना प्राप्त करने के अन्य साधन भी होते हैं। वह यह मांग कर सकता है कि उसे सूचना दिये बिना किसी विभाग में किसी नई नीति को न अपनाया जाये और केबिनेट में जिन प्रश्नों पर विचार होना हो उन पर विनिश्चय होने से पूर्व वे उसके पास भेजे जायें वह कोई ऐसा प्रश्न उठा सकता है जो, उसके विचार में, केबिनेट में पेश होना चाहिये। इन उपायों से वह घटनाक्रम पर कुछ प्रभाव डाल सकता है। उसके प्रभाव की सफलता एक तो इस बात पर निर्भर है कि उसकी आलोचना और सुझाव किस प्रकार के हैं, और अंशतः इस बात पर निर्भर है कि वे सत्तारूढ़ दल (Party-in-power) की राजनैतिक विचार-धारा तथा नीति

से किस हद तक मेल खाते हैं। प्रकाशित आलेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश बादशाह राज्य की नीतियों के निर्धारण में नगण्य तो कदापि नहीं है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, राजा की उच्च स्थिति, व्यक्तियों और वस्तुओं के विषय में उसके लम्बे अनुभव तथा ज्ञान, और इन सबके साथ उसकी निष्पक्षता के कारण उसकी मंत्रणा का ऐसा मूल्य हो जाता है कि उसकी यूंही उपेक्षा नहीं की जा सकती। केबिनेट के संबन्ध में उसकी *शक्ति* काफी वास्तविक होती है।

**केबिनेट तथा संसद—** केबिनेट का मुकुट से ही नहीं अपितु संसद से भी बहुत गहरा संबन्ध है। संसद से उसका सम्बन्ध इस बात का एक अत्यन्त मनोरंजक उदाहरण है कि ब्रिटिश संविधान पद्धति में सिद्धान्त (Theory) तथा आचरण (Practice) में कितना महान अन्तर होता है। संसदीय शासन-व्यवस्था के वैधानिक सिद्धान्त के अनुसार, संसद, जिसका अर्थ व्यवहार में 'लोकसभा' ही है, सर्वोच्च होती है। मंत्री जो भी कार्य करते हैं, वे क्राउन को जो भी मंत्रणा देते हैं, उसके लिये वे वैयक्तिक रूप में तथा सामूहिक रूप में, लोकसभा के प्रति उत्तरदायी हैं। केबिनेट देश पर शासन करती है, किंतु संसद के नियंत्रण तथा निरीक्षण में रहते हुए। वह संसद की स्पष्ट स्वीकृति तथा अनुमोदन के बिना कर के रूप में एक आना भी नहीं ले सकती तथा किसी चीज पर एक पाई भी व्यय नहीं कर सकती। वह संसदीय अनुमोदन के बिना युद्ध या शांति नहीं कर सकती। केबिनेट का अस्तित्व ही लोक-सभा की इच्छा पर निर्भर है। अप्रसन्न या संशय-शील सभा मन्त्रिमंडल को पदच्युत कर सकती है। यदि सदन किसी केबिनेट की निन्दा करदे या उसके द्वारा महत्त्वपूर्ण समझे जाने वाले किसी प्रस्ताव को स्वीकार करने से इनकार करदे तो वह केबिनेट पदारूढ़ नहीं रह सकती। केबिनेट देश पर तभी तक शासन कर सकती है जब तक कि लोकसभा उसके कार्यों तथा नीतियों का अनुमोदन करती रहे। संसद की सर्वोच्च तथा प्राधिकारयुक्त अवस्था को सिद्ध करने के लिये और कुछ कहना अपेक्षित नहीं है। ग्लेड्स्टन के समान जो लोग कहते हैं कि लोकसभा 'सूर्य है जिसके चारों ओर अन्य नक्षत्र घूमते हैं' वे वैधानिक सिद्धान्त के आधार पर बिल्कुल ठीक कहते हैं।

किन्तु वास्तविक व्यवहार में सब बातें कुछ उल्टी ही हैं। केबिनेट लोकसभा की आज्ञाकारिणी सेविका होने की बजाय, जो कि उसकी छोटी छोटी इच्छाओं के सामने झुकती रहे, लोकसभा की स्वामिनी बन गयी है और उस पर इतना नियंत्रण रखती है जितना यूरोप के किसी भी देश में, जहाँ ऐसी शासन-पद्धिति है, नहीं पाया जाता। लोकसभा पर केबिनेट का बढ़ता हुआ आधिपत्य गत साठ वर्षों में ब्रिटेन का सबसे महत्त्वपूर्ण सांविधानिक विकास कहा जा सकता है। अब लोकसभा मंत्रिमंडलों को बनाने या बिगाड़ने वाली नहीं होती; गत साठ सत्तर वर्षों में उसने किसी केबिनेट को पदच्युत नहीं किया। जिस सरकार को उसमें सच्चा बहुमत प्राप्त हो वह

आशा कर सकती है कि जब तक वह संसद रहेगी तब तक वह पदारूढ़ रह सकेगी। वस्तुतः संसद में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं बल्कि स्वयं निर्वाचकगण ही यह निर्णय करते हैं कि राज-कार्यों को प्रशासित करने का उत्तरदायित्व श्रमदल को सौंपा जाय या रूढ़िवादी दल को। केबिनेट अपनी नीतियों के अनुमोदन के लिये निर्वाचकगण का मुँह ताकती है, संसद तो निर्वाचकों के विनिश्चय को पक्का करने वाली रबड़ मुद्रा ही बन गई है।

केबिनेट पर संसद का नियंत्रण कम होने तथा केबिनेट की शक्ति बढ़ने का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह है कि मंत्री उस बात पर चलते हैं जो लोकसभा के अनुकूल दिखाई देती है तथा सदस्यों द्वारा लोकसभा के प्रांगण में की गई आलोचना की उपेक्षा अथवा बहुत कम चिन्ता करते हैं।

और भी कई प्रकार से लोकसभा की शक्ति केबिनेट को प्राप्त हो गई है। विधान-कार्य में केबिनेट का भाग इतना महत्त्वपूर्ण बन गया है कि एक लेखक ने तो यह कह दिया कि आज केबिनेट ही लोकसभा के अनुमोदन से विधि-निर्माण करती है। इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति नहीं दिखाई देती। विधि-निर्माण पर केबिनेट ने पूर्ण नियन्त्रण कर लिया है। संसद में पेश होने वाला प्रत्येक महत्त्व पूर्ण विधेयक केबिनेट की अनुमति से ही आता है और पेश होने से पूर्व उस पर प्रायः केबिनेट विचार कर लेती है। जिस बात के केबिनेट विरुद्ध हो वह सभा में पारित नहीं कराई जा सकती। यही बात वित्त (Finance) के क्षेत्र में है जहाँ केबिनेट का नियन्त्रण लगभग पूर्ण बन गया है। जैसा कि आगे चलकर सिद्ध किया जायेगा संसद किसी नये व्यय की प्रस्थापना (Proposal) नहीं कर सकती तथा सरकार द्वारा मांगी गई राशि को बढ़ा नहीं सकती; वह किसी नये कर की प्रस्थापना भी नहीं कर सकती और सरकार द्वारा प्रस्थापित (Proposed) राशि को बढ़ा नहीं सकती। यद्यपि सिद्धान्त में यह ठीक है कि सरकार संसद की स्वीकृति के बिना पाई भी खर्च नहीं कर सकती, किन्तु वास्तव में व्यय पर लोकसभा का नियंत्रण लगभग शून्य पर ही पहुंच गया है और वह करोड़ों रुपये की स्वीकृति बिना वादविवाद के ही दे देती है। करों पर मतदान के विषय में सभा उसी हद तक नियंत्रण कर सकती है जहां तक कि केबिनेट अनुमति दे दे। इसी प्रकार प्रशासन पर सभा का नियंत्रण प्रभाव-रहित हो गया है। इन बातों को आगे किसी अध्याय में स्पष्ट किया जायेगा। उपरोक्त विवरण यह दिखलाने के लिए पर्याप्त है कि लोकसभा अब केबिनेट की स्वामिनी नहीं रही है वरन् दास बन गई है। इस महान परिवर्तन के कारणों पर अन्यत्र विचार किया जायेगा।

---

अध्याय ५

# स्थायी कार्यपालिका

# सिविल सर्विस तथा प्रशासकीय-विभाग

## (Civil Service and Administrative Departments)

**विषय प्रवेश:**— सर्वोच्च कार्यपालिका में चाहे असाधारण योग्यता तथा ज्ञान वाले व्यक्ति हों, फिर भी वह प्रशिक्षित तथा अनुभवी सिविल सर्विस की सहायता तथा सहयोग के विना प्रशासन नहीं चला सकती। देश के प्रशासन को उसकी केविनेट के सदस्य नहीं चलाते, वरन् अनेक विभाग चलाते हैं जिनमें सिविल सर्विस के सदस्य होते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में देश की विधियों को दिन प्रतिदिन क्रियान्वित करने का निदेश वड़े वड़े प्रशासकीय विभाग करते हैं, यथा कोष (Treasury), गृह कार्यालय (Home Office), विदेश कार्यालय (Foreign Office), व्यापार, कृषि तथा शिक्षा के वोर्ड। पिछले दो अध्यायों में राजनैतिक तथा औपचारिक कार्यपालिका का वर्णन करने के वाद अव पूरक रूप में ब्रिटिश सिविल सर्विस तथा विभागों का उल्लेख करना लाभदायक होगा।

**ब्रिटिश प्रशासन व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ:**- सिविल सर्विस का वर्णन करने तथा मुख्य विभागों को लिखने से पहले ब्रिटिश प्रशासन व्यवस्था की विशेषताओं का निर्देश करना अभीष्ट प्रतीत होता है। प्रायः कहा जाता है कि ब्रिटिश विभागों में वहुत विविधरूपता है जव कि अमेरिकन तथा फ्रांसीसी व्यवस्थाओं में एकरूपता होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में दस नियमित कार्यपालिका-विभागों की एक सी स्थिति होती है; वे कांग्रेस (अमेरिका की संसद्) के अधिनियमों के आधार पर वने हैं, यद्यपि वे अलग अलग समयों पर वनाये गये थे; उन सवके मुख्य अधिकारी एक ही नाम से पुकारे जाते हैं। उन्हें सचिव (Secretary) कहते हैं (केवल दो विभागों डाकघर तथा न्याय विभाग में दूसरी व्यवस्था है) राष्ट्रपति तथा कांग्रेस के सवन्ध में उन सवकी स्थिति समान है। पर ब्रिटिश विभागों में, जिन के अधिकारी केविनेट के सदस्य होते हैं, एकरूपता नहीं है; उन्हें अलग अलग प्रकार के नामों से पुकारा जाता है; उन्हें अलग अलग प्रकार से वनाया गया था, और उन सवकी स्थिति एक सी नहीं है। किसी के मुख्याधिकारी को राज्य सचिव (Secretary of State) कहते हैं तो दूसरे के मुख्याधिकारी को मंत्री कहते हैं। कई विभाग वोर्डों के रूप में हैं, यथा व्यापार

बोर्ड (Board of Trade)। कुछ पुराने समय के कार्यालय अब तक चले आ रहे हैं यथा कोष (Treasury); कुछ प्रिवी परिषद् की समितियों में से निकले हैं यथा शिक्षा बोर्ड; और कुछ का निर्माण संसद के अधिनियमों से हुआ है। इस प्रकार ब्रिटिश विभाग विविध रूप के हैं, कोई सामान्य विवरण उन पर लागू नहीं हो सकता। उन सब की स्थिति भी एक नहीं हैं; ट्रेजरी विभाग अन्य विभागों पर काफी नियंत्रण रखता है। फिर विभागों का मान भी भिन्न है: कुछ विभागों के राजनैतिक प्रमुख सदा केबिनेट के सदस्य होते हैं, दूसरों के प्रायः नहीं होते। ट्रेजरी, युद्ध कार्यालय, जल विभाग (Admiralty), और भारत कार्यालय (जब वह था) प्रथम कोटि के उदाहरण हैं: पेन्शन विभाग तथा विधि अधिकारी [Law Officers (Solicitor General and Attorney General)] दूसरी कोटि के उदाहरण हैं।

किन्तु एकरूपता तथा समता का न होना ब्रिटिश पद्धति की सबसे महत्त्वपूर्ण या मूल विशेषता नहीं है, इससे शासन के सिद्धान्तों या व्यवहार में कोई महत्त्वपूर्ण अंतर नहीं पड़ता। वहां सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात विशेषज्ञ तथा सामान्य व्यक्ति (Expert and layman) का संबंध होता है, अर्थात् स्थायी अफसरों और राजनैतिक अथवा संसदीय प्रमुख (मन्त्री आदि) का सम्बन्ध। प्रेजीडेण्ट लावेल का कहना है कि ब्रिटेन की सर्वोत्तम राजनैतिक परम्पराओं में से एक वह है जिसके अनुसार विशेषज्ञ तथा सामान्य व्यक्ति के सम्बन्ध निश्चित होते हैं। यह सम्बन्ध क्या है इसे समझना आवश्यक है।

प्रत्येक विभाग में एक राजनैतिक प्रमुख अथवा प्रधान होता है और उसके सहायक के रूप में एक राजनैतिक उपसचिव (Under Secretary) होता है। ये ही दोनों सामान्य व्यक्ति या नौसिखिये होते हैं। वे मंत्रिमंडल के भाग हैं। उनके अतिरिक्त दो, तीन (कभी कभी इससे भी अधिक) स्थायी उपसचिव होते हैं, तथा अनेक सचिव (Secretary), परामर्शदाता, प्रमुख तथा सहायक (Assistant), वैधानिक परामर्शदाता और बहुत से क्लर्क होते हैं। वे विशेषज्ञ होते हैं तथा स्थायी सिविल सर्विस के सदस्य होते हैं। दोनों अंगों के भिन्न भिन्न कार्य होते हैं। मंत्री शासन की नीति निर्धारित करता है और उसके उद्देश्य निश्चित करता है— जब महत्त्वपूर्ण प्रश्न होते हैं तब वह केबिनेट से परामर्श करता है। स्थायी उपसचिवों (Under-Secretaries), प्रमुखों (Chiefs) तथा सहायकों (Assistants) और विभाग के अन्य सिविल सर्विस के सदस्यों का यह कार्य है कि वे विशेषज्ञ-मंत्रणा (Expert advice) दें कि सरकार के उद्देश्यों को पूरा करने तथा नीति को अमल में लाने का सर्वोत्तम उपाय क्या है। सिद्धान्त के अनुसार तो नीति-निर्माण करना अथवा उसका नियंत्रण करना उनका काम नहीं है; उनका कार्य यही है कि राजनैतिक प्रधान जो भी

नीति निश्चित कर दे उसे कार्य रूप में परिणत करें।* वे अपने प्रधान को बहुत ज्ञान और अनुभव भी प्रदान करते हैं जिसके विना केबिनेट तथा संसद् के लिये बुद्धिमत्ता-पूर्वक नीति तथा विधान का निर्माण करना लगभग असम्भव होगा। इस प्रका स्थायी सिविल सर्विस द्वारा सरकार कार्यकुशल वन जाती है। उधर संसद् के प्रति उत्तरदायी राजनैतिक प्रधान के होने से वह लोकतन्त्रात्मक वन जाती है। ब्रिटिश पद्धति का सार यह है की प्रशासन एकदम कार्यकुशल और लोकतन्त्रात्मक वना रहे।

सिविल सर्विस के विषय में नियुक्त राजकीय-आयोग (Royal Commis sion) ने सिविल सर्विस तथा मंत्रियों के बीच सम्बन्ध के सिद्धान्त को संक्षेप में इ प्रकार लिखा है।

'नीति का निर्धारण मंत्रियों का कार्य है, और एक वार नीति निर्धारित हो चुक के पश्चात् सिविल सर्विस के सदस्य का यह निश्चित कार्य है कि वह उस नीति उतनी ही सद्भावना से पूरा करने का प्रयत्न करे चाहे उससे सहमत हो या न हो वह नीति तो आधार वन जाती है और उस पर कभी वाद-विवाद नहीं हो सकता साथ ही जब नीति निर्णय हो रही हो तब सिविल सर्विस के सदस्यों का यह परम्परा कर्त्तव्य (Traditional duty) है कि वे अपने राजनैतिक प्रधानों के समक्ष अप सब सूचनाएं तथा अनुभव पेश करदें, और यह कार्य वे निर्भय तथा पक्षपातह होकर करते हैं चाहे यह मन्त्रणा मन्त्री के प्रारम्भिक विचार के अनुकूल हो या हो। मन्त्री के सामने प्रासगिक तथ्यों (Relevant facts) को पेश करने सिविल सर्विस के सदस्य को वहुत सावधानी वरतनी होती है, और उन तथ्यों खोजने तथा एकत्रित करने में प्राय समस्त विभाग को कार्य करना पड़ता है। तथ् से निष्कर्ष (Inferences) निकालने में भी उसे पूर्ण विवेक तथा निष्पक्षता से का लेना होता है। सिविल सर्विस का सदस्य मन्त्री को मन्त्रणा देकर तथा उस समक्ष अपने विचार पेश करके नीति पर प्रभाव डालता है।'

यह समझना बहुत आसान है कि सिविल सर्विस से मंत्रियों को विशेषज्ञ-ज्ञान त प्रशिक्षित अनुभव कैसे प्राप्त होता है; सिविल-सर्विस में प्रवेश के लिये प्रतियोगि (Competitive) परीक्षाएँ होती हैं जिनमें ब्रिटिश विश्वविद्यालयों के योग्यत व्यक्ति बैठते हैं। पदोन्नति (Promotion) प्राथमिकता (Seniority) तथा योग्य के आधार पर होती है; बुद्धिमान तथा परिश्रमी व्यक्ति उच्चतम पद तक सुगम से पहुँच सकता है अर्थात् स्थायी उप-सचिव (Under Secretary) वन सकता एक ही विभाग में सेवा तथा अनुभव से वह विशेषज्ञ वन जाता है; उसके विच

---

* किन्तु वे परोक्ष रूप से नीति-निर्माण में सहायता देते हैं। रैमज़े म्योर के कथ नुसार नौकरशाही की शक्तियों का विकास ब्रिटिश राजनैतिक जीवन की सबसे महत्त्व बात है।

तथा सुझावों पर मंत्री को विचार करना पड़ता है क्योंकि मंत्री प्रायः अपने विभाग के कार्य के लिये नया ही होता है। किन्तु विभाग के राजनैतिक प्रधान को नौसिखिया या सामान्य व्यक्ति कहने से क्या अभिप्राय है? वह नौसिखिया (Amateur) इस अर्थ मे होता है कि किसी विभाग में उसकी नियुक्ति उस विभाग सम्बधी किसी विशेष ज्ञान या विशिष्ट योग्यता पर आधारित नहीं होती, वह ऐसे कारणों के आधार पर नियुक्त किया जाता है जो प्राय: उस विभाग के विशेष कार्य से सम्बन्धित नहीं होते। नौसेना का प्रथम लार्ड नियुक्त होने के लिये नौसेना का अनुभव आवश्यक नहीं है, इसके विपरीत वह एक निर्योग्यता (Disqualification) होगी। कृषि-मंत्री के लिये कृषक के रूप में अनुभव होना जरूरी नहीं समझा जाता, उद्योग का मन्त्री एक वकील हो सकता है तथा युद्ध-मन्त्री शान्तिप्रिय व्यक्ति हो सकता है। इन सब बातों का कारण यह है कि 'केबिनेट-मत्री का कार्य अपने विभाग को चलाना नहीं है; उसका कार्य तो यह देखना है कि वह समुचित रूप से चले। ऐसा करने के लिये वह सामान्य नीतियों को निश्चित करता है (यह काम केबिनेट के नियत्रण मे होता है) और देखता है कि विभाग मे नियुक्त स्थायी कर्मचारी उन नीतियों पर अमल करे। उसे यह भी देखना होता है कि कर्मचारी कोई ऐसी बात न करे जिन्हें जनता सहन न कर सके। तथा विभाग का प्रशासन जनमत के विरुद्ध न हो। अत. एक मत्री से यह आशा नहीं की जाती कि उसे बारीकियों का ज्ञान हो अथवा उस विषय मे विशेष दक्षता प्राप्त हो, उसमें तो विशाल दृष्टिकोण तथा सहानुभूतिपूर्ण विचार होने चाहियें, जिससे वह समूचे विभाग को समदृष्टि से देख सके तथा अन्य विभागों और लोकमत से उसके सम्बन्ध को समझ सके। उसमें सामान्य बुद्धि चतुराई तथा मूल्यांकन की भावना होनी चाहिये, तथा वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से निष्ठा प्राप्त करने तथा आज्ञा-पालन करवाने मे समर्थ होना चाहिये। वह अच्छी सूझबूझ तथा विवेक वाला व्यक्ति होना चाहिये। उसकी पहली योग्यता सूझबूझ है, दूसरी व्यक्तियों के मूल्यांकन की कला। उसे आदेश देना तथा उनका पालन करवाना दोनों बातें आनी चाहियें।*

**सिविल सर्विस (Civil Service)**:— जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है स्थायी सिविल सर्विस का प्रशासन (administration) मे बड़ा भाग है। यही एक आवश्यक यंत्र है जिसके द्वारा सरकार की नीतियों को अमल में लाया जाता है तथा देश की विधियों पर अमल कराया जाता है। इसके बिना सरकार केवल नियमों का भंडार मात्र ही होगी जिनका जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। सिविल सर्विस ही सगत तथ्यों आदि को एकत्रित करती है जिस पर मंत्री अपने विनिश्चयों तथा नीतियों को आधारित करता है। अत: वे ही सरकार के हाथ, आँख और कान हैं। जिस उद्देश्य के लिए सरकार बनती है उसकी प्राप्ति के लिए एक

* Laski *op ct.* page 289

अच्छी और कार्यकुशल सिविल सर्विस की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि विवेकी तथा देशभक्त नीति-निर्मात्री सर्वोच्च कार्यपालिका की।

किन्तु सिविल सर्विस तभी अपने कार्य को अच्छी तरह पूरा कर सकती है जब कि उसमे उपयुक्त प्रकार के व्यक्ति आकर्षित होकर आयें जिनमे योग्यता, विवेक तथा चरित्र हो। उसमें प्रवेश योग्यता के आधार पर हो ; पक्षपात, कुलपोषण (nepotism) तथा भ्रष्टाचार का प्रभाव उम्मीदवारो की नियुक्तियो पर नहीं पड़ने देना चाहिये। उसमें प्रवेश करने वालो को पदावधि (tenure) की सुरक्षितता (security) प्राप्त होनी चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि सदस्य किसी दल से सम्बन्धित न हों ; उन्हे राजनीति से दूर रहना चाहिये और जो भी दल सत्तारूढ़ हो उसी के प्रति निष्ठावान होकर समानरूपेण सुसेवा करनी चाहिये। ग्रेट ब्रिटेन मे ये आवश्यकताएँ कभी कभी पूरी नहीं भी हुई हैं। अठारहवीं शताब्दी मे बहुत से सिविल सर्विस के पदों को मंत्रियो के संबन्धियो, आश्रितो तथा मित्रो द्वारा भरा जाता था। सार्वजनिक कार्य अकुशल लोगो के हाथों मे सौंप दिया जाता था और सरकार के बदलने पर प्राय. विविध विभागो मे परिवर्तन हुआ करता था। किन्तु आज स्थिति बिल्कुल बदल गई है। सिविल सर्विस की विविध श्रेणियो मे लोग प्रतियोगिता परीक्षाओं द्वारा प्रवेश करते हैं, और एक बार वहां प्रवेश करने के पश्चात्, आजीवन वे उसी मे रहते हैं। पदोन्नति (promotions) प्राथमिकता (seniority) तथा योग्यता के आधार पर होती है। स्थायी सेवाओं के व्यक्तियो को किसी निर्वाचन मे खड़ा होने की या राजनैतिक कार्यवाहियो अथवा वाद-विवादो मे सक्रिय या खुला भाग लेने की अनुमति नहीं होती। यह इसलिये किया जाता है कि उनका दृष्टिकोण किसी दल से संबन्धित न रहे। ग्रेट ब्रिटेन में यह परम्परा बन गई है कि सिविल सर्विस श्रम दल सरकार की सेवा भी ऐसी ही कुशलतापूर्वक तथा इच्छापूर्वक करती है जैसे कि रूढ़ि दल या उदार दल सरकार की। सरकार के बदलने से उसके सदस्यो के भाग्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ; उनकी सेवा अराजनैतिक (non-political) है। राजनीति से दूर रहना वहां स्थायी सेवा की शर्तों मे है।

**सिविल सर्विस के कार्य—** विभाग के राजनैतिक प्रधान तथा स्थायी सिविल कर्मचारियों के बीच सम्बन्धो का जो विवरण ऊपर दिया है, उससे ठीक ठीक और पूरा पूरा पता नहीं लगता कि ब्रिटिश व्यवस्था मे वृत्तिक-प्रशासक (Professional Administrator) का क्या वास्तविक भाग है। निस्सदेह यह सच है कि जब तक किसी विभाग का स्थायी कर्मचारी वर्ग (Staff) मंत्री द्वारा दिये गये कार्य को पूरा करता रहता है, तब तक उस काम के परिणामो के लिये उनकी सार्वजनिक रूप से आलोचना नहीं की जा सकती। सब कार्यो के लिये निन्दा या श्रेय राजनीतिज्ञ को मिलता है, वृत्तिक-प्रशासक को नहीं। किन्तु इससे यह परिणाम निकालना गलत

होगा कि वृत्तिक-प्रशासक का सरकार की नीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तव में सिविल सर्विस का प्रशासन पर ही नहीं, विधान-कार्य तथा वित्त विषयों में भी बहुत प्रभाव होता है, किन्तु जनता उसे मान्यता नहीं देती क्योंकि उत्तरदायित्व मंत्रियों का ही होता है। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि सिविल कर्मचारी का काम यही नहीं है कि उसे जो कुछ कहा जाये वह वही करे, उसे यह अधिकार है तथा उसका यह कर्त्तव्य है कि वह मंत्री के सामने अपने सारे ज्ञान और अनुभव को पेश करे, चाहे वह मंत्री के विचारो के अनुकूल हो या न हो। मंत्री अपने अधीन व्यक्तियो द्वारा उसके सामने रखी गई सब बातों पर विचार करने के लिये बाध्य है और बाद में ही वह उन्हें अन्तिम आदेश देता है। इस प्रकार सगत सूचनाएँ पेश करके ही सिविल कर्मचारी नीति पर प्रभाव डालता है। जहाँ तक इस शक्ति के प्रयोग पर केबिनेट या संसद् का पर्याप्त नियंत्रण नहीं होता, उस हद तक यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश व्यवस्था मे नौकरशाही (Bureaucratic) शासन का प्रभाव है। नौकरशाही के प्रभाव की स्थापना का इतिहास मनोरंजक है।

ब्रिटिश सिविल सर्विस मे पदावधि सुरक्षित होने के कारण तथा प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा भरती होने के कारण, उसमे ब्रिटिश विश्वविद्यालयों के सर्वोत्तम तथा योग्यतम व्यक्ति आते हैं, और सदा योग्य व्यक्ति को ही शक्ति प्राप्त होती है। मन्त्री राजनैतिक क्षेत्र मे सफलताओं के आधार पर अपना पद प्राप्त करता है; उसे किसी विभाग की समस्याओं या कार्य का विशेष ज्ञान होने के कारण वह विभाग नहीं सौंपा जाता। विभाग का जितना ज्ञान उसे होता है उससे कहीं अधिक गहन तथा विस्तृत ज्ञान उसके अधीन काम करने वाले स्थायी सचिवो (Secretaries), उप-सचिवों, वैधानिक परामर्शदाताओं, सहायको (Assistants) आदि को होता है। मन्त्री इस बात को खूब जानता है; अत. उसके लिये यह कठिन हो जाता है कि उनके विचारो को तथा उन विचारों के समर्थन मे पेश किये गये तर्कों को ठुकरा दे जब तक कि वह असाधारण योग्यता, साहस तथा सूझबूझ वाला व्यक्ति न हो या अपने विषय में ग़लत धारणाएँ रखने वाला मूर्ख न हो। परिणाम यह है कि अधिकांश मामलों में मन्त्री अपने अधीनस्थ कर्मचारियो के विचारों को स्वीकार कर लेता है तथा 'नियत स्थान' पर हस्ताक्षर कर देता है। "कुल मिला कर 'कार्यालय' की नीति लगभग सदा ही चलती है। जब तक कोई व्यक्ति बहुत शक्तिशाली न हो उसके लिये कार्यालय की मौन हठ तथा मौन बाधा डालने की शक्तियो और इसके पास सब तथ्यों के ज्ञान की शक्ति का विरोध करना सम्भव नहीं होता।"* कई नेक नीयत वाले मन्त्रियो की उदार इच्छाओं को कर्मचारी वर्ग समाप्त कर देता है। भारत कार्यालय, विदेश कार्यालय तथा युद्ध कार्यालय इसके उदाहरण कहे जा

* Ramsay Muir 'How Britain is Governed', page 56.

सकते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि स्थायी अधिकारियों का प्रभाव सदा नकारात्मक ही होता है, और वे नई प्रस्थापनाओं को बदलने या समाप्त करने में ही रहते हैं, वे कई रचनात्मक कार्य भी करते हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त फैक्ट्री इन्सपेक्टरों के प्रतिवेदनों (Reports) में महत्त्वपूर्ण बातें थीं जिसके आधार पर फैक्ट्रियों के लिये पहले से अधिक सुधरा हुआ विधान बनाया जा सका। यह बात समझने की है कि 'समूचे केन्द्रीय में प्रशासन स्थायी सिविल सर्विस का प्रभाव प्रधान वस्तु है।' †

सिविल सर्विस का प्रभाव विधान क्षेत्र में भी होता है। संसद् में सरकार द्वारा पेश किये जाने वाले विधायी (Legislative) मामले दो प्रकार के होते हैं। कुछ विधानों का उद्देश्य उन वचनों को पूरा करना होता है जो निर्वाचन के समय मत-दाताओं को दिये गये थे। ऐसे विधानों के लिये सरकार पहल करती है तथा विचारों का सूत्रपात करती है। सिविल सर्विस का काम उन विचारों को विधेयक के मसविदे के रूप में प्रस्तुत कर देना ही है, और ऐसा करते समय वह कभी कभी आमूल परिवर्तन भी कर देती है। दूसरी प्रकार के विधेयक वे हैं जिन्हें सरकार स्थायी पदाधिकारियों के सुझाव पर पेश करती है, जनता के जीवन पर इनका अन्य विधेयकों से भी अधिक प्रभाव पड़ सकता है। यद्यपि उन्हें पारित करने का श्रेय सरकार को मिलता है तथापि उनका वास्तविक उत्तरदायित्व स्थायी अधिकारियों पर होता है। एक और प्रकार का विधान-कार्य भी होता है जिसको लगभग पूर्णतः स्थायी पदाधिकारी ही तैयार करते हैं। इसे 'प्रशासकीय-विधान' (Administrative-legislation) कहते हैं और आधुनिक काल में वह बहुत बढ़ गया है। संसद् द्वारा पारित बहुत से सार्वजनिक अधिनियमों में एक खण्ड होता है जिससे मन्त्री को ऐसे आदेश निकालने की शक्ति दे दी जाती है जो विधि के समान लागू होते हैं। वास्तव में वे आदेश स्थायी पदाधिकारियों द्वारा जारी किये जाते हैं। कभी कभी उन्हें 'मेज पर रख दिया जाता है' और कभी कभी उन पर तत्काल अमल करना आरम्भ हो जाता है। चाहे वे 'मेज पर ही पड़े रहें' संसद् कभी कभी ही उन पर वाद-विवाद करती है, उन्हें संसद् में नाममात्र के लिये ही पेश किया जाता है। कृषि, उद्योग, दीन-सहायता, लोक-स्वास्थ्य और शिक्षा के विस्तृत क्षेत्रों में इस नियम-निर्माण-शक्ति का प्रयोग बहुत अधिक होता है। यदि गत बीस वर्षों में पारित किये गये आदेशों, नियमों, उपनियमों (Regulations) को एकत्र किया जाये तो कई बृहद् ग्रन्थ तैयार हो जायेंगे। एक बार एक मन्त्री को इतनी शक्ति दी गई थी कि वह निश्चित प्रयोजन के लिये कुछ भी कर सकता था जो उसे आवश्यक प्रतीत हो, चाहे उसके आदेश का प्रभाव उस अधिनियम के उपबन्धों (provisions) को परिवर्तित करना ही हो।

---

† Ramsay Muir · 'How Britain is Governed', page 58.

वित्त (finance) के क्षेत्र मे भी यही बात है। कई बार चांसलर ऑफ ऐक्सचेकर छटनी करना चाहते थे किन्तु स्थायी अधिकारियो के दबाव के कारण उनके लिये ऐसा करना असम्भव हो गया। श्रम दल ने जब १६२४ में सरकार बनाई थी तब वह सेना के व्यय मे भारी कमी करने के लिये वचनबद्ध था, किन्तु छटनी करने के स्थान पर वास्तव में करोड़ों रुपये व्यय बढ़ गया। ट्रेज़री (Treasury) के प्रभाव से कभी कभी नये विचारों वाले चांसलर ऑफ ऐक्सचेकर परम्परावादी सिद्धान्तों के भक्त बन गये। इसका एक उदाहरण फिलिप स्नोडन है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ग्रेट ब्रिटेन में सिविल सर्विस सरकारी व्यवस्था की वास्तविक प्रभावकारी अङ्ग बन गयी है। इसका कार्य केवल यहाँ तक ही सीमित नहीं कहा जा सकता कि वह मन्त्री द्वारा निश्चित नीतियो पर अमल करती है। उसे बहुत अधिकार प्राप्त हो गया है। किन्तु उसका अधिकार प्रभाव के रूप में है, शक्ति के रूप मे नहीं। उसका प्रभाव इसलिये है कि केवल वही तथ्यो का ज्ञान आदि प्रस्तुत कर सकती है जिसके आधार पर ठीक विनिश्चय किये जा सकते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि इङ्गलिस्तान मे नौकरशाही शासन बन गया है जैसा कि ब्रिटिश काल में भारत में था। हमे इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि सिविल सर्विस की शक्ति का बढ़ना अभीष्ट है या नहीं; यह कुछ परिवर्तनों कर परिणाम है जो ग्रेट ब्रिटेन मे हुए हैं।

**प्रशासकीय विभाग**—इस पुस्तक मे यह आवश्यक नहीं है कि उन सब विभागों का, या उनमें से अधिक महत्त्वपूर्ण विभागो का ही, वर्णन किया जाये जिनके द्वारा ब्रिटिश सरकार उन विविध कार्यों को करती है जो प्रायः सब सभ्य सरकारो कि करने होते हैं। उन सब के नाम लिखना भी अपेक्षित नहीं है। हम सरकार के विविध कार्यों का केवल वर्गीकरण करके उनसे सम्बद्ध विभागो के नाम ही लिखेंगे।

विधि तथा व्यवस्था (Law and order) को बनाये रखना, विदेशी राज्यों के साथ सम्बन्धो को चलाना, देश की प्रतिरक्षा (Defence), करों का संग्रह करना तथा विभिन्न विभागों मे धन का वितरण, ये ऐसे कार्य है जो प्रत्येक सरकार को करने पड़ते हैं। हम उन्हें राजनैतिक कार्य तथा उनसे सम्बद्ध विभागों को राजनैतिक विभाग कह सकते हैं। ग्रेट ब्रिटेन मे उनके नाम गृह कार्यालय, विदेश कार्यालय, नौसेना विभाग (Admiralty), युद्ध कार्यालय, नभ-मंत्रालय (Air Ministry) और ट्रेज़री (Treasury) हैं। अधिराज्य कार्यालय (Dominion Office), उपनिवेश कार्यालय (Colonial Office) और भारत कार्यालय (जो अब टूट गया है) भी राजनैतिक समझे जा सकते हैं। यद्यपि ट्रेज़री को ऊपर राजनैतिक कार्यालयों की श्रेणी मे रखा गया है तथापि वह दूसरो से भिन्न है और इस कोटि में नहीं आता क्योंकि वह एक प्रकार से अन्य विभागों की कार्यवाहियो का निरीक्षण करता

तथा उन पर नियंत्रण रखता है। पेन्शन मंत्रालय का भी उल्लेख किया जा सकता है, जो १९१६ में बनाया गया था। वह विभाग सैनिक और नौसैनिक पेन्शनों की ही व्यवस्था करता है; बुढ़ापे की पेन्शनों तथा नागरिक पेन्शनो को दूसरे अधिकारी देखते हैं।

आजकल कोई सरकार सम्भवतः ऊपर लिखे हुये राजनैतिक कामों तक ही अपनी कार्यवाहियों को सीमित नहीं रख सकती, वह समय चला गया जबकि 'हस्तक्षेप न करने की नीति' (Laissez-faire) का प्रभाव था। श्रम सरकार के आने से पहले भी जबकि इङ्गलिस्तान पूरी तरह पूंजीवादी था तथा ग़ैर-सरकारी व्यापार नीति में विश्वास करता था, उस समय भी ब्रिटिश सरकार को समाज के आर्थिक कामा का विनियमन करनेकी तथा कई बार उस पर नियंत्रण करने की आवश्यकता अनुभव हुई थी। अतः ऐसे विभागो की रचना हो गई जिन्हें आर्थिक विभाग कहते हैं। उनमें से मुख्य विभाग व्यापार-मंडली (Board of Trade), यातायात मंत्रालय (Ministry of Transport) (जो १९१९ मे बना था), कृपि तथा मीनक्षेत्र (Fisheries) मंत्रालय, और श्रम मंत्रालय (जो १९१४ मे बना था) हैं। इसी सूची में डाकघर विभाग को भी गिना जा सकता है।

जैसे राज्य के कार्य वढ़कर राजनैतिक क्षेत्र से आर्थिक क्षेत्र मे भी फैल गये से ही सरकारी कार्य अन्य दिशाओं में भी वढ़ते गये। पूंजीवाद मे जो बुराइयां है उनके कारण, तथा राज्य को अपने नागरिकों की भलाई के लिये अधिकाधिक चिन्ता करनी पड़ती है उसके कारण, और ज्ञान के विस्तार के कारण, ब्रिटिश सरकार को नये कार्य आरम्भ करने पड़े जिन्हें 'सामाजिक सेवायें' कहते हैं। उनमे अब सरकार की शक्ति का बहुत बड़ा भाग लगा रहता है, और उनके सम्बन्ध मे कई विभाग स्थापित हो गये हैं। स्वास्थ्य-मंत्रालय तथा शिक्षा बोर्ड (Board of Education) उनमे सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, और श्रम मंत्रालय उनके तथा आर्थिक विभागों के बीच कड़ी के समान है। श्रम मत्रालय का काम पहले यह था कि वह नौकरो तथा मालिकों के बीच अच्छे सम्बन्ध बनाये रखता था, किन्तु अब वह अपना काफी समय और शक्ति बेकारों को काम दिलाने के सामाजिक कर्त्तव्य में लगाता है। स्वास्थ्य मंत्रालय १९१९ मे बना था। वही स्वास्थ्य बीमे तथा वृद्धावस्था की पेन्शनो की व्यवस्था करता है। शिक्षा-बोर्ड (Board of Education) १८९९ मे बनाया गया था। अब यह बात अच्छी तरह समझी जाती है कि स्वतत्र सरकार को बुद्धिमान नागरिकों की आवश्यकता है अत इस विभाग की महत्ता और आवश्यकता और भी बढ़ने की सम्भावना है।

मुख्य प्रशासकीय (Administrative) विभागो के इस संक्षिप्त सिंहावलोकन को समाप्त करने से पहले कुछ अन्य कार्यालयों की ओर भी ध्यान आकृष्ट करना

अभीष्ट प्रतीत होता है जिनके राजनैतिक प्रमुख अवश्य ही केविनेट के सदस्य होते हैं। वे विभाग हैं (१) चांसलर ऑफ दी डची ऑफ लकास्टर (उसे वैयक्तिक कारणों से केविनेट मे रखा जाता है, प्रशासकीय कारणों से नहीं), (२) लार्ड चांसलर (वह लार्ड सभा का सभापतित्व करता है और न्यायपालिका का प्रमुख होता है), (३) लार्ड प्रिवी सील, और (४) लार्ड प्रेसीडेंट आफ दी काउन्सिल, जो प्रिवी परिषद् का सरकारी प्रमुख होता है और कभी वह कई महत्त्वपूर्ण काम किया करता था। ये पद न राजनैतिक हैं, न आर्थिक हैं और न सामाजिक ही हैं।

---

अध्याय ६

# विधान-मंडल Legislature : लोकसभा

**विषय-प्रवेश :**—अब हम ब्रिटिश शासन-व्यवस्था की महान शाखा, विधान-मंडल का अध्ययन आरंभ करते हैं। ब्रिटिश विधान-मंडल संसार मे सबसे पुराना है; यह सबसे बड़ा और सबसे शक्तिशाली भी है। ब्रिटिश संसद की प्राचीनता के विषय मे यह उक्ति प्रसिद्ध है कि वह 'संसदों की जननी' है। उसकी सन्तान हमारे भूमंडल पर सब जगह फैल गई है, जहाँ भी लोकतन्त्रात्मक संस्थाओं (Democratic institutions) की स्थापना हुई है। यह ससार का सबसे बड़ा विधायक निकाय (Legislative body) है ; कहीं भी संसद में इतने सदस्य नहीं होते जितने कि लोकसभा तथा लार्डसभा में अलग अलग, और मिल कर होते हैं। किन्तु उसका विशेष गुण उसका असीमित क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) तथा शक्ति है। कोई ऐसा विषय नहीं है जिस पर उसे विधि बनाने की शक्ति न हो, कोई अन्य मानवीय शक्ति नहीं है जो उसकी विधान निर्माण की शक्ति को सीमित कर सकती हो। वह सब मामलों में सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न है चाहे वे मामले वैधानिक हों या सांविधानिक, लौकिक हों या धर्म संबंधी हों। कुछ वर्षों पहले तो वह सम्पूर्ण मानव जाति के लगभग चतुर्थांश के लिये विधियां बना सकती थी। अतः वह बहुत दिलचस्प आधुनिक विधान-मंडल है।

ब्रिटिश विधान-मंडल मे बादशाह तथा संसद दोनों शामिल हैं और केवल संसद ही नहीं है जैसा कि कभी कभी विद्यार्थी समझ बैठते हैं। ठीक ठीक स्थिति यह है कि बादशाह संसद का अंग नहीं है, यद्यपि वह ग्रेट ब्रिटेन के विधान मंडल का

अभिन्न अंग है।* संसद् द्वारा पारित कोई विधेयक तब तक विधि नहीं बन सकता जब तक कि राजा उस पर अनुमति (Assent) न दे दे। यह बात और है कि उसकी अनुमति औपचारिक (Formal) होती है तथा उसे रोका नहीं जा सकता; चाहे औपचारिक ही हो, फिर भी वह आवश्यक है। राजा विधान-मंडल के अंग के रूप मे संसद् द्वारा पारित विधेयको पर अनुमति देता है, किन्तु उस विषय में यहां अधिक कुछ कहना जरूरी नहीं हैं। अभी हम संसद्, उसकी रचना, शक्तियों और कामों, तथा विधि-निर्माण के तरीके का ही उल्लेख करेंगे।

संसद् (Parliament)—ब्रिटिश संसद् में दो सदन हैं; लोकसभ (House of Commons) और लार्ड-सभा। संसद् के प्रादुर्भाव तथा उसके दो सभाओं मे विभाजन होने का कुछ इतिहास अध्याय २ मे दिया जा चुका है; यहां उस पर अधिक लिखना आवश्यक नहीं है। यद्यपि लार्डसभा दोनों सदनों में प्राचीनतर है और बहुत समय नहीं हुआ जबकि वह एक शक्तिशाली निकाय थी, फिर भी हम ब्रिटिश संसद् का अध्ययन लोकसभा के विवरण से आरम्भ करेंगे क्योंकि वह संसद् का प्रधान और अधिक शक्तिशाली अंग बन गया है। कई प्रयोजनों के लिये तो लोकसभा ही ब्रिटिश संसद् है। वालपोल ने इसी बात को अत्यन्त सुन्दर ढंग से कहा था कि 'जब कोई मंत्री संसद् से परामर्श करता है तो वास्तव मे वह लोकसभा से ही परामर्श करता है; जब महारानी संसद् की विघटन (Dissolution) करती है तो वास्तव में वह लोकसभा का ही विघटन करती है। नई ससद् वास्तव में नई लोकसभा को ही कहते हैं।" १९१०—११ के संसद् अधिनियम से यह संभव हो गया है कि लोकसभा द्वारा पारित विधेयक को लार्डसभा की सहमति के बिना ही राजा की अनुमति (Assent) के लिये भेजा जा सकता है। जब ब्रिटिश संसद् को 'संसदों की जननी' कहा जाता है तब भी लोकसभा की ओर ही सदा निर्देश होता है; लोकसभा का ही वंश अन्य देशों में फैला है, लार्डसभा का नहीं। ब्रिटिश लोकसभा ने पहले जिस प्रकार स्वतंत्रता के लिये और बाद में शक्ति के लिये संघर्ष किया था, वह ब्रिटिश इतिहास का स्मारक है, इसी कारण लोकसभा की विशेष महत्ता हो जाती है। सिडनी लो ने ब्रिटिश सार्वजनिक और राजनैतिक जीवन मे लोकसभा की महत्त्वपूर्ण स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है:—

"लोकसभा विश्व में सबसे महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक सभा है। उसका आदरणीय प्राचीनता, उसका प्रेरणादायक इतिहास, उसकी महान परम्पराएं, उसकी

*कुछ लेखकों का मत है कि 'संसद शब्द' में राजा समाविष्ट है। भारत में तो राष्ट्रपति संसद का अंग है ही।

अब भी नवयुवकों की सी भावना और शक्ति, संसदों के आदर्श के रूप में उसका अनन्य प्रभाव, ब्रिटिश राष्ट्र के जीवन से उसका अभिन्न संबंध, हमारे संविधान को चलाने वाले केन्द्रीय-यन्त्र के रूप में उसका स्थान; ये सब मिलकर उसको संसार में अद्वितीय बना देती हैं। स्वयं राजपद से भी अधिक, केबिनेट से भी कहीं अधिक, लोकसभा केवल अंग्रेजों का ही नहीं विदेशियों का भी ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। उसके वाद-विवादों को चेनल के पार तथा सिंधु के पार भ पढ़ा जाता है।……… ''किसी व्यक्ति के लिये इस महान् सभा में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करना, उसके नेताओं, उसके विश्वस्त परामर्शदाताओं, उसके लोकप्रिय वक्ताओं में गिना जाना, अपने युग के अग्रगण्य व्यक्तियों में आ जाना है।"

इस अध्याय में हम उसकी रचना, संघठन, शक्तियों तथा कामों और विधान-प्रक्रिया (Legislative Procedure) पर विचार करेंगे तथा लार्डसभा पर अगले अध्याय में विचार करेंगे।

**सभा की रचनाः**— १८३२ से पहले का तो कहना ही क्या है। गत एक सौ वर्षों में लोकसभा की रचना में जो अनेक तथा क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं, उनका भी उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नहीं है। हम उसकी आजकल की सदस्य संख्या और रचना पर ही अधिक ध्यान देंगे और गत कुछ वर्षों के परिवर्तनों क निर्देश कर देंगे।

लगभग १५ वर्ष पूर्व, लोकसभा की कुल सदस्य संख्या ६१८ थी। १९४५ के सामान्य निर्वाचन में उसे बढ़ा कर ६४० बना दिया गया था। १९४८ के लोकसभा-स्थान-पुनर्वितरण-अधिनियम द्वारा सदस्य संख्या ६४० से घटा कर ६२५ कर दी गई और सब निर्वाचन-क्षेत्रों को समान बनाने के उद्देश्य से उनका फिर से बटवारा कर दिया गया। अत. फरवरी १९५० में जो सभा बनी थी उसमें ६२५ सदस्य थे। इस कमी का मुख्य कारण विश्वविद्यालयों (Universities) के स्थानों (Seats) का हटाना था। विश्वविद्यालय-प्रतिनिधित्व तथा व्यापार मतों की समाप्ति से दुहरे मतदान का अन्त हो गया जो ब्रिटेन में पहले प्रचलित था, और 'एक व्यक्ति, एक मत' को सिद्धान्त देश में पूरी तरह स्थापित हो गया।

लोकसभा पूरी तरह निर्वाचित सभा है, उसके ६२५ सदस्यों में से प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों (Territorial Constituencies) से वयस्क (Adult) मताधिकार (Franchise) के आधार पर चुना जाता है। विश्वविद्यालय-प्रतिनिधित्व की समाप्ति से जो थोड़ा सा वृत्तिक-प्रतिनिधित्व (Functional Reprsentation) था वह भी समाप्त हो गया। अतः अब ब्रिटेन की प्रतिनिधित्व-व्यवस्था भौगोलिक है तथा कार्यों या वृत्तियों के अनुसार नहीं है। प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र

एकल-मतीय हैं। १९५० के सामान्य निर्वाचन में मत देने के अधिकारी नर-नारियों की संख्या ३,४२,६६,४७७ थी जब कि वह संख्या १९४५ मे ३,२८,३६,४१९ थी। १९५० में कुल २,८८,७१,३९२ मत डाले गये जब कि १९४५ मे २,४९,७८,९४९ मत डाले गये थे।

प्राचीन काल में ग्रेट ब्रिटेन मे प्रतिनिधित्व मुख्यतः काम अथवा वृत्ति के अनुसार (Functional) होता था, और कभी घटनावश ही प्रादेशिक (Territorial) होता था। किसी व्यक्ति को किसी क्षेत्र विशेष में रहने के कारण प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं होता था, वरन् जमींदार, व्यापारी और पादरी आदि वर्गों को प्राप्त होता था। वह भी बहुत सीमित था। वृत्तियों पर निर्भर मताधिकार से प्रादेशिक मताधिकार बनने मे, और सम्पत्ति पर निर्भर मताधिकार के स्थान पर सर्वव्यापी वयस्क मताधिकार स्थापित होने मे लगभग सौ वर्षों से भी अधिक लग गये; यह परिवर्तन शनैः शनैः कई 'सुधार अधिनियमों' द्वारा पूरा हुआ। पहला सुधार १८३२ के सुधार अधिनियम द्वारा हुआ, जिससे पुरानी पद्धति की स्पष्ट त्रुटियों को दूर कर दिया गया, मताधिकार के नियमों का काया-कल्प कर दिया और लगभग ५ लाख अधिक व्यक्तियों को मताधिकार दे दिया। इससे स्थानों (Seats) का फिर से बँटवारा भी हुआ। १८८४ और १८८५ के अधि नयमों द्वारा काउंटियों के लिये वे ही सुधार कर दिये गये जो १८३२ के अधिनियम द्वारा शहरी हल्कों (Boroughs) के लिये किये थे। अगला महान् परिवर्तन १९१८ के जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम द्वारा किया गया जिसने पुरुष मताधिकार पर लगे हुए सभी बंधनों को हटा दिया और मत देने का अधिकार लगभग ८५ लाख स्त्रियों को भी मिल गया। इस मे स्त्रियों के मताधिकार पर कुछ प्रतिबन्ध* थे अतः इससे व्यापक वयस्क मताधिकार स्थापित नहीं हुआ। १९२८ के जन-प्रतिनिधित्व-समान-मताधिकार अधिनियम का मुख्य उद्देश्य यह था कि समस्त मतभेदों को समाप्त करके मत देने का अधिकार उन सब पुरुषों और स्त्रियों को दे दिया जाये जो २१ वर्ष की आयु पूरी कर चुके हों और निर्वाचन से पूर्ववर्ती पहली जून से उस निर्वाचन क्षेत्र में रह चुके हों। इस प्रकार लोकतन्त्रात्मक इङ्गलिस्तान को व्यापक वयस्क मताधिकार स्थापित करने में सौ वर्ष लग गये।†

---

*एक स्त्री के लिये मतदात्री बनने के लिये यह अपेक्षित था कि वह संपत्ति की स्वामिनी हो अथवा संपत्ति के स्वामी की पत्नी हो और ३० वर्ष से कम न हो।

† यद्यपि उपर्युक्त विभिन्न सुधार अधिकार अधिनियमों के उपबन्ध बहुत दिलचस्प है, तथापि उन्हें विस्तार से यहां नही दिया गया है क्योकि वे हमारे प्रयोजन के लिये आवश्यक नही हैं। विद्यार्थी ऑग (Ogg) या मनरो पढ़ सकते हैं।

इस समय वयस्क मताधिकार के अधीन लगभग ग्रेट ब्रिटेन की कुल जनसंख्या में से ६० प्रतिशत को मत देने का अधिकार है। १८३१ में यह अधिकार ४ प्रतिशत से अधिक लोगों को प्राप्त नहीं था। अन्य देशों के समान, इंगलिस्तान में भी अनुन्मुक्त दिवालिये पागल, विदेशी, अपराधी आदि मत देने के अधिकारी नहीं हैं। इसके अतिरिक्त लार्डों को भी लोकसभा के लिये मत देने का अधिकार नहीं है क्योंकि वे लार्डसभा के सदस्य हैं। प्रत्येक ब्रिटिश प्रजाजन को, चाहे वह ब्रिटिश हो, कनाडियन हो, आस्ट्रेलियन हो, दक्षिणी अफ्रीकन हो अथवा न्यूजीलैंड वास हो मत देने का अधिकार है यदि वह निवास सम्बन्धी योग्यता को पूरा करता हो

१६५० में जो परिवर्तन हुए उनसे पहले ग्रेट ब्रिटेन में लोकतन्त्रात्मक मताधिकार का केवल एक ही सिद्धान्त, 'व्यापक-वयस्क-मताधिकार' ही पूरी तरह अपनाया गया था ; अभी दूसरे सिद्धान्त के विषय में वे अपने ध्येय तक नहीं पहुंचे थे, वह सिद्धांत था 'एक व्यक्ति, एक मत'। वहां दुहरा मतदान अभी शेष था यद्यपि वह बहुत सीमित था। उस समय के नियमों के अनुसार एक ही व्यक्ति एक निर्वाचन क्षेत्र में निवासी के रूप में मत दे सकता था तथा दूसरे क्षेत्र में भी मत दे सकता था यदि वह उस क्षेत्र में व्यापार अथवा व्यवसाय आदि के लिये १० पाउन्ड प्रति वर्ष किराये पर भवन लिये हुए हो। किन्तु किसी अवस्था में एक व्यक्ति दो निर्वाचन-क्षेत्रों से अधिक में मत नहीं दे सकता था। विश्वविद्यालय के स्नातक (Graduate) के भी दो मत होते थे, एक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के निवासी के रूप में और दूसर स्नातक के रूप में। इसके अतिरिक्त ग्रेट ब्रिटेन में दुहरा मतदान नहीं होता। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि किसी व्यक्ति को एक ही निर्वाचन-क्षेत्र से एक से अधिक मत देने का अधिकार नहीं था। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, दुहरा मतदान समाप्त हो चुका है, पिछली श्रम सरकार ने विधि बनाकर व्यापार-मत तथा विश्वविद्यालय प्रतिनिधित्व को समाप्त कर दिया था।

**निर्वाचन सम्बन्धी समस्यायें:**—लोकसभा के निर्वाचनों के विषय में कई मिहत्त्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं। पहला यह है कि देश को बहुत से निर्वाचन-जिलों अथवा नर्वाचन-क्षेत्रों में बाँटा जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका में एक विधि है कि प्रत्येकी दशवर्षीय जनगणना के पश्चात् जिलों का पुनर्निर्माण होता है। ग्रेट ब्रिटेन में ऐसी कोई विधि अथवा प्रथा नहीं है; वहां संसद जब भी चाहे निर्वाचन-क्षेत्र की पुनर्व्यवस्था (Rearrangement) कर सकती है ; वह कम या ज्यादा समय के पश्चात् ऐसा करती रही है। जिले का पुनर्निर्माण अथवा पुनर्प्रबन्ध अन्तिम बार १६५० में हुआ था, उससे पहले १६१८ में तथा १८८५ में हुआ था। जब भी स्थानों का फिर से बटवारा होता है उसमें किसी भी राजनैनिक पार्टी के हित या अहित का ध्यान नहीं रखा जाता; संयुक्त राज्य अमेरिका के निर्वाचनों में जो गड़बड़ घोटाल

होता है वह ब्रिटिश राजनैतिक निर्वाचनों मे कभी नहीं हो सकता। ज़िलों के पुनर्निर्माण का केवल यही उद्देश्य होता है कि निर्वाचन-सम्बन्धी असंगतियों को तथा जनसंख्या के स्थानान्तरण आदि से उत्पन्न असमानताओं को दूर किया जा सके। प्रयत्न किया जाता है कि विविध निर्वाचन-क्षेत्रों को जनसंख्या तथा मतदाता संख्या के हिसाब से यथासंभव बराबर बना दिया जाये। निर्वाचन-क्षेत्रों की जनसंख्या को बराबर करने का प्रश्न बहुमत दल द्वारा निश्चित् नहीं होता है वरन् उसे निश्चित करने के लिये सर्वदल-सम्मेलन होता है जिसका सभापतित्व लोकसभा का अध्यक्ष करता है-

यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि ग्रेट ब्रिटेन मे ऐसी कोई विधि या प्रथा नहीं है कि संसद के लिये खड़ा होने वाला उम्मीदवार उसी निर्वाचन-क्षेत्र का निवासी हो जहाँ से वह खड़ा हुआ है। यही काफी है कि उसका नाम किसी भी निर्वाचन-क्षेत्र की निर्वाचन-सूची मे है; और वह खड़े होने के लिये अन्यथा निर्योग्य नहीं होना चाहिये। लोकसभा की सदस्यता के लिये कोई योग्यता निर्धारित नहीं है सिवाय इसके कि वह ब्रिटिश प्रजाजन (Subject) होना चाहिये, उसकी आयु नियमानुकूल होनी चाहिये, तथा वह निष्ठा की शपथ (Oath of Allegiance) लेने के लिये तैयार होना चाहिये। किन्तु कुछ नकारात्मक योग्यताएँ हैं। ऐसे व्यक्ति लोकसभा के सदस्य नहीं बन सकते जो पीयर हों, तीन महान् गिरजों के पादरी हों, काउन्टियों के शेरिफ हों या बॉरोज के मेयर हों, जिन्हें सरकार से ठेके मिले हुए हों या जो क्राउन के अधीन अराजनैतिक पदों पर लगे हुए हों। इनके अतिरिक्त अपराधी, पागल और विकृत-चित्त वाले व्यक्ति भी लोकसभा के सदस्य नहीं बन सकते। स्त्रियाँ सदस्य बन सकती हैं; इस समय भी लोकसभा में कुछ स्त्री-सदस्या हैं।

उपरोक्त प्रश्न से भी अधिक महत्त्वपूर्ण एक और प्रश्न है—सामान्य निर्वाचन के समय का निर्धारण। सामान्य निर्वाचन संसद के विघटन (Dissolution) के पश्चात् ही हो सकता है; अतः यह प्रश्न उठता है कि संसद को कब और कैसे विघटित किया जा सकता। है इस प्रश्न का उत्तर देते हुए यह ध्यान रखना चाहिये कि ग्रेट ब्रिटेन में ससदीय अथवा केबिनेट पद्धति की सरकार है, वहां अमरीका के समान राष्ट्रपति पद्धति की सरकार नहीं है। संसदीय प्रणाली मे विधान-मंडल का विघटन उसकी पूर्ण कालावधि के समाप्त होने से पहले भी किया जा सकता है। यह बहुत दिलचस्प बात है कि गत डेढ़ शताब्दी में केवल एक ही संसद, १८६७ से ७३ की संसद, अपनी पूरी कालावधि तक (जो उस समय सात वर्ष थी) पहुंच पाई थी, शेष सब समय से पूर्व विघटित हो गई थीं।* परिणाम यह है कि ग्रेट ब्रिटेन

* कुछ अन्य संसदें अवधि की समाप्ति के निकट पहुची किन्तु उसे पूरा न कर सकी, जैसे १९३१–३५ की मिश्रित सरकार के अधीन संसद।

मे संसद् के निर्वाचन नियमित अवधि पर नहीं होते, संयुक्त राज्य अमरीका मे निर्वाचन सदा नियमित अवधि पर होते हैं, फ्रांस मे भी एक अभिसमय (Convention) वन गया है कि विधान-मडल मे पराजय होने पर केबिनेट देश से अपील नहीं कर सकती। ग्रेट ब्रिटेन मे कभी तीन चार वर्ष तक चुनाव नहीं होते, और कभी कभी एक वर्ष मे निर्वाचन हो जाते हैं तथा उसके वाद के वर्ष में सामान्य निर्वाचन हो जाते हैं। एक वार लगातार तीन वर्ष तक निर्वाचन होते रहे— १६२२, १६२३ और १६२४ मे। १६१० मे दो वार निर्वाचन हुए। अतः ब्रिटिश लोकसभा की कोई नियत अवधि नहीं है। वह एक, दो, तीन, चार या पॉच वर्ष तक रह सकती हैं— यह सब परिस्थितियों पर निर्भर है। यह भी याद रखना चाहिये कि १६११ के संसद अधिनियम द्वारा ससद का अधिकतम कार्यकाल ५ वर्ष निर्धारित कर दिया गया है तथापि आपात (Emergency) मे संसद इस काल को बढ़ा सकती है। प्रथम विश्व युद्ध मे, १६१० की निर्वाचित ससद् १६१८ तक चलती रही, और द्वितीय विश्व युद्ध मे १६३५ मे निर्मित ससद् १६४५ तक चलती रही। युद्धकाल मे संसद् के सामान्य निर्वाचन करना अवांछित समझा गया था।

ससद् का विघटन करने और देश से अपील करने का निर्णय सदा प्रधान मंत्री करता है और वह अपने केबिनेट के साथियों से इस विषय मे परामर्श कर लेता है। किन्तु विघटन तभी होता है जव राजा उस आशय की उद्घोषणा (Proclamation) जारी करके 'अपनी जनता से मिलने और संसद् में उनकी मंत्रणा प्राप्त करने की' इच्छा प्रकट करता है। दूसरे शब्दों मे हम कह सकते हैं कि केबिनेट विघटन का निर्णय करती है तथा राजा उसका आदेश दे देता है। राजकीय उद्घोषणा से निर्वाचन सवन्धी व्यवस्था भी काम करने लगती है। इसके विस्तार में जाना आवश्यक नहीं है।†

अब हम यह विचार कर सकते हैं कि प्रधान मन्त्री किन कारणों से ससद को पूरी अवधि के समाप्त होने से पूर्व ही देश से अपील करने के लिये राजा को अनुमति मांग सकता है। कभी कभी वह विघटन करने की मन्त्रणा ऐसी दशा मे दे देता है जवकि वह देखता है कि उसे निर्वाचन मे विजय की आशा है। ऐसा तब होता है जवकि ससद् की अवधि समाप्त होने वाली होती है। कई वार वह अपने डांवाडोल मन्त्रिमण्डल को पराजय से बचाने के लिये विघटन करवा देता है। कभी कभी सरकार को किसी नये प्रश्न पर राष्ट्र का निर्णय जानना आवश्यक प्रतीत हो सकता

† १८६८ से पहले संसद की समाप्ति का कारण राजा की मृत्यु भी होता था। १८६७ के सुधार अधिनियम से यह बात नहीं रही। इस समय की पंचवर्षीय अवधि १६११ में ही निश्चित हुई थी। १७१६ से १६११ तक सप्तवर्षीय अवधि थी और १७१६ से पूर्व तीन वर्ष की अवधि थी।

है। केबिनेट पद्धति का यह एक बड़ा लाभ है कि जब कभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को तय करना होता है तो निर्वाचन सरलता से किया जा सकता है। इससे एक हानि भी है कि वह शक्तिप्राप्त दल को विरोधी दल पर विजय प्राप्त करने का कूटनीतिक अवसर दे देता है। जब विरोधी दल तैयार न हो उस समय सरकार निर्वाचन का आदेश देकर उसके विरुद्ध अनुचित लाभ उठा सकती है।

विघटन की सरकारी घोषणा तथा उम्मीदवारों के नामनिर्देशन (nomination) की तारीख के बीच प्रायः बहुत कम समय होता है ; केवल आठ दिन का समय होता है। अतः विविध राजनैतिक दल अपनी उम्मीदवार-सूचियों को पहले ही तैयार रखते हैं और उद्घोषणा की प्रतीक्षा में चुप नहीं बैठते। प्रत्येक दल की राष्ट्रीय अथवा केन्द्रीय संस्था निर्वाचन-क्षेत्रों के लिये अपने उम्मीदवारों की सूचियां स्थानीय शाखा की सिफारिशों पर तैयार करती है। ग्रेट ब्रिटेन में जो पद्धति है,लगभग उसी पद्धति से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा अन्य भारतीय दल भी अपने उम्मीदवारों को चुनते हैं। प्रायः उन्हीं व्यक्तियों को खड़ा किया जाता है जो अपने अपने क्षेत्र में लोकप्रिय होते हैं और जिनके जीतने की संभावना होती है। नामनिर्देशन की प्रणाली सादी है। उम्मीदवार को केवल इतना ही करना होता है कि वह उस निर्वाचन-क्षेत्र के दस मतदाताओं द्वारा हस्ताक्षर करवा कर अपना नामनिर्देशन पत्र (nomination paper) भेज देता है तथा १५० पाउण्ड की ज़मानत जमा कर देता है ; यदि वह कुल डाले गये वोटों में से आठवां भाग भी प्राप्त नहीं कर पाता है तो उसकी यह ज़मानत ज़ब्त हो जाती है। हमारे देश में नामनिर्देशन पत्र पर केवल दो हस्ताक्षर होते हैं, एक प्रस्तावक का और दूसरा समर्थक का ; अधिक मतदाताओं के हस्ताक्षरों की आवश्यकता नहीं होती।

निर्वाचन भी नामनिर्देशन के पश्चात् नौवें दिन ही हो जाते हैं (इन दिनों में से रविवार तथा छुट्टियां कट जाती हैं)। अतः ग्रेट ब्रिटेन में निर्वाचन आन्दोलन बहुत छोटे होते हैं ; यह 'मतों का युद्ध' लगभग अठारह उन्नीस दिन ही तक चलता है। हमारे देश में तथा संयुक्त राज्य अमरीका में यह समय बहुत लम्बा होता है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि निर्वाचन आन्दोलन का समय वास्तव में इतना छोटा नहीं होता जितना कि वह दिखाई देता है। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि यह आंदोलन सदा ही चलता रहता है। सारे दल सदा निर्वाचन के लिये तैयार रहते हैं ; कभी कभी ही ऐसा होता है कि वे सोये रह जायें और अचानक निर्वाचनों की घोषणा हो जाये। बीच बीच में उप-निर्वाचन (Bye-election) भी होते रहते हैं जिससे कि जोश बना रहता है। सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्रों में सदा प्रचार करते ही रहते हैं। किन्तु फिर भी यह बात तो सत्य है ही कि इङ्गलैंड में निर्वाचन आंदोलन इतने लंबे नहीं होते जैसे कि संयुक्त राज्य अमरीका में होते हैं। अमरीका

की तुलना मे वहां निर्वाचनो पर कम धन व्यय किया जाता है, व्यक्तिगत प्रचार भी कम होता है, भ्रष्टाचार तथा अवैध आचरण भी कम होता है। निर्वाचन के मामलों मे ग्रेट ब्रिटेन संसार भर के लिये आदर्श राष्ट्र सा बन गया है। यह भी याद रखना चाहिये कि विश्वविद्यालयो के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त अन्य सब सदस्य एक ही प्रकार से, एक ही दिन और एक ही मताधिकार द्वारा चुने जाते थे। अब तो विश्वविद्यालय-प्रतिनिधित्व समाप्त ही हो गया है।

पराजित उम्मीदवारो द्वारा पेश की हुई निर्वाचन-याचिकाओं (Election Petitions) पर न्यायालय विचार करते हैं। न्यायाधीश निर्वाचन का निराकरण तभी करते हैं जब यह सिद्ध हो जाये कि ऐसा भ्रष्टाचार अथवा अवैधता हुई है जिसका चुनाव के परिणाम पर प्रभाव पड़ा होगा, केवल टेकनीकल त्रुटियों से उनके निश्चय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। निर्वाचन का निराकरण बहुत कम किया जाता है।

अब हम लोकसभा की सदस्यता के विषय मे एक विचित्र बात का निर्देश करते हैं। समुचित रूप से निर्वाचित सदस्य दिवालिया या पागल होने पर अपनी सदस्यता से हाथ धो बैठता है। देशद्रोह या महापराध पर उसे सभा उसके स्थान पर से हटा देती है। लार्ड बन जाने पर भी उसका स्थान छिन जाता है, किन्तु वह अपने स्थान का स्वेच्छा से पदत्याग नहीं कर सकता। यह प्रथा पुराने समय से चली आ रही है जबकि सभा की सदस्यता एक भार थी जिसे लोग टालना चाहते थे, वह समाज की ओर से उन पर थोपी जाती थी, और ऐसी कोई वस्तु नहीं थी जिससे उनका मान या प्रभाव बढ़ता हो। अब यदि कोई सदस्य अपना स्थान त्याग करना चाहे तो उसे जरा परोक्ष मार्ग अपनाना पड़ता है। सभा की सदस्यता तथा क्राउन के अधीन किसी पद का (राजनैतिक पद के अतिरिक्त) ग्रहण करना, ये दोनों बातें साथ साथ नहीं चल सकतीं। अत. सदस्यता से छुट्टी पाने के लिये सदस्य ऐसा कोई पद प्राप्त कर लेते हैं। इसके लिये प्रायः बकिंघमशायर मे बर्नहम, स्टोक और डॅसबोरो के तीन चिल्टर्न हंड्रेड्स के स्टुअर्ड पद का प्रयोग किया जाता है। इस पद के लिये सदस्य अर्जी देता है, उसे प्राप्त कर लेता है तथा सभा की सदस्यता समाप्त हो जाती है ; तब वह इस पद से भी त्यागपत्र दे देता है। इस पद पर एक ही दिन मे दो दो व्यक्ति क्रमशः आसीन हुए हैं। किसी सदस्य को सीधा त्यागपत्र नहीं देने दिया जाता तथा उसे इस परोक्ष (Indirect) तरीके से सदस्यता क्यों त्यागनी पड़ती है इसका स्पष्टीकरण सरल नहीं है। ब्रिटिश स्वभाव की रूढ़िवादिता का यह एक स्पष्ट उदाहरण है। ग्रेट ब्रिटेन मे चाहे कोई सदस्य अपने कर्तव्य की उपेक्षा या अन्य किसी कारण से अपने मतदाताओं मे कितना भी बदनाम क्यों न हो जाये, कोई निर्वाचन क्षेत्र संसद के विघटन से पूर्व, अपने प्रतिनिधि से छुटकारा नहीं पा सकता।

**ग्रेट ब्रिटेन की अन्य निर्वाचन-समस्यायें**— लोकसभा वास्तव में एक लोकतन्त्रात्मक सदन है। वह पूरी तरह निर्वाचित संस्था है तथा व्यापक वयस्क मताधिकार के आधार पर इसकी रचना होती है। निर्वाचन-जिले इतने छोटे होते हैं कि प्रतिनिधि अपने मतदाताओं की सेवा कर सकते हैं और उनसे सम्पर्क बनाये रख सकते हैं, और निर्वाचन काफी न्यायपूर्ण होते है। दुहरा मतदान तथा विश्वविद्यालय-प्रतिनिधित्व भी अब समाप्त हो गये हैं; उनकी आलोचना में प्रायः यह बात कही जाती थी कि वे 'एक व्यक्ति, एक मत' के लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्त से मेल नहीं खाते। किन्तु फिर भी कुछ ऐसी बाते है जिन पर कभी कभी आपत्ति की जाती है। रैमजे म्योर जैसे लेखकों का कहना है कि रचना की वर्तमान प्रणाली के कारण सभा राष्ट्र का ठीक ठीक प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती, अतः वह लोकतंत्रात्मक नहीं है। विधान-मण्डल को सच्चे अर्थ में प्रतिनिधि संस्था बनाने के लिये व्यापक मताधिकार से कुछ अधिक चाहिये, उसे 'जनमत के सब महत्त्वपूर्ण निकायों का, यथासम्भव उनकी संख्या के अनुपात से' प्रतिनिधि होना चाहिये*। ग्रेट ब्रिटेन की पद्धति में, जिसमें एकल-सदस्य (Single-member) निर्वाचन-क्षेत्र (Constituency) होते हैं तथा केवल बहुमत से निर्वाचन होते हैं यह आदर्श पूरा होना असम्भव हो जाता है। व्यापक मताधिकार के होते हुए भी जनमत के सब महत्त्वपूर्ण निकायों को लोकसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त होना आवश्यक नहीं है और जिन्हें कुछ स्थान मिल पाते हैं उन्हें भी अपने मतदाताओं की संख्या के अनुपात से स्थान नहीं मिलते। गत अनेक निर्वाचनों के मतों के आंकड़ों से यह बात सिद्ध हो जाती है।

| वर्ष | रूढ़िवादी दल | | उदार दल | | श्रम दल | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | कितने मत मिले | कितने स्थान मिले | कितने मत मिले | कितने स्थान मिले | कितने मत मिले | कितने स्थान मिले |
| १९२२ | ३८.७% | ५६.४% | २८.६% | १९.६% | २९.६% | २२.९% |
| १९२३ | ३८.३% | ४२.२% | २३.४% | ९.४% | ३७.०% | ४७.०% |
| १९२४ | ४७.८% | ६७.४% | १७.९% | ७.०% | ३३.१% | २४.९% |
| १९२९ | ३८% | ४१.१% | २३% | ९.९% | ३६% | ४६.८% |
| | मिश्रित | दल | | | | |
| १९३१ | ६७.१% | ९०.०% | ०.७% | ०.७% | ३०.६% | ८.४% |

* Ramsay Muir : *How Britain is Governed,* Page 156.

इन आंकड़ों के महत्त्व को एक और प्रकार से भी बताया जा सकता है। १९२२ के निर्वाचन में रूढ़िवादियों को १८,१८० मतों के पीछे एक स्थान मिला, उदार दल को ४८,५४० मतों के पीछे एक स्थान मिला, और श्रम दल को ३०,७०६ मतों के पीछे एक स्थान मिला। १९२९ के निर्वाचन में रूढ़िवादियों को एक स्थान के लिये ३४,००० मत प्राप्त करने पड़े, उदार दल वालों को ९०,००० तथा श्रम दल को २६,००० मत प्राप्त करने पड़े। १९३१ के निर्वाचन में सरकारी मिश्रित दल को २६,००० मतों पर एक स्थान मिला, श्रम दल को ४४,००० मतों पर तथा उदार दल को २५,००० मतों पर ही एक स्थान मिल गया। द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व तथा पश्चात् के सामान्य निर्वाचनों के आंकड़ों से भी यही बात सिद्ध होती है। श्रम दल के मत १९३५ में ८३,२५,००० थे जो जुलाई १९४५ में १,२०,००,००० हो गये किन्तु उसे युद्ध के पश्चात् ३९३ स्थान मिल गये जब कि युद्ध से पूर्व १६३ ही मिले थे। रूढ़िदल के मत १९३५ में १,१७,९२,००० थे जो १९४५ में १,००,००,००० रह गये, किन्तु सभा में दल के सदस्यों की संख्या एकदम गिर कर ३५८ से १९७ रह गई। यह भी कहा जा सकता है कि श्रम दल को रूढ़िवादी दल से केवल २० प्रतिशत अधिक मत मिले किन्तु दुगने स्थान मिल गये। श्रम दल को ३०,००० मतों पर एक स्थान मिला, रूढ़िवादी दल को ४७,००० मतों पर तथा उदार दल को १,८७,००० मतों पर एक स्थान मिला। प्रतिनिधित्व की न्यायपूर्ण प्रणाली होती तो श्रम दल को ३९३ के स्थान पर २९९ स्थान ही मिलते, रूढ़िवादी दल को १९७ के स्थान पर २४८ स्थान मिल जाते तथा उदार दल को १२ के स्थान पर ५७ स्थान मिल जाते। १९१८ से १९४१ तक सभा में औसत के अनुसार, ९६ रूढ़िवादी अधिक थे, ६२ श्रम सदस्य कम थे तथा ३० उदार दल वाले कम थे। इन आंकड़ों से यह निस्सन्देह सिद्ध हो जाता है कि एकल-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र (Single-member Constituency) की प्रणाली कार्य रूप में बहुत ज्यादा अन्यायपूर्ण है। इससे ऐसे दल को विधान-मंडल में पूर्ण बहुमत प्राप्त हो जाता है जिसे देश में आधे मत भी न मिले हों। दूसरे दल अपने मतों के अनुपात से स्थान प्राप्त नहीं कर सकते। इससे निर्वाचन के परिणाम का पहिले अनुमान नहीं लगाया जा सकता और प्रत्येक निर्वाचन एक जुआ बन जाता है। इससे राष्ट्र के विचारों का पता नहीं लगता बल्कि वे छुप से जाते हैं, और इससे मतदाताओं के दिमाग पर बहुत बुरा असर पड़ता है। इस सबको समझना हमारे लिये लाभदायक होगा।

ब्रिटेन में जो एकल-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र (Single-member Constituency) पद्धति है उसकी मुख्य विशेषता यह है कि जिस उम्मीदवार को अधिकतम संख्या में मत मिलते हैं वह निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है, चाहे उसे कुल डाले गये मतों में से पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ हो या नहीं। यदि केवल दो ही उम्मीदवार

हों तो जीतने वाले उम्मीदवार को अवश्य ही पूर्ण बहुमत प्राप्त हो जाएगा किन्तु यदि तीन या अधिक उम्मीदवार हों तो स्थिति भिन्न हो सकती है तथा शायद विजेता को अन्य उम्मीदवारो के मतो के जोड़ से कम मत मिले हो। मान लीजिये कि एक ही स्थान के लिये चार उम्मीदवार हैं, उनमें से एक को १५,००० मत मिलते है, दूसरे को १४९९९, तीसरे को १४५०० तथा चौथे को ५,५०१ मत मिलते हैं ; तो पहला उम्मीदवार निर्वाचित घोषित हो जायेगा, क्योंकि उसे १ का बहुमत प्राप्त हो गया है और यह समझा जायेगा कि वह समस्त निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधि है जिसमे वे ३५,०००[ = १४९९९ + १४५०० + ५५०१] मतदाता भी हैं जिन्होंने तीन पराजित उम्मीदवारों को मत दिये थे। ब्रिटिश विधि के अनुसार अन्तिम उम्मीदवार की जमानत जब्त हो जायेगी। बहुमत द्वारा निर्वाचन के इस सिद्धान्त में कई खराबियां हैं। पहली बात तो यह है कि पराजित उम्मीदवारों के हक़ में जो मत डाले गये हैं वे बिल्कुल बेकार रहे, विधान मंडल की रचना पर या घटना-क्रम पर उनका कोई असर नहीं पड़ता। इसका नतीजा यह होता है कि बहुत से मतदाताओं के मताधिकार का महत्त्व समाप्त हो जाता है और इस प्रकार व्यापक मताधिकार का अर्थ तथा महत्त्व कुछ नहीं रहता। इससे सदन में सब राजनैतिक विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता, और एक अर्थ मे लोकसभा प्रतिनिधि संस्था नहीं रहती। इस प्रणाली मे दूसरी महान् खराबी यह है कि इससे 'देश में अल्पसंख्यक मत वाला दल' सभा मे स्थानो का बहुमत प्राप्त कर लेता है। कई बार रूढ़िवादी दल को कुल डाले गये मतो में से ४० प्रतिशत से भी कम मत प्राप्त होने पर भी सभा मे पूर्ण बहुमत प्राप्त हो गया। इसके विपरीत कई दलों को आनुपातिक आधार पर जितने स्थान मिलने चाहिये उससे कम मिल पाते हैं। उदार दल के साथ १९२२ से प्रायः यही होता आया है। अर्थात्, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस प्रणाली के अनुसार, सब दलों को एक स्थान के लिये समान संख्या मे मत प्राप्त नहीं करने पड़ते ; उदाहरण के लिये, १९२९ के निर्वाचन मे उदार दल को ९०,००० मतों से एक स्थान मिला, किन्तु श्रम दल को केवल २९,००० मतो पर एक स्थान मिल गया। यह स्पष्ट ही अन्याय है तथा लोकतन्त्र के आदर्श के विरूद्ध है। इसी बात को एक और प्रकार से कहा जा सकता है। १९२९ के निर्वाचन मे रूढ़िवादी दल को २५६ स्थान मिले जबकि प्राप्त मतो के अनुपात से उसे केवल २३२ मिलने चाहिये थे, श्रमदल को २८८ स्थान मिले जब कि २५५ मिलने चाहिये थे और उदारदल को १४३ की बजाय केवल ५९ स्थान मिले। इसी प्रकार १९३१ के निर्वाचन मे सरकारी मिश्रित दल को ३६८ की बजाय ४९३ स्थान मिले, श्रम दल को

१६८ की वजाय केवल ४६ स्थान मिले, स्वतंत्र उदार दल को ३ के बजाय ४ स्थान मिल गये और अन्य दलों को ६ की वजाय केवल ५ स्थान मिले।❀ कुछ निर्वाचनों में विविध दलों को कितना कम या अधिक प्रतिनिधित्व मिला, यह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेगा :—

| दल का नाम | १६२२ | १६२३ | १६२४ | १६२६ | १६३१ | १६३५ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| रूढ़िवादी | + ६२ | + १७ | + १२२ | + २२ | + १२० | + २१ |
| उदार | − ५८ | − २२ | − ६६ | − ८३ | + १ | − ६ |
| श्रम | − ३६ | + ११ | − ५३ | + ६२ | − १२३ | − ७८ |
| स्वतंत्र | + ७ | − ६ | | − १ | + २ | − ४ |

❀ ब्रिटेन की एकल-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों से बहुमत द्वारा निर्वाचन की प्रणाली से जो अन्याय होता है उसे स्पष्ट समझने के लिये निम्नलिखित तालिका बहुत सहायक होगी जिसमें यह बताया गया है कि सामान्य निर्वाचनों में तीनों बड़े दलों को कुल कितने मत मिले तथा कितने स्थान मिले :—

| वर्ष | रूढ़िवादी दल | | उदार दल | | श्रम दल | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | कुल मत | प्राप्त स्थान | कुल मत | प्राप्त स्थान | कुल मत | प्राप्त स्थान |
| १६२२ | ५५,००,३८२ | ३४४ | १६,७३,२४० | ५३ | ४२,४१,३८३ | १४२ |
| | | | (राष्ट्रीय उदार | दल) | | |
| | | | २५,१०,२८७ | ६१ | | |
| १६२३ | ५५,३८,८२४ | २५८ | ४३,११,१४७ | १५८ | ४४,३८,५०८ | १६१ |
| १६२४ | ७८,७४,५२३ | ३६६ | २६,२८,७७४ | ३६ | ५४,८६,०७७ | १४३ |
| १६२६ | ८६,५६,६३६ | २५६ | ५३,०६,४२६ | ५६ | ८३,८५,५०१ | २८८ |
| १६३५ | १,०४,६६,००० | ३७५ | १४,२३,००३ | १६ | ८४,६५,००० | १६८ |

यदि विभिन्न दलों को उनके मतों की संख्या के अनुपात से स्थान दिये जाते तो १६३१ में रूढ़िवादी दल को ४७३ की बजाय २७० स्थान मिलते, उदार दल को ६८ की बजाय ११० स्थान मिलते, और राष्ट्रीय श्रम दल को १३ की बजाय ५० स्थान मिलते। इन आंकड़ों से सिद्ध हो गया होगा कि एकल-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र से बहुमत के आधार पर निर्वाचन की ब्रिटिश प्रणाली कितनी अन्यायपूर्ण है। इस विषय में अधिक प्रमाणों की ज़रूरत नहीं है।

इस व्यवस्था मे केवल ये ही दोष नहीं हैं ; उसमे कई दूसरी बड़ी खराबियां भी हैं। इससे नकारात्मक (negative) मतदान को प्रोत्साहन मिलता है : अर्थात् मतदाता ऐसे उम्मीदवार को मत नहीं देते जिन्हे वे पसंद करते हैं वरन् जिसे वे नापसंद करते हैं उनके विरुद्ध मत दे देते है। इसका एक उदाहरण दिया जा सकता है। मान लीजिये, एक निर्वाचनक्षेत्र से तीन उम्मीदवार खड़े हुए हैं। मतदाता 'ग' के पक्ष मे मत देना चाहता है किन्तु वह जानता है कि उसके निर्वाचित होने की संभावना नहीं है क्योंकि परिस्थितियां उसके विरुद्ध हैं। अत वह उसे मत देकर अपने मत को बेकार नहीं खोना चाहता। अब वह मतदाता ख' को भी नहीं चाहता पर 'क' से तो उसे घृणा ही है अत' वह 'क' को निर्वाचित होने से रोकने के लिये 'ख' को अपना मत दे देता है। इस प्रकार के नकारात्मक मतदान से राष्ट्र की इच्छा का ठीक पता नहीं लग पाता, सामान्य निर्वाचन से यह निश्चय से पता नहीं लगता कि देश ने निश्चय ही एक सिद्धान्त के पक्ष मे मत दिये हैं और दूसरे सिद्धान्त के विपरीत। यह सभव है कि १६४५ के निर्वाचनों मे श्रम दल को जो महान् बहुमत प्राप्त हुआ था उसका कारण शायद रूढ़िवादी दल में अविश्वास था, समाजवाद से प्रेम नहीं। इसकी दूसरी खराबी यह है कि इससे उन निर्वाचकों के हाथ में शक्ति आ जाती है जो 'सबसे कम संगठित, सबसे कम शिक्षित तथा सबसे ज्यादा डांवाडोल मन के होते हैं— अर्थात् जिन्हे अकस्मात भय उपजा कर, अफवाहे फैलाकर, झूठी बदनामियां करके तथा बेतुके वायदे करके भड़काया जा सकता है।'* जब मुकाबले के दलों की शक्तियाँ समान होती हैं तब ऐसे व्यक्तियो के मतो से प्रश्न का निश्चय हो जाता है जो कभी राजनीति मे दिलचस्पी ही नहीं लेते। ऐसे डांवाडोल मतदाताओं को फांसने के लिये विभिन्न दल प्रायः सब प्रकार के उपाय अपनाते हैं और अपने सिद्धान्तों का भी बलिदान कर देते हैं। इस विषय पर अधिक लिखना व्यर्थ है। ब्रिटेन की निर्वाचन-प्रणाली की खराबियां काफ़ी हद तक दिखाई जा चुकी हैं। †

इन खराबियो को दूर करने के लिये कई उपाय सुझाये गये हैं। द्वितीय-शलाकादान (Second Ballot), एकत्रित-मत्त-पद्धति (Cumulative vote system) और सीमित मत योजना (Limited vote plan) आदि के सुझाव दिये गये हैं। किन्तु राजनीत्ति-शास्त्र के लेखकों को सबसे अधिक आनुपातिक

---

* Ramsay Muir : *Ibid*, page 161.

† जो इस विषय पर अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं वे Ramsay Muir की पुस्तक 'How Britain is Governed' के पांचवे अध्याय को पढ़ें।

प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) की ही प्रणाली पसंद है। नीचे उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।❀

**आनुपातिक प्रतिनिधित्व** (Proportional Representation)— यह प्रतिनिधित्व की एक योजना है जिसका उद्देश्य उन गम्भीर त्रुटियों को दूर करना है जो एक-सदस्य-निर्वाचन-क्षेत्रों से चुनाव की प्रणाली मे निहित हैं। इस योजना का विशेष गुण यह है कि देश मे जिस राजनैतिक दल के पीछे काफी जनमत है उसे उसके समर्थक मतदाताओं की संख्या के अनुपात से निर्वाचित निकायों मे प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है। इस बात को आसानी से समझने के लिये भारत का एक उदाहरण काफी होगा। आज ऐसी स्थिति है कि साधारण निर्वाचन-क्षेत्र मे किसी स्वतंत्र या हिन्दू-महासभाई उम्मीदवार के लिये, या रेडिकल डेमोक्रेटिक या साम्यवादी दल के अभ्यर्थी के लिये यह अत्यन्त कठिन है, शायद असम्भव ही हो, कि वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (Indian National Congress) के विरुद्ध सफलता से चुनाव लड़ सके। इसी प्रकार मुस्लिम निर्वाचन-क्षेत्रों मे गैर-मुस्लिम-लीगियों के लिये मुस्लिम लीगियों का सामना करना कुछ वर्ष पूर्व सरल नहीं था। कांग्रेस के अतिरिक्त किसी दल के हिन्दुओं को १६४६ में निर्मित सभाओं और परिषदों में जरा भी प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ, और राष्ट्रीय मुस्लिमों को भी उतना प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ, जितना कि देश मे उन्हें समर्थन प्राप्त था।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व की योजना के अन्तर्गत यह असम्भव है कि किसी वर्ग को कम प्रतिनिधित्व मिले और किसी वर्ग को अधिक प्रतिनिधित्व मिले ; इस योजना के अनुसार प्रत्येक दल या हित को उसी अनुपात से स्थान मिल जाते हैं जितनी संख्या मे उनके पक्ष मे मतदान होता है। दूसरी बात यह है कि इस योजना के अंतर्गत कोई मत व्यर्थ नहीं जाता : प्रत्येक मत के आधार पर किसी न किसी उम्मीदवार के निर्वाचन में सहायता मिलती है। इस योजना के अन्तर्गत यह असंभव है कि बहुत से मतदाता, जो कभी कभी ६० से ७० % तक होते हैं, क्रियात्मक रूप मे मताधिकार से हीन हो जायें। इन दोनों विशेषताओं के कारण आनुपातिक प्रतिनिधित्व मे यह बात सुनिश्चित हो जाती है कि विधान-मंडल जनमत का सही सही प्रतिनिधि हो जाता है। इससे उन लोगों के हाथ में नियंत्रण-शक्ति नहीं रहती है जो अस्थिर और अप्रशिक्षित हो। अल्पसंख्यकों को ठीक ठीक प्रतिनिधित्व देने की इससे अधिक अच्छी प्रणाली अभी तक नहीं सुझाई गई है।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व भी कई प्रकार का होता है। अधिक प्रयुक्त होने

---

❀ इसके विस्तृत विवरण के लिये लेखक की पुस्तक 'Elements of Political Science' के पृष्ठ ४०४ को पढ़ें।

वाली पद्धति को *एकल सक्रमणीय मत* (Single transferable vote) पद्धति कहते हैं। अन्य पद्धतियों के समान इसमें भी यह आवश्यक है कि बहु-सदस्य निर्वाचन क्षेत्र हो। इस विषय में कोई अधिकतम सीमा नहीं रखी गई है; तीन से लेकर पंद्रह बीस तक अभ्यर्थियों का साथ निर्वाचन हो सकता है। प्रायः चार से दस बारह तक स्थानों का संयुक्त निर्वाचन ठीक रहता है। किन्तु चाहे कितने ही स्थानों को भरना हो, फिर भी प्रत्येक मतदाता को एक ही मत देने का अधिकार होता है। किन्तु वह मत-पत्र पर अभ्यर्थियों के अधिमान का क्रम (Order of preference) बताने के लिये उनके नामों के सामने १, २, ३, ४, आदि लिख सकता है। यदि किसी कारण से उसके प्रथम पसंद के अभ्यर्थी को उसके मत की आवश्यकता नहीं है तो वह मत द्वितीय पसंद के उम्मीदवार को मिल जावेगा; यदि द्वितीय पसंद के उम्मीदवार को भी उसकी आवश्यकता नहीं है तो वह मत तीसरी पसंद वाले उम्मीदवार को मिल जायेगा, इस प्रकार क्रम चलता रहेगा। मतलब यह हुआ कि प्रत्येक मत को काम में ले लिया जायेगा, तथा व्यर्थ नहीं जाने दिया जायेगा। केवल वही अभ्यर्थी निर्वाचित समझा जाता है जिसे न्यूनतम मत मिल जाये जिसे कोटा (Quota) कहते हैं। कोटा 'उस न्यूनतम मत संख्या को कहते हैं जो उतने ही अभ्यर्थियों को प्राप्त हो सकते हैं जितने के स्थान रिक्त हैं, और अधिक को प्राप्त नहीं हो सकते।' इस न्यूनतम संख्या के निर्धारण के कई तरीके हैं। सबसे साधारण उपाय यह है कि कुल मतसंख्या में कुल स्थानों तथा एक का भाग दे दिया जाये और भागफल में १ जोड़ दिया जाये। इस सूत्र को इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

$$\text{कोटा (न्यूनतम मत)} = \frac{\text{जो मत दिये गये उनकी कुल संख्या}}{\text{कुल स्थानों की संख्या} + १} + १$$

यदि किसी निर्वाचन-क्षेत्र से ९ अभ्यर्थी चुने जाने हैं और कुल १,००,००० मत दिये गये हैं तो न्यूनतम मत अर्थात् कोटा १०,००१ हुआ। कोटा निश्चित हो जाने पर मतगणना आरम्भ होती है। पहली गणना में केवल प्रथम पसन्द या अधिमान के मतों को लिया जाता है, और जो अभ्यर्थी उन प्रथम अधिमान के मतों में ही अपना न्यूनतम कोटा प्राप्त कर लेते हैं उन्हें निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। पहली गणना में सब स्थान नहीं भरते— ऐसा प्रायः होता है— अतः सफल अभ्यर्थियों को जिन मतों की आवश्यकता नहीं होती वे उन अभ्यर्थियों को दे दिये जाते हैं जिनका नाम इन मतों पर द्वितीय पसन्द के रूप में इंगित होता है, और इन द्वितीय अधिमान के मतों से कुछ उम्मीदवार जो प्रथम पसन्द के मतों में अपना न्यूनतम कोटा प्राप्त नहीं कर सके थे, सफल हो जाते हैं। यदि द्वितीय अधिमान के मतों से भी सब स्थान नहीं भर पाते तो तीसरे अधिमान के मतों का प्रयोग होता है। इस प्रकार सारे खाली थानों को भरने का प्रयत्न किया जाता है। यदि कोई

उम्मीदवार इतना पीछे रह जाये कि उसके निर्वाचित होने की कोई सम्भावना ही न रहे चाहे उसके पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे अधिमान के मतो को भी क्यों न ले लिया जाये, तो ऐसी दशा में उसके पक्ष में दिये गये प्रथम अधिमान के मतों को नहीं गिना जाता ; ऐसे मतदाताओं के मत उनके दूसरी पसन्द के अभ्यर्थियों को दे दिये जाते हैं। इस प्रकार यह प्रयत्न किया जाता है कि प्रत्येक मत का प्रयोग किसी न किसी अभ्यर्थी के निर्वाचन के लिये कर ही लिया जाए। इसमें गिनती का तरीका वहुत उलझा हुआ है ; यही इस योजना की मुख्य कठिनाई है। यह भी भय है कि इस योजना को अपनाने से दल वहुत हो जायेंगे और भिन्न भिन्न वर्गों को प्रोत्साहन मिलेगा। वहुदलीय प्रणाली के अन्तर्गत किसी एक दल के लिये विधान-मंडल में पूर्ण वहुमत प्राप्त करना अत्यन्त कठिन हो जायेगा। सब सरकारें मिश्रित सरकारें (Coalition Governments) ही होंगी जो अस्थायी होती हैं । किन्तु यह त्रुटि तो आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रत्येक पद्धति में ही होती है। जो यह चाहते हैं कि उनके यहां स्थिर सरकारें हों जिनका विधान-मंडल में स्थायी वहुमत हो, वे आनुपातिक प्रतिनिधित्व को किसी रूप में भी स्वीकार नहीं करेंगे। अतएव ग्रेट ब्रिटेन में आनुपातिक प्रतिनिधित्व की योजना को लागू करने के प्रश्न पर विचार करते समय द्विदल प्रणाली और वहुदल प्रणाली के प्रश्न पर भी विचार करना होता है।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एक और पद्धति 'सूची पद्धति' है। उसे जर्मनी में वायमर संविधान के अनुसार लागू किया गया था। समस्त देश को ३५ निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजित किया गया था (जवकि इंगलिस्तान को, जिसकी जन-संख्या वहुत कम है, ६०० निर्वाचन-क्षेत्रों में वांटा जाता है)। प्रत्येक सघटित दल ने योग्यता के क्रम से अपने अभ्यर्थियों की सूची पेश की थी, और मतदाताओं ने व्यक्तिगत रूप से अभ्यर्थियों को मत नहीं दिये, वरन् दलों को मत दिये। प्रत्येक दल को ६०,००० मतों पर एक स्थान मिला और दल की सूची में प्राथमिकता के क्रम में अभ्यर्थियों को स्थान दे दिये गये । विविध निर्वाचन-क्षेत्रों के वचे हुए मतों को इकट्ठा कर लिया गया, और उनका प्रयोग राष्ट्रीय दल की सूची के अभ्यर्थियों को निर्वाचित कराने के लिये किया गया, जो कि निर्वाचन मडलों से निर्वाचित नहीं हुए थे। यह योजना कुछ समय तक अच्छी तरह सफल हुई किन्तु वाद में उसका परित्याग कर दिया गया। इस प्रणाली में कई विशेष त्रुटियाँ हैं जिनके कारण ये हैं कि निर्वाचन क्षेत्र वहुत वृहद् आकार के होते हैं और मतदाताओं तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों में कोई निकट सम्पर्क नहीं होता। इससे दलों के हाथों में अत्यधिक शक्ति भी आ जाती है।

यद्यपि आनुपातिक प्रतिनिधित्व को किसी न किसी रूप में यूरोप के कई देशों

ने अपना लिया है, किन्तु ग्रेट ब्रिटेन या संयुक्त राज्य अमरीका में उसका अधिक प्रयोग नहीं हुआ है। ब्रिटिश स्वभाव की परम्परागत रूढ़िवादिता इसके मार्ग में एक रोड़ा है, इसको अपनाने का अर्थ यह होगा कि विद्यमान एक-सदस्य-निर्वाचन-क्षेत्र-पद्धति मिट जायेगी और प्रधानतः द्वि-दल प्रणाली भी समाप्त हो जायेगी। क्योंकि इस समय दोनों मुख्य दलों को विद्यमान प्रणाली से लाभ उठाने की आशा होती है, अतः कोई भी उसे हटाने के लिये आतुर नहीं है। दोनों वर्तमान स्थिति को बनाये रखने से ही संतुष्ट हैं।

जब तक ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इस समस्या पर वैयक्तिक या दलीय स्वार्थ की दृष्टि से विचार करेंगे, तब तक विद्यमान निर्वाचन पद्धति में सुधार होना कठिन है। ग्रेट ब्रिटेन में पहले कुछ विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों के निर्वाचन में आनुपातिय प्रतिनिधित्व का प्रयोग होता था।

**सदन का संघटन**— ग्रेट ब्रिटेन में कोई ऐसी विधि नहीं है जिससे साधारण निर्वाचन और नई संसद के समवेत होने के बीच की अवधि निश्चित हो, किन्तु वास्तव में उसे छोटी से छोटी बनाने का प्रयत्न किया जाता है। नई संसद निर्वाचनों के पश्चात् दो सप्ताहों में ही समवेत होती है और अपना कार्य आरम्भ कर देती है।

जब निर्वाचन के पश्चात् संसद प्रथम बार समवेत होती है, तब लार्डसभा का सरकारी संदेशवाहक, जिसे 'जेन्टिलमैन अशर आफ दी ब्लैक रॉड' कहते हैं, लोकसभा के सदस्यों को आमन्त्रित करता है कि वे द्वितीय सदन में जायें, जहाँ लार्ड चान्सलर उन्हें सूचित करता है कि क्राउन की इच्छा है कि वे किसी व्यक्ति को अपना स्पीकर अथवा अध्यक्ष चुनें। दूसरे शब्दों में नव-निर्मित सदन का प्रथम कार्य है अध्यक्ष का निर्वाचन। अध्यक्ष के अतिरिक्त, सदन के अन्य पदाधिकारी भी होते हैं, एक क्लर्क और उसके दो सहायक, एक सारजेण्ट-एट-आर्म्स तथा उसके नायब, और एक चेप्लेन। क्लर्क और सारजेण्ट-एट-आर्म्स तथा उनके सहायकों को राजा प्रधान मंत्री की मंत्रणा पर नियुक्त करता है, और चेप्लेन को अध्यक्ष (स्पीकर) नियुक्त करता है। ये सब पदाधिकारी जीवन भर के लिये नियुक्त होते हैं और अध्यक्ष के समान संसद की कालावधि के ही लिये नियुक्त नहीं होते। सदन के दो और मुख्य पदाधिकारियों का उल्लेख कर देना चाहिये, वे हैं— समूचे सदन की समिति का सभापति और उपसभापति। वे सरकार द्वारा अपने समर्थकों में से नियुक्त किये जाते हैं और सरकार के बदल जाने पर पुनर्निर्वाचित नहीं होते। अतएव वे राजनैतिक पद हैं, अर्थात् सरकार के पदच्युत हो जाने पर उन पदों पर आसीन व्यक्ति त्यागपत्र दे देते हैं।

क्लर्क के मुख्य कार्य ये हैं : सदन के सब आदेशों पर हस्ताक्षर करना, लार्ड-सभा के भेजे या लौटाये जाने वाले सब विधेयकों को पृष्ठांकित (endorse) करना, सदन की कार्यवाही का अभिलेख (record) तैयार करना, सब अभिलेखों तथा लेख्यों (documents) को सुरक्षित रखना, और 'आफीशल जनरल' (सरकारी पत्रिका) को (अध्यक्ष की सहायता से) तैयार करवाना। सारजेण्ट-एट-आर्म्स का मुख्य कार्य सभा में व्यवस्था बनाये रखना, द्वारपालों और सदेशवाहकों को निदेश देना, सदन के आदेशों को क्रियान्वित करना और अध्यक्ष द्वारा निकाले गये अधिपत्रों (Warrants) पर अमल करना है।

दूसरे पदों से अधिक प्रतिष्ठा, शक्ति तथा सम्मान अध्यक्ष के पद का होता है। यह पद इतना ही पुराना है जितना कि स्वयं सदन है। शायद 'स्पीकर' नाम इसलिये पड़ गया था कि पुराने जमाने में सदन की ओर से राजा के साथ इस पद पर प्रतिष्ठित व्यक्ति को बात (speak) करने का अधिकार था। पहले उसका काम सदन से प्रार्थना-पत्रों तथा प्रस्तावों को ले जा कर राजा के समक्ष रखना होता था। यद्यपि आज वह ऐसा कोई कार्य नहीं करता— अब सदन की स्थिति बदल गई है और वह प्रार्थना-पत्र देने की बजाय विधि-निर्माण तथा विचार करने वाला सदन बन गया है - किन्तु पुराना नाम अब भी चल रहा है। जिन देशों ने अपनी प्रतिनिधि-संस्थाओं को ब्रिटेन के अनुसार बनाया है। उन्होंने भी इसी नाम को अपना लिया है। यह स्मरण रखना चाहिये कि वह अब भी सदन और क्राउन के बीच सरकारी प्रवक्ता है, यद्यपि प्रधान मंत्री के पद के विकास के बाद उसके लिये ऐसा कोई कार्य शेष नहीं रह गया है।

पहले राजा ही अध्यक्ष की नियुक्ति करता था, किन्तु शक्ति-संघर्ष में सभा को ही यह अधिकार मिल गया कि वह अपने सदस्यों में से किसी को अध्यक्ष चुन सके। आज सभा ही अध्यक्ष को चुनती है तथा क्राउन उस पर अपनी स्वीकृति देता है। किन्तु दोनों ही बातें औपचारिक हैं। वास्तव में इस महान् पद के लिये व्यक्ति को प्रधान मंत्री ही चुनता है और इस मामले में वह अपने केबिनेट से परामर्श करता है, और यह देख लेता है कि वह जिस व्यक्ति को चुनेगा वह समस्त सदन को स्वीकार्य होगा। जब सदन के सदस्य लार्डसभा से वापस आते हैं तब एक सदस्य यह प्रस्ताव पेश करता है कि श्री अमुक सभापति का आसन (chair) ग्रहण करें और दूसरा कोई सदस्य इसका अनुमोदन करता है। फिर वह नामनिर्देशित सदस्य अपने स्थान पर उठता है और सदन की इच्छा को शिरोधार्य करता है और सदन इस पर करतल ध्वनि से उसका स्वागत करता है।

यद्यपि अध्यक्ष संसद की कालावधि के लिये ही चुना जाता है तथा नई संसद से सदैव कहा जाता है कि वह उपयुक्त व्यक्ति को अपना अध्यक्ष चुने, फिर भी

अध्यक्ष का निर्वाचन निर्विरोध हो जाता है, जब तक कि पुराना अध्यक्ष अवकाश प्राप्त न कर गया हो और उसके स्थान पर नया अध्यक्ष न चुना जाना हो। इसका कारण यह है कि वहां एक परम्परा बन गई है कि नया सदन भी पुराने अध्यक्ष को ही पुनः चुन लेता है चाहे दूसरा दल ही शक्ति आरूढ़ क्यों न हो गया हो। अतः यह बात अद्भुत नहीं है कि कोई रूढ़िवादी दल (Conservative) का व्यक्ति अध्यक्ष हो किन्तु उदार (Liberal) या श्रम दल की सरकार हो, या इससे विपरीत दशा हो। कोई सदस्य एक बार अध्यक्ष बन जाने पर सदा अध्यक्ष ही रहता है। इस परम्परा का कारण एक दूसरी परपरा है — कि यह पद पूर्णतः निष्पक्षता का है। ज्योंही कोई व्यक्ति इस पद को स्वीकार करता है वह किसी दल का सदस्य नहीं रहता तथा अपने पहले के दल से त्यागपत्र दे देता है। वह किसी दल की बैठक मे या किसी राजनैतिक वाद-विवाद मे भाग नहीं लेता और किसी राजनैतिक मामले पर अपनी सम्मति भी नहीं देता। इस पद पर प्रतिष्ठित होते ही वह राजनीति से सन्यास ले लेता है। इसके फलस्वरूप, जब तक वह अध्यक्ष रहना चाहता है तब तक उसके स्थान (Seat) के लिये भी विरोध नहीं होता और उसे निर्विरोध चुन लिया जाता है। किन्तु हाल ही मे एक श्रम सदस्य ने इस परपरा का उल्लंघन किया था और अध्यक्ष के निर्वाचन-क्षेत्र से खड़ा हो गया था। जनता ने उसके कार्य का या भावना का समर्थन नहीं किया। राजनीति से संन्यास आवश्यक समझा जाता है जिससे कि अध्यक्ष निश्चय ही निष्पक्ष रहे। उससे किसी दल के प्रति पक्षपात की प्रत्याशा नहीं की जाती। हमारे देश मे भी समस्त विधान निकायो (Legislative bodies) के अध्यक्षों ने इस परंपरा का पालन किया है। केवल उत्तर प्रदेशीय विधान सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन ने इसका उल्लघन किया था। उन्होंने कहा कि यहां की परिस्थितियां इङ्गलिस्तान की परिस्थितियों से भिन्न हैं और अध्यक्ष को स्वतंत्रता के राष्ट्रीय संघर्ष मे भाग लेने से नहीं रोका जाना चाहिये। अतएव वे कर्मठ कांग्रेसी भी रहे तथा अध्यक्ष का कर्तव्य भी पूर्ण न्याय तथा निष्पक्षता से पालन किया। निस्सदेह व्यक्ति के लिये यह संभव है कि वह दल से संबंध भी रखे, और सरकारी मामले मे न्याय से भी काम ले। अध्यक्ष को योग्य, चेतन, समझदार, शान्त और सभा की प्रक्रिया (Procedure) में पारंगत होना चाहिये।

लोकसभा का अध्यक्ष विविध प्रकार के कार्य करता है। जब सदन सत्र (Session) मे होता है तब वह सभापति के आसन पर बैठता है, वही निश्चित करता है कि कौन बोलेगा, शांति व्यवस्था बनाये रखता है, गड़बड़ करने वाले सदस्यों को चेतावनी देता है, और उन्हे अधिवेशन से निलम्बित (Suspend) कर देता है, सदन के नियमो की व्याख्या करता है, प्रश्नों पर मत लेता है तथा मतदान

के परिणाम को घोषित करता है, और वह सदन की प्रतिष्ठा तथा विशेषाधिकारों का सरक्षक होता है। वह सब नियम सवधी प्रश्नों (Points of Order) का फैसला करता है जो अंतिम होता है। वह मत नहीं देता जब तक कि मतसाम्य (Tie) न हो। और जब वह अपना निर्णायक मत देता है तो भी वह सदन के नियमों विनियमों के अनुसार ही देता है, अपनी व्यक्तिगत या राजनैतिक भावनाओं के अनुसार नहीं, क्योंकि उन्हें तो वह समाप्त ही कर देता है। यह समझ लेना चाहिये कि उसकी अपनी कोई मरजी नहीं होती, जो वह सदन पर लाद सके; उसका मुख्य कार्य है सदन की इच्छा को जानना जो कि उसके नियमों आदि में सन्निहित होती है। प्रायः ये ही कार्य हैं जो समस्त संसार में विधान-निकायों के अध्यक्ष करते है। किन्तु कुछ और भी महत्त्वपूर्ण कार्य हैं जो विशेषतः ब्रिटिश अध्यक्ष (Speaker) ही करता है। १९११ के ससद अधिनियम (Parliament Act) से उसे यह निश्चय करने की शक्ति मिल गई है कि कोई विधेयक (Bill), धन-विधेयक (Money Bill) है या नहीं। यह शक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उससे उस विधेयक के भाग्य का ही निर्णय हो जाता है। कई अवसरों पर उसे बड़े बड़े सम्मेलनों (Conferences) और आयोगों (Commissions) के सदस्यों को नियुक्त करना पड़ता है तथा कुछ सम्मेलनों का सभापतित्व करना पड़ता है।

इसलिये अध्यक्ष का पद बहुत प्रतिष्ठा और सम्मान वाला है। उसे प्रति वर्ष ५ हजार पाउंड वेतन के रूप में तथा वेस्टमिनिस्टर एबे मे सरकारी पदावास मिलता है। निवृत्त (retire) होने पर उसे पियर बना दिया जाता है तथा ४ हजार पाउंड वार्षिक निवृति वेतन (Pension) मिल जाता है। व्हिट्ले स्पीकर ने निवृत होने पर लार्ड बनने से इन्कार कर दिया था। ब्रिटिश अध्यक्ष की अमरीकी प्रतिनिधि सभा के तथा फ्रांसीसी नेशनल-असेम्बली के अध्यक्षों से तुलना करना लाभदायक होगा। वे दोनों अध्यक्ष अपने दलीय सबन्धों को नहीं तोड़ते और अपने अपने दल के सदस्य बने रहते हैं। यहाँ तक कि सदन की कार्यवाही में भी उनसे आशा की जाती है कि वे अपने दल को कुछ लाभ पहुँचायें। फ्रांस के अध्यक्ष की तो यह बात प्रसिद्ध थी कि वह अपने आसन को छोड़कर घन्टों तक वक्तृता दिया करता था। किन्तु वहां भी अंग्रेजों के समान परम्परा बनती जा रही है। उसका कार्य ही ऐसा है कि ब्रिटिश अध्यक्ष का उसके देशवासी जितना सम्मान करते हैं उतना अमरीका या फ्रांस के अध्यक्षों का नहीं होता।

**स[illegible] (Session) कैसे आरम्भ होता है—** अपने निर्वाचन के अगले दिन अध्यक्ष सभा के सदस्यों के साथ लार्डसभा मे जाता है, अपने निर्वाचन की घोषणा करता है और लार्ड चांसलर के द्वारा राजा की स्वीकृति को प्राप्त करता है। वह

लोकसभा के प्राचीन विशेषाधिकारों, अर्थात् वाक्स्वातन्त्र्य, बन्दीकरण से स्वतन्त्रता, अपनी प्रक्रिया (Procedure) के विनियमन (Regulation) का अधिकार, आदि की मांग करता है तथा उन्हें प्राप्त करता है। अपने कमरे में लौट कर अध्यक्ष और सदस्य वफादारी की शपथ (Oath of Allegiance) लेते हैं। अगले दिन सदस्यगण राजा का भाषण सुनने के लिये पुन: लार्डसभा मे बुलाये जाते हैं और उस अभिभाषण को स्वयं राजा या उसकी अनुपस्थिति मे लार्ड चांसलर पढ़ता है। यह सिंहासन-भाषण कहलाता है, किन्तु वास्तव मे वह प्रधान मन्त्री द्वारा तैयार किया हुआ होता है और उसमें सरकार की विदेशी और गृह नीति की रूपरेखा होती है तथा उस सत्र मे पेश किये जाने वाले मुख्य प्रस्तावो के विषय में कुछ होता है। भाषण की समाप्ति के पश्चात् लोक-सभासद अपने कमरे में चले जाते हैं जहां उस भाषण का पुनर्पठन होता है और उस पर वाद-विवाद होता है। उसके उत्तर मे प्रत्येक सभा में एक समावेदन (Address) पर मतदान होता है जिसका आशय सरकार मे विश्वास या अविश्वास होता है। यह बहस कई दिनों तक चल सकती है और विरोधी दल के सदस्य उस पर संशोधन भी पेश कर सकते हैं। इस कार्य की समाप्ति पर सभा समितियों आदि का निर्माण करती है तथा अपना नियमित कार्य आरम्भ कर देती है।

**लोकसभा की समितियां**— लोकसभा का प्रधान कार्य विधिनिर्माण (Legislation) है। इस कार्य को कुशलतापूर्वक तथा कम से कम समय मे पूरा करने के उद्देश्य से वह कई समितियों का प्रयोग करती है। वास्तव मे समस्त संसार मे विधायक निकाय इसे आवश्यक और सुविधाजनक समझते हैं कि बहुत सा प्रारम्भिक कार्य समितियों को दे दिया जाये। किन्तु समिति-पद्धति भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न है। ब्रिटेन मे उस पद्धति का जो रूप है वह संयुक्त राज्य अमरीका मे नहीं है और फ्रांस में दोनों से ही भिन्न रूप है। हमारे देश मे अभी कोई विशेष पद्धति का विकास नहीं हुआ है।

लोकसभा में पांच प्रकार की समितियां होती हैं। वे ये हैं: (१) समूचे सदन की समिति ; (२) सार्वजनिक विधेयकों पर प्रवर समितियां (Select Committees) ; (३) सार्वजनिक विधेयकों पर सत्र (Session) समितियां ; (४) सार्वजनिक विधेयकों पर स्थायी (Standing) समितियां ; और (५) असार्वजनिक विधेयकों पर समितियां।

समूचे सदन की समिति में सभा के सारे सदस्य होते हैं। उसके सत्रों और सभा के सत्रों मे निम्न अन्तर होते हैं : इसका सभापतित्व समितियों का सभापति करता है, सदन का अध्यक्ष नहीं करता : अध्यक्ष की शक्ति की प्रतीक 'गदा' (Mace)

को मेज पर नहीं रखा जाता, बल्कि उसके नीचे रखा जाता है ; वहां की प्रक्रिया कम औपचारिक होती है क्योंकि किसी प्रस्ताव के समर्थन (Seconding) की आवश्यकता नहीं है और कोई सदस्य जितनी बार चाहे बोल सकता है, और 'प्रीवियस क्वश्चन' (Previous Question) का प्रस्ताव करके वाद-विवाद को समाप्त नहीं किया जा सकता। सब धन-विधेयकों को 'समूचे सदन की समिति' में अवश्यमेव भेजा जाता है। सरकार तो यही चाहती है कि उसके महत्त्वपूर्ण मामलों पर ऐसी ही समिति में विचार हो क्योंकि उसका अन्य समितियों की बजाए इस में अधिक नियन्त्रण रहता है। जब सभा अनुदानों (Grants) के लिये मांगों या विनियोगों (Appropriations) पर विचार करने के लिये बैठती है तब उसे 'हाउस-इन-सप्लाई' या 'सप्लाई समिति' कहते हैं। जब वह आवश्यक राजस्व की व्यवस्था करने के लिये बैठती है तब उसे 'वेज़ एण्ड मीन्स' (Ways and Means) की समिति कहते हैं। यह याद रखना चाहिये कि समितियों का सभापति, जो समस्त सभा की समिति में सभापतित्व करता है, कट्टर दलीय व्यक्ति होता है। जब समिति में प्रस्तुत विषय पर विचार हो चुकता है तब वह उठ जाती है ; सभा का सत्र आरंभ हो जाता है, जिसमें अध्यक्ष सभापति होता है और समिति का सभापति अपनी रिपोर्ट उसे पेश करता है।

सार्वजनिक विधेयकों की प्रवर समिति में १५ सदस्य होते हैं और उस समिति का समय समय पर निर्माण किसी मामले पर विचार करने तथा रिपोर्ट देने के लिये होता है जिस पर विधान-निर्माण होना हो। उसका प्रयोजन प्रायः यह होता है कि वह विवेकशील विधि-निर्माण के लिये आवश्यक सूचना प्राप्त करती है और गवाहियां आदि भी लेती है। वह अपना सभापति स्वयं चुनती है जो कार्यवाही का विस्तृत विवरण रखता है और सभा को रिपोर्ट पेश करता है। समिति के सदस्यों के नामों का सुझाव भी वही सदस्य देता है जो उसकी नियुक्ति का प्रस्ताव पेश करता है। कार्य समाप्त होने पर उस समिति का अस्तित्व नहीं रहता। प्रत्येक सत्र में लगभग बीस ऐसी समितियां नियुक्त होती हैं।

कुछ प्रवर समितियां समूचे सत्र के लिये बनाई जाती हैं और उन्हें विशिष्ट विषय सौंपे जाते हैं। वे सत्रीय समितियां (Sessional Committees) कहलाती हैं। लगभग आठ दस सत्रीय समितियां होती हैं, उनमें मुख्य ये हैं : सेलेक्शन समिति, स्थायी आदेशों (Standing Orders) की समिति, सार्वजनिक लेखा (Public Accounts) समिति और सार्वजनिक याचिका (Public Petitions) समिति।

प्रवर या सत्रीय समितियों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण पांच स्थायी समितियां हैं जिनमें चार के नाम 'क', 'ख', 'ग', 'घ' हैं और पांचवी स्काटलैण्ड

सम्बन्धी समिति है। उन्हें प्रत्येक सत्र के आरम्भ मे चुना जाता है और जब तक ससद् का सत्र खत्म न हो जाये तब तक वे रहती हैं। उनमें से प्रत्येक मे ३० से ५० तक सदस्य होते हैं जिन्हें 'सेलेक्शन समिति' चुनती है। जो मामले समूची सभा की समिति में भेजे जाते हैं उनके अतिरिक्त सब मामले अध्यक्ष के निदेशानुसार इनमें से किसी न किसी स्थायी समिति में भेज दिये जाते हैं। 'सेलेक्शन समिति' किसी समिति मे किसी विधेयक विशेष पर विचार करने के लिये १० से ३५ तक अतिरिक्त और अस्थायी सदस्य जोड़ सकती है। वे सदस्य इस बात को खास तौर से ध्यान मे रख कर चुने जाते हैं कि उन्हें इस विषय का विशेष ज्ञान है और जब उस विषय पर विचार समाप्त हो जाता है तब वे सदस्य नहीं रहते हैं। स्थायी समिति को जानबूझ कर बड़ा बनाया जाता है जिससे कि वह 'छोटा सा विधान-मंडल' बन जाता है। यह आशा की जाती है कि उसके पास जो मामला भेजा जाये उस पर इतना पूरी तरह विचार किया जाये कि उस पर सभा को अधिक समय न देना पड़े। एक और भी बात है कि स्थायी समिति में सदस्य मनोनीत करते समय 'सेलेक्शन समिति' इस बात का भी ध्यान रखती है कि उसमे विभिन्न दल उसी अनुपात से रखे जायें जिस अनुपात मे उनकी संख्या सभा में है। आधुनिक स्थायी समितियां नई चीज हैं; उन्हे सर्वप्रथम १८८२ में प्रयोग रूप मे बनाया गया था। सेलेक्शन समिति मे, जो विभिन्न स्थायी समितियो के लिये सदस्य नियुक्त करती है, ११ सदस्य होते हैं। वे सब दलों के प्रतिनिधि होते हैं और सभा उन्हे प्रत्येक सत्र के आरम्भ मे नियुक्त करती है।

संयुक्त राज्य अमरीका तथा फ्रांस मे भी स्थायी समितियां होती हैं किन्तु उनमें और ब्रिटिश समितियों मे बहुत अंतर है। ब्रिटेन मे केवल ५ स्थायी समितियां हैं जबकि अमरीका मे ४ दर्जन हैं, जिनमे कई व्यर्थ हैं। ब्रिटेन की बड़ी समिति मे ८५ सदस्य भी हो सकते हैं किन्तु अमरीकी सभा की समिति में ३५ सदस्यों से अधिक नहीं होते। अमरीकी समितियां अलग अलग प्रशासकीय विभागों से सम्बद्ध होती हैं और अलग तरीके से बनती हैं। 'प्रतिनिधि सभा' मे बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक दल प्रत्येक समिति के लिये अपनी अपनी सूची बना लेता है और फिर उन सूचियों को मिला कर उन पर सभा का मत ले लिया जाता है। वे दलों के आधार पर ही बनती हैं, जैसा ब्रिटिश लोकसभा मे नहीं होता। उनके सभापतियों का चुनाव भी दूसरी तरह होता है। इंगलिस्तान में प्रत्येक समिति के सभापति को 'सेलेक्शन समिति' द्वारा नामनिर्दिष्ट 'सभापति नामावली' (Panel) में से चुना जाता है, अमरीका में सभापति को सभा ही चुनती है। वह बहुसंख्यक दल का सबसे मुख्य सदस्य होता है। उनके कार्यों में भी कई अन्तर हैं जिनका वर्णन हम आगे चल कर करेंगे।

असार्वजनिक (Private) विधेयकों (Bills) की समितियां ब्रिटिश लोकसभा में ही होती हैं। वैसी समितियां संयुक्त राज्य अमरीका या फ्रांस में नहीं होतीं क्योंकि उन देशों मे सार्वजनिक (Public) और असार्वजनिक (Private) विधेयकों में ऐसा कोई अन्तर नहीं है जैसा ग्रेट ब्रिटेन मे है। सार्वजनिक विधेयक उसे कहते हैं जो सब जनता से सम्बद्ध हो और किसी स्थान विशेष से नहीं, यथा शिक्षा, सैनिक-सेवा राजस्व या वृद्धावस्था के निवृत्तिवेतन (pension) आदि के विधेयक। असार्वजनिक उसे कहते हैं जिसका उद्देश्य किसी स्थान विशेष को विधि को बदलना हो या किन्हीं व्यक्तियों विशेष को कोई अधिकार प्रदान करना हो या उनके किसी दायित्व को हटाना हो, यथा किसी काउंटी कौंसिल को किसी रेलवे लाइन या ट्रामवे को बढ़ाने का अधिकार देने संबन्धी विधेयक। यह असार्वजनिक विधेयक समिति मे भेजा जाता है। उस समिति मे चार व्यक्ति होते हैं जिनके नाम सेलेक्शन समिति निर्देशित करती है।

लार्डसभा मे भी ऐसी ही समितियां होती हैं, समूचे सदन की समिति, स्थायी समितियां, सत्रीय और प्रवर समितियां। उनका विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता नहीं है।

**लोकसभा का कार्य**— लोकसभा को अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं। उसमें विधियां बनती हैं, विविध कार्यों को चलाने के लिये सरकार को धन दिया जाता है, व्यय के लिये राजस्व एकत्र करने की स्वीकृति दी जाती है, राष्ट्र की ओर से सरकार के कामों का ध्यान रखा जाता है, देखभाल की जाती है, नियंत्रण रखा जाता है तथा आलोचना की जाती है, राजनीति पर ध्यान आकर्षित करने के लिये वादविवाद किया जाता है जिससे लोगों को यह स्पष्ट पता चल जाये कि उन्हें किन प्रश्नों का निर्णय करना है, और प्रश्नों, स्थगत-प्रस्तावों आदि के द्वारा शिकायतें पेश की जाती हैं। इससे अतिरिक्त भी वह कई कार्य करती है। सिडनी लो ने सेलेक्टिव और ऐलक्टिव दो प्रकार के कार्य बताये हैं। अभिसमयों द्वारा उन्हें मान्यता प्राप्त नहीं है किन्तु वे बहुत दिलचस्पी की चीजें हैं। लास्की उसके कार्यों का यह महत्त्व-बताता है कि वह सरकार-निर्माता निकाय है। इन कार्यों का वर्णन करने से पूर्व प्रक्रिया के नियमों (Rules of Procedure) के विषय में, जिनके अनुसार नित्य प्रतिदिन का साधारण कार्य चलता है, कुछ शब्द कहना आवश्यक प्रतीत होता है।

आजकल प्रक्रिया के जो नियम हैं वे शनैः शनैः विकास के फलस्वरूप बने हैं। यद्यपि उनमें से अनेकों को स्थायी आदेशों (Standing Orders) के रूप में लिख लिया गया है और वे तब तक प्रभावी रहते हैं जब तक कि सदन उनका

निरसन या उनमें परिवर्तन न कर दे, फिर भी, प्रथा (Custom) से अब भी बहुत कुछ काम चलता है। ऑग ने कहा है कि प्रक्रियात्मक प्रश्नों का निश्चय मुद्रित नियमों और आदेशों से नहीं होता वरन् सभा की अलिखित प्रथाओं और रूढ़ियों द्वारा होना है। उन्हें पूर्ण रूप से सीख लेना किसी सदस्य के लिये सुगम कार्य नहीं है और पारनेल ने ठीक ही कहा है कि कोई सदस्य ठोकर खाये बिना उन नियमों को सीख नहीं सकता। यह बात याद रखनी चाहिये कि अपनी प्रक्रिया के नियमों को निश्चित करने का सभा को पूरा अधिकार है। वह कभी किसी नियम का निलम्बन या निरसन साधारण बहुमत से कर सकती है।

संसद् के जीवनकाल को कई सत्रों में विभाजित किया जाता है, जिनमें से प्रत्येक सत्र प्रायः एक वर्ष का होता है। सत्र नवम्बर में आरम्भ होता है, बड़े दिनों (Christmas) की छुट्टी में स्थगित हो जाता है, जनवरी में पुनः समवेत होता है और ईस्टर तथा व्हिटसन टाइड की छुट्टियों में थोड़े थोड़े दिन स्थगित होता है। अन्त में जुलाई में गरमी की छुट्टियां होती हैं और नवम्बर में थोड़े दिन की बैठकों के पश्चात् राजा सत्रावसान कर देता है। कुछ दिनों पश्चात् ही अगला अधिवेशन आरम्भ हो जाता है।

जब सदन का सत्र होता है तब उसकी बैठकें सोमवार से बृहस्पतिवार तक पौने तीन बजे से रात के ११ बजे तक होती हैं। प्रतिदिन कार्य आरम्भ होने से पहले प्रार्थना होती है और उसके बाद असार्वजनिक विधेयकों पर विचार होता है तथा याचिकायें (Petitions) पेश की जाती हैं। इसमें अधिक समय नहीं लगता और इसके पश्चात् *'प्रश्नों का समय'* आता है जिसमें ग़ैर-सरकारी सदस्य मन्त्रियों से उनके विभागों के प्रशासन-संबन्धी तथा अन्य मामलों पर प्रश्नोत्तर करते हैं। इसी समय में सभा में शिकायतें पेश होती हैं तथा मंत्रियों के कारनामों को प्रकाश में लाया जाता है। इस प्रकार प्रश्नोत्तर के भय से ही मंत्री नवाबों के समान प्रमादी स्वभाव के नहीं बन पाते और जनता तथा समाचारपत्रों की ओर ध्यान देने के लिये बाध्य होते हैं। अतः यह प्रथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अमूल्य रक्षण-कवच है; इसी के कारण मंत्री जन साधारण के प्रति उत्तरदायी बनता है। इससे दूसरे लाभ भी हैं। इससे यह पता लग जाता है कि प्रत्येक मंत्री अपने विभाग के काम को कितना समझता है, इससे लोगों को कई ऐसी बातों का पता लग जाता है जो वैसे मालूम नहीं हो सकतीं थीं और सरकार को अवसर मिल जाता है कि वह अपनी नीति के विषय में संदेहों को मिटा सके। अमरीका की प्रतिनिधि सभा में ऐसे प्रश्नोत्तर नहीं होते।

प्रश्नों के उत्तर के लिये प्रायः दो दिन पहले सूचना (notice) देनी होती है, किन्तु आकस्मिक प्रश्नों पर अध्यक्ष कुछ घन्टों की सूचना देने की ही अनुमति दे

सकता है। यदि कोई प्रश्न अनुचित रूप में लंबा हो या उसमें तर्क अथवा व्यंग की बातें हों, या किसी ऐसे विषय पर हो जिस पर उसी सत्र में वाद-विवाद हो चुका हो, या केवल विचार अभिव्यक्त कराने के लिये हो तो उस प्रश्न को अध्यक्ष रोक सकता है। यह आशंका हो सकती है कि शायद सदस्य लोग इस अमूल्य प्रणाली का दुरुपयोग करें। अतः अध्यक्ष को ही इस बात का एकमात्र निर्णायक बनाया गया है कि प्रश्न उचित है या नहीं।

फ्रांस के चेम्बर ऑफ डेपुटीज़ में (जिसे अब नेशनल असेम्बली कहते हैं) एक सुनिश्चित प्रकार का प्रश्न होता है जिसे 'इन्टरपेलेशन' कहते हैं। उससे चेम्बर में वाद-विवाद के लिये रास्ता खुल जाता है और उस वाद-विवाद के अन्त में सरकार पर अविश्वास या विश्वास के प्रश्न पर मत लिये जाते हैं। ब्रिटेन में प्रश्न के फल-स्वरूप वाद-विवाद कदापि नहीं हो सकता। यदि प्रश्न का उत्तर संतोषजनक न हो तो सदस्य केवल यही कर सकता है कि स्थगन-प्रस्ताव (Adjournment motion) पेश कर दे। यदि अध्यक्ष उसकी अनुमति दे दे और १०० सदस्य उसका समर्थन कर दें तो साढ़े सात बजे सदन का कार्य विलम्बित करके उस पर वाद-विवाद होता है।

प्रश्नों का समय प्रायः पौने चार बजे समाप्त हो जाता है, तब कोई नया सदस्य हो तो उसका परिचय दिया जाता है। फिर सदन अपना विधि-निर्माण तथा धन पर नियंत्रण का कार्य आरम्भ करता है जिसमें सदन का अधिकांश समय लग जाता है। समय समय पर विरोधी दल की प्रार्थना पर कुछ दिन अलग रख दिये जाते हैं जब किसी महत्त्वपूर्ण मामले पर सरकार की नीति पर वाद-विवाद होता है। शुक्रवार को सभा का कार्य ११ बजे आरंभ होकर ४ बजे तक चलता है। यह समय इस लिये रखा जाता है कि सप्ताहांत में सदस्य-गण अपने निर्वाचन क्षेत्रों को या घरों को जा सकें। कई बार शुक्रवार का दिन ग़ैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिये अलग रख दिया जाता है। किन्तु यदि सरकारी कार्य अधिक हो तो शुक्रवार को भी सरकारी विधेयकों के ही लिये रख दिया जाता है। यद्यपि सिद्धान्त के अनुसार सभा ही अपनी कार्यावली को निश्चित करती है किन्तु वास्तव में प्रत्येक बृहस्पतिवार को प्रधान मंत्री ही बताता है कि आगामी सप्ताह में क्या कार्य होगा। ज्यों ज्यों सत्र आगे बढ़ता है, त्यों त्यों ग़ैर-सरकारी कार्य से अधिमान (preference) सरकारी कार्य को दिया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में एक नई प्रवृत्ति का विकास हुआ है कि ग़ैर-सरकारी सदस्यों की महत्ता शनैः शनैः बहुत कम हो गई है। ग़ैर-सरकारी सदस्यों को अपने विधेयकों के पारित करवाने के लिये बहुत कम अवसर दिये जाते हैं। उन्हें केवल आठ बुधवार तथा तेरह शुक्रवार ही मिलते हैं।

संसद (Parliament) का अर्थ है बातचीत या वाद-विवाद करने का स्थान। उसके प्रांगण में विधान-संबन्धी विषयों पर और सरकारी नीति पर जो वाद-विवाद

होते हैं उन्हें विश्व के विभिन्न भागों में लाखों लोग पढ़ते हैं। उनके विषय में यहां कुछ शब्द लिख देना असंगत नहीं होगा। लोक सभा में वक्तृताएं अध्यक्ष को सम्बोधन करके दी जाती हैं, और लार्ड सभा में सदस्यों को संबोधित किया जाता है। दोनों सभाओं में सदस्यों को लिखित भाषण पढ़ने की अनुमति नहीं होती, किन्तु मुख्य-मुख्य संकेत लिखकर उनका प्रयोग किया जा सकता है। लोकसभा में भाषण प्रायः छोटे होते हैं; एक घंटे से अधिक प्राय. कोई सदस्य नहीं बोलता, किन्तु कोई कालावधि भी नियत नहीं होती। किसी भी सदस्य को एक ही प्रश्न पर दो बार बोलने की अनुमति नहीं दी जाती, किन्तु यदि उसकी वक्तृता के किसी अंश को ग़लत समझ लिया गया हो तो वह स्पष्टीकरण सा दे सकता है। चुभने वाली अभिव्यक्तियों का प्रयोग मना है, और सदस्यों से सत्य वाद-विवाद के नियमों का पालन करने की आशा की जाती है। कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य का नाम लेकर नहीं बोलता किन्तु सदा 'अमुक निर्वाचन-क्षेत्र का माननीय सदस्य' ऐसा कह कर निर्देश करता है। नियमों का उल्लंघन करने वाले सदस्यों को अध्यक्ष शांत करता है, और यदि कोई उसकी अवहेलना करे या अनाचार करने की ही हठ करे तो उसका नाम लेकर उसे निलम्बित (Suspend) किया जा सकता है।

किसी प्रश्न पर वाद-विवाद को अनिश्चित काल तक नहीं चलाया जा सकता; उसे कभी न कभी समाप्त करना ही होता है। लोकसभा में वाद-विवाद को समाप्त करने के कई उपाय हैं। एक तो सामान्य समाप्ति -प्रस्ताव (Closure) ही है। किसी समय वाद-विवाद के समय कोई सदस्य खड़ा होकर प्रस्ताव कर सकता है कि "अब प्रश्न पर मत ले लिये जायें।" यदि १०० सदस्य इस प्रस्ताव का समर्थन करें तथा अध्यक्ष को यह प्रतीत हो कि अल्पमतों के अधिकार का अथवा सभा के नियमों का कोई अतिक्रमण नहीं हुआ है तो उस प्रश्न पर अधिक वाद-विवाद या संशोधन के बिना ही तत्काल मतदान तथा विनिश्चय हो जाता है। दूसरा उपाय अधिक कठोर है और उसे गिलोटिन (Guillotine) कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि किसी निश्चित दिवस को नियत समय पर किसी समूचे विधेयक पर मतदान होगा, चाहे उसके किसी भाग पर उस समय तक वाद-विवाद हुआ हो या न हुआ हो। दूसरे शब्दों में एक निश्चित कालावधि नियत कर दी जाती है जिसके भीतर उस विधेयक पर वाद-विवाद अवश्य ही समाप्त हो जाना चाहिये। इसी के कारण एक और उपाय जरूरी हो जाता है जिसे 'विभागशः समाप्ति' (Closure by Compartment) कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि विधेयक के भाग या खंड विशेष पर नियत कालावधि में वाद-विवाद समाप्त हो जाना चाहिये। तीसरी प्रकार के समाप्ति उपाय (Closure) को 'कंगारू' (Kangaroo) नाम से पुकारते हैं। इसका आशय यह है कि किसी विधेयक या प्रस्ताव के सब संशोधनों में से, अध्यासीन अधिकारी

Kr. Narendra Singh Sarda



(Presiding Officer) कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण वाद-विवाद के लिये चुन लेगा और शेष को छोड़ देगा। इससे समय की बहुत बचत हो जाती है। हाँ, यह आवश्यक नहीं है कि अध्यक्ष समाप्ति प्रस्ताव होने पर उसे स्वीकार ही करे; वह इनकार भी कर सकता है और कभी कभी कर भी देता है।

आजकल सभा की कार्यवाही शब्दशः लिखी जाती है तथा सरकारी तौर से प्रकाशित की जाती है। किन्तु बहुत लम्बे समय तक उनके प्रकाशन के लिये सरकार की ओर से कोई व्यवस्था नहीं थी।

**विधि-निर्माण की प्रक्रिया (The Process of Law-making) :** अब तक हमने यह बताया है कि लोकसभा में कार्यवाही कैसी चलती है, अब हम यह देखेंगे कि उनमें विविध कार्यों को करने का क्या तरीका है। हम सर्वप्रथम विधि-निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे।

हमें इस समय यह बताने कि आवश्यकता नहीं है कि संसद, जो पहले याचिका निकाय (Petitioning body) थी किस प्रकार बाद में विधान-निर्मात्री निकाय बन गई। हम केवल यही बताकर संतोष कर लेंगे कि आज विधान-निर्माण की क्या प्रक्रिया है। सब से पहले विशेष प्रकार के विधेयकों (Bills) का अंतर स्पष्ट करना आवश्यक है, क्योंकि उसे समझे बिना बहुत भ्रान्ति होना संभव है। पहले सार्वजनिक (Public) तथा असार्वजनिक (Private) विधेयकों मे भेद समझना होगा। असार्वजनिक विधेयकों के विषय में जो प्रक्रिया (Procedure) काम आती है वह असार्वजनिक विधेयकों के लिये काम आने वाली प्रक्रिया से बहुत भिन्न है, अतः इनका भेद महत्त्वपूर्ण है ; और इस प्रकार का अन्तर सयुक्त राज्य अमरीका या फ्रांस में नहीं पाया जाता। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सार्वजनिक विधेयक उसे कहते हैं जिसका समान्यतः सब पर प्रभाव पड़े और जो समस्त नागरिकों या उनमें से अधिकांश से सम्बद्ध हो। मताधिकार में परिवर्तन करने या करारोपण (Taxation) करने या मद्यनिषेध (Prohibition) को लागू करने का विधेयक सार्वजनिक विधेयक कहलाता है। असार्वजनिक विधेयकों का प्रभाव समस्त समाज पर नहीं पड़ता ; उसका सम्बन्ध किसी हित विशेष से होता है, जैसे किसी विशिष्ट स्थान या जनवर्ग का हित।

असार्वजनिक विधेयक का प्रयोजन प्रायः किसी स्थानीय समवाय (Company) या स्थानीय प्राधिकारी को किसी ऐसे कार्य की अनुमति देना होता है जिससे जनता के सांपत्तिक अधिकारों में हस्तक्षेप होता हो, जैसे किसी नगरपालिका को किसी ट्रामवे या गैस यंत्र बनाने का अधिकार देना। उसका आरम्भ सदा किसी बाह्य हित के द्वारा, विशेषतः स्थानीय समितियों द्वारा या इसी

प्रकार की क़ानूनी समितियों द्वारा होता है और कभी भी सरकार की ओर से नहीं होता। यदि सरकार कोई सार्वजनिक विधेयक पेश करे जिसका प्रभाव विशेष व्यक्तियों पर पड़ता हो तो उसे दूसरे पठन (Reading) के पश्चात् असार्वजनिक विधेयक के रूप में माना जाता है। किसी सरकारी कारख़ाने के निर्माण के लिये भूमि अर्जित करने का विधेयक इसका उदाहरण है। यहां अस्थायी आदेशों के स्थायी बनाने के विधेयक (Provisional Orders Confirmation Bill) का भी उल्लेख किया जा सकता है, उसके विषय में अधिक विवरण अन्यत्र दिया जायेगा।

कई बार सार्वजनिक विधेयकों के दो उपभेद किये जाते हैं— सरकारी विधेयक तथा ग़ैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक। सरकार की ओर से मंत्रिमंडल (Ministry) के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तावित विधेयक को सरकारी विधेयक कहते हैं। ऐसे विधेयकों का आरम्भ सरकार करती है और उन्हें संसद् में से सफलतापूर्वक पारित करवाना भी सरकार का ही उत्तरदायित्व है। सभा का बहुत समय उन पर ही लग जाता है। मंत्री के अतिरिक्त सदन के किसी सदस्य द्वारा, अर्थात् ग़ैर-सरकारी सदस्य द्वारा, प्रस्तावित विधेयक को 'ग़ैर-सरकारी सदस्य का विधेयक' कहते हैं। ऐसे विधेयक के पारित होने की बहुत ही कम संभावना होती है जब तक कि सरकार उसका समर्थन न करे, और सरकार बहुत कम मामलों में समर्थन करती है।* उन पर जो समय ख़र्च किया जाता है वह लगभग बरबाद ही होता है, किन्तु फिर भी इस प्रथा को इसलिये जारी रखा जाता है कि इससे ग़ैर-सरकारी सदस्य को अवसर मिलता है कि वह अपने आप को एक विधेयक का लेखक प्रसिद्ध कर सके। ऐसे विधेयक को पेश करने का अधिकार शलाका-पद्धति (Ballot) द्वारा निर्धारित होता है। यह बात याद रखनी चाहिये कि सरकारी विधेयकों तथा ग़ैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों को संसद् के अधिनियम बनने के लिये एक ही प्रकार की प्रक्रिया में से गुजरना पड़ता है, इस बात में उनमें कोई अंतर नहीं है, यद्यपि सार्वजनिक तथा असार्वजनिक विधेयकों के विषय में प्रक्रिया का अंतर होता है। इससे पता लगता है कि ग़ैर-सरकारी सदस्यों के बिल (Private Member's Bill) और असार्वजनिक बिल (Private Bill) में बहुत अन्तर है और अङ्गरेजी में नाम के सादृश्य से धोखा नहीं होना चाहिये।

विधियों को बनाने की समूची प्रक्रिया में दो मुख्य कार्य होते हैं। पहला तो मसविदा बनाने का कार्य होता है जिससे संसद् का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है; दूसरा कार्य तब आरम्भ होता है जब विधेयक को किसी सभा में पेश कर दिया जाता है।

*१९२४ से २६ तक संसद में ऐसे ४३० बिल पेश किये गये थे, जिनमें से केवल ६० ही पारित किये गये। उनमें से ३१ तो शुक्रवार को काम किये बिना ही पारित हो गये।

ग़ैर-सरकारी सदस्य के विधेयक का मसविदा वह स्वय तैयार करता है या किसी से करवाता है। सरकारी विधेयकों का मसविदा तैयार करने का कार्य दक्ष सरकारी लेखकों को सौंपा जाता है जो (Parliamentary Counsel to the Treasury) के कार्यालय मे नियोजित होते हैं। जिस मन्त्री के विभाग से विधेयक का सम्बन्ध होता है वह मन्त्री पहले एक कच्ची रूपरेखा तैयार करता है जिस पर केबिनेट ग़ौर करती है। केबिनेट स्थानीय अधिकारियो, सिविल सर्विस तथा सरकार के अतिरिक्त अन्य हितो से, जिन पर उस विधेयक का प्रभाव पड़ेगा, परामर्श करके आवश्यक परिवर्तन कर सकता है। इस प्रकार मन्त्री द्वारा तैयार की हुई कच्ची रूपरेखा का विकास तथा स्पष्टीकरण करके उसके उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों का काफी ठीक ठीक विवरण तैयार कर दिया जाता है। फिर वह मसविदा-लेखक के पास भेजा जाता है जो इसे पूरी तरह विधेयक का रूप दे देता है जिसमे खड धाराएँ, उपधाराएँ आदि सब होती हैं। उस पर एक बार केबिनेट मे पुनः विचार होता है, और अब वह संसद में पेश होने के लिये तैयार है। यदि वह धन-विधेयक (Money Bill) नहीं है तो उसे किसी सदन मे पेश किया जा सकता है। धन-विधेयक सदा लोकसभा मे ही प्रारम्भ होते हैं। वास्तव में सारे ही महत्त्वपूर्ण विधेयक लोकसभा मे ही आरम्भ होते हैं। केवल ऐसे ही विधेयक लार्डसभा मे पहले पेश होते हैं जो विवादास्पद नहीं होते; किन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं होनी।

**प्रथम पठन**— लोकसभा मे विधेयक पेश करने की प्रक्रिया बहुत सीधी है। सदस्य को केवल इतना ही करना पड़ता है कि वह विधेयक पेश करने की इच्छा की सूचना दे देता है, तथा जब अध्यक्ष उसका नाम पुकारता है तब वह उसकी एक प्रति सभा के क्लर्क को दे देता है जो उसके शीर्षक तथा प्रयोजन आदि को जोर से पढ़ कर सुनाता है। यही उस विधेयक का प्रथम पठन हो गया। यह केवल औपचारिक बात है, सभा प्राय. वाद-विवाद के बिना ही प्रथम पठन को स्वीकार कर लेती है, और आदेश दे देती है कि विधेयक को मुद्रित करा दिया जाये तथा सूची मे रख दिया जाये, जिससे कि उसकी बारी आ जाये। तब वह पेश हो सके। कई बार विधेयक का शीर्षक मात्र ही तैयार होता है और क्लर्क को नकली विधेयक ही दे दिया जाता है।

**दूसरा पठन**— एक पहले से तय की हुई तारीख को विधेयक का प्रस्तावक यह प्रस्ताव करता है कि उसे दूसरी बार पढ़ा जाये। इस दूसरे पठन के समय उसके उद्देश्यों, प्रयोजनों तथा सिद्धान्तों पर व्यापक वाद-विवाद होता है। उसके समर्थक उसका समर्थन करते हैं तथा सफाई पेश करते हैं, और उसके विरोधी लम्बे लम्बे भाषणों में उसकी आलोचना तथा निन्दा करते हैं। उस समय विचाराधीन

प्रश्न यह होता है कि क्या उस विधेयक की सचमुच आवश्यकता है; और सभा उसके उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों को स्वीकार करके उनका अनुमोदन करती है। यदि सभा प्रस्ताव को अस्वीकृत करदे तो विधेयक समाप्त हो जाता है, और यदि वह उसे स्वीकार कर ले तो विधेयक समुचित समिति को भेज दिया जाता है, और इस प्रकार 'समिति स्टेज' आरम्भ हो जाती है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि दूसरे पठन में विधेयक के विस्तृत उपबन्धों (Detailed provisions) पर विचार करने का अवसर नहीं होता; इस में संशोधनों को पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती। सरकारी विधेयक प्रायः इसमें से गुजर जाते हैं, किन्तु ग़ैर सरकारी सदस्यों के विधेयक इसी स्टेज में समाप्त हो जाते हैं।

**समिति स्टेज (Committee Stage)** — यदि विधेयक धन-विधेयक है या महत्त्वपूर्ण सरकारी विधेयक है तो वह समूची सभा की समिति में जायेगा, अन्यथा अध्यक्ष उसे किसी न किसी स्थायी समिति (Standing Committee) में भेज देगा। कभी कभी वह प्रवर समिति (Select Committee) में भेज दिया जाता है। प्रवर समिति में से लौटने के पश्चात् भी विधेयक को समूची समिति में या स्थायी समिति में जाना ही होता है। समिति में विधेयक पर विस्तार से तथा खंडश: विचार होता है और उसमें कई सप्ताह लग जाते हैं। विरोधी दल के सदस्य सैंकड़ों संशोधन पेश करते हैं जिनका उद्देश्य उस विधेयक को बहुत कुछ बदल देना या कम से कम उसके उपबन्धों के प्रभाव को कम कर देना होता है। लम्बे चौड़े वाद-विवाद को कम करने के लिये भिन्न भिन्न प्रकार से समाप्ति-प्रस्तावों (Closure Motions) का आश्रय लिया जाता है। इससे स्पष्ट होगा कि ग़ैर-सरकारी सदस्य को सभा की बजाए समिति में अपनी योग्यता दिखाने का तथा विधान-कार्य में योग देने का अधिक अवसर मिलता है क्योंकि सभा में तो वाद-विवाद का आयोजन सचेतकों (Whips) द्वारा होता है और परिणाम पहले ही निश्चित होता है।

**रिपोर्ट (Report) स्टेज**— जब समिति अपना कार्य समाप्त कर लेती है तब विधेयक पर सभा में रिपोर्ट पेश करती है और उसे रिपोर्ट स्टेज कहते हैं।* समिति में संशोधित विधेयक पर सामान्य वाद-विवाद होता है तथा नये संशोधन किये जा सकते हैं। इससे यह निश्चित हो जाता है कि अन्तिम रूप में विधेयक सभा की इच्छा का प्रतिनिधि होता है, समिति की इच्छा का नहीं। फिर विधेयक लोक-सभा में अन्तिम स्टेज अर्थात् तृतीय पठन के लिये पेश होता है।

---

* जिस समिति को विधेयक भेजा जाये वह सभा में उसका प्रतिवेदन पेश करने के लिये बाध्य है। अमरीका के समान वह प्रतिवेदन न देकर उसे समाप्त नहीं कर सकती।

**तीसरा पठन—** इसमें विधेयक पर अन्तिम बहस होती है तथा विरोधी दल को उसे परास्त करने का अन्तिम अवसर मिलता है। इस स्टेज पर विधेयक प्रायः अस्वीकृत नहीं होता। भाषा सम्बन्धी संशोधन या औपचारिक (formal) से संशोधन पेश हो सकते हैं। आम वाद-विवाद पर अधिक समय नहीं लगता।

जब विधेयक को तीसरी बार पढ़ कर पास कर दिया जाता है तब वह दूसरी सभा में जाता है जहाँ प्रथम पठन, द्वितीय पठन, समिति स्टेज, प्रतिवेदन (Report) स्टेज, तथा तृतीय पठन, ये सब बातें होती हैं। यदि दूसरी सभा भी उसे उसी रूप में पास करदे जिस रूप में पहली सभा ने पास किया था तो विधेयक अनुमति (Assent) के लिये बादशाह के सामने पेश होता है और उसकी अनुमति मिलने पर वह विधि-पुस्तक (Statute Book) में रख दिया जाता है, देश की विधि बन जाता है तथा न्यायालय उस पर अमल करते हैं।

१९११ के संसद अधिनियम में जो उपबन्ध हैं उन्हें छोड़ कर, अन्य अवस्थाओं में यह आवश्यक है कि ब्रिटिश संसद की दोनों सभाएं किसी विधेयक पर सहमत हो जायें तभी वह अनुमति के लिये बादशाह के सामने पेश हो सकता है। इसलिये यह जरूरी है कि दोनों सभाएं विधेयक को एक ही रूप में पारित करें। यदि एक सभा विधेयक को पास करदे और दूसरी सभा उसे रद्द करदे या ऐसे संशोधनों सहित पास करे जो अन्य सभा को स्वीकार्य न हों तो उसे बादशाह के सामने पेश नहीं किया जा सकता और इस प्रकार वह विधेयक समाप्त हो जाता है। दोनों सभाओं में गतिरोध को मिटाने के लिए दो उपायों का आश्रय लिया जाता है। दोनों सभाओं के प्रतिनिधि मिल कर मतभेदों को मिटाने का प्रयत्न कर सकते हैं, या लिखित सन्देशों द्वारा बातचीत होती है। प्रायः दूसरे उपाय को अपनाया जाता है, सम्मिलित बैठक का उपाय पुराना पड़ गया है। किन्तु वास्तव में दोनों सभाओं के आपसी मतभेदों को दलों के नेताओं में अनौपचारिक (informal) बातचीत के द्वारा निबटा कर समझौता कर लिया जाता है और केवल लिखित सन्देशों से ही काम नहीं चल पाता।

**संसद अधिनियम—** इस समय हमारे लिये १९११ के संसद अधिनियम के मुख्य उपबन्धों का संक्षेप से वर्णन करना लाभदायक रहेगा क्योंकि उसी से लार्डसभा और लोकसभा के सम्बन्ध निश्चित होते हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि दोनों में से लार्ड सभा पुरानी है और कभी वह एक महान निकाय तथा शक्तिसम्पन्न थी। संसद अधिनियम के पारित होने से पूर्व उसे विधान-कार्य में समान शक्ति प्राप्त थी और लार्ड जिस विधेयक का विरोध करते वह कभी क़ानून नहीं बन सकता था। किन्तु अब स्थिति बदल गयी है और संसद अधिनियम से यह

सम्भव हो गया है कि लोकसभा द्वारा पारित विधेयक को कई परिस्थितियों में लार्डसभा की सहमति के बिना भी राजकीय अनुमति के लिये पेश किया जा सकता है। इससे लार्डसभा की स्थिति गौण हो गई है और वह सचमुच द्वितीय सभा बन गई है। रैमज़े म्योर ने ठीक ही कहा है कि 'लार्डसभा को बांध कर उसके नकेल डाल दी गई है और उसे लगभग नपुंसक सा बना दिया गया है।' यह कहना तो शायद अतिशयोक्ति है कि लार्डसभा को नपुंसक बना दिया गया है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि संसद् अधिनियम से उसकी विधान-कार्य में बाधा डालने की शक्ति पर गम्भीर सीमाएँ लगा दी गई हैं। सर्वप्रथम, इसने लार्ड-सभा की वित्तीय मामलों में हस्तक्षेप करने की शक्ति को औपचारिक तथा वैधानिक रूप में समाप्त कर दिया गया है। वह ऐसे विधेयक में संशोधन नहीं कर सकती जिसे लोकसभा का अध्यक्ष धन-विधेयक प्रमाणित करदे। यदि ऐसे विधेयक को लार्डसभा प्राप्ति के पश्चात् एक मास में ही उस रूप में पारित न करदे जिस रूप में निम्न सभा (लोकसभा) ने उसे वह भेजा है, तो उस विधेयक को सम्राट महोदय के सामने अनुमति (Assent) के लिये पेश कर दिया जायेगा। दूसरी बात, संसद् अधिनियम में लिखा है कि लार्ड-सभा धन-विधेयक के अतिरिक्त अन्य विधेयक को दो बार तो रद्द कर सकती है किन्तु यदि वह विधेयक तीसरी बार भी उसी रूप में लोकसभा में पास हो जाये और पहली बार के दूसरे पठन और तीसरी बार के तीसरे पठन में कम से कम दो वर्ष का अन्तर हो तो वह लार्डसभा की स्वीकृति बिना ही सम्राट की अनुमति के लिये चला जायेगा। दूसरे शब्दों में, संसद् अधिनियम के अनुसार लार्डसभा को लोकसभा पर पूर्ण निषेधाधिकार (Veto) प्राप्त नहीं है, केवल विलम्बनकारी (Suspensive) निषेधाधिकार प्राप्त है। यदि वह लोकसभा से किसी विषय पर असहमत हो तो उस विधान में दो वर्ष के लिये विलम्ब कर सकती है, किन्तु उसे बिल्कुल रोक नहीं सकती। किन्तु संसद् के जीवन-काल को पांच वर्ष से अधिक बढ़ाने का विधेयक इस अधिनियम के अंतर्गत नहीं आता, उस पर लार्डसभा की सहमति आवश्यक है।

इन उपबन्धों का प्रभाव यह है कि लोकसभा वैधानिक रूप में सर्वोच्च सत्ता बन गई है तथा लार्डसभा की स्थिति निश्चय ही अधीनस्थ के समान बन गई है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि लार्डसभा की समस्त शक्ति छिन गई है तथा वह लगभग नपुंसक ही बन गई है। कई अधिनियमों में दो वर्ष का विलम्ब होने से उनका महत्त्व ही बहुत कम रह जायेगा। संभव है कि सरकार अपने विधेयकों को दो वर्ष के लिये रोकने की बजाय यह विकल्प (Alternative) ज्यादा उचित समझे कि वह लार्डसभा के संशोधनों को स्वीकार कर ले। श्रम सरकार को १९२९-३१ तक अपने कई अधिनियमों में संशोधन स्वीकार करने पड़े थे। भारत में ऐसी

स्थिति थी कि तत्काल कार्यवाही आवश्यक थी तथा दो वर्ष का विलम्ब सह्य नहीं होता। यदि लोकसभा द्वारा पारित भारत स्वतंत्रता अधिनियम (१६४७) को लार्डसभा रद्द कर देती तो अत्यन्त उलझन तथा क्षोभ की स्थिति उत्पन्न हो जाती। लास्की ने ठीक ही कहा है कि अब भी लार्डसभा श्रम-सरकार के विरुद्ध पर्याप्त शरारत कर सकती है।* इसी बात को मान कर श्रम सरकार ने एक नया अधिनियम, १६४६ का संसद् अधिनियम, बनाया है जिससे अब लार्डसभा अवित्तीय विधानो (Non-Money Legislation) को दो वर्ष के स्थान पर एक ही वर्ष के लिये रोक सकती है। इस अधिनियम को भी १६११ के संसद् अधिनियम के अन्तर्गत ही पारित किया गया था, और लार्डसभा ने इसे दो वर्ष मे तीन बार रद्द किया था।

असार्वजनिक विधेयक (Private bills) :— जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ग्रेट ब्रिटेन मे विधि-निर्माण की यह एक विशेषता है कि वहाँ सार्वजनिक (Public) तथा असार्वजनिक विधेयको मे भेद किया जाता है। क्योकि असार्वजनिक विधेयक के उद्देश्य तथा प्रयोजन सार्वजनिक विधेयकों के उद्देश्यो से बिल्कुल भिन्न होते हैं अतः उनके पेश करने की प्रक्रिया भी सार्वजनिक विधेयकों की प्रक्रिया से भिन्न है। सर्वप्रथम ऐसे प्रत्येक विधेयक के साथ एक याचिका (Petition) होती है और उस याचिका से पूर्व उन लोगो को प्रकाशित सूचना दी जा चुकी होनी चाहिये जिनके निजी हितों पर इसका प्रभाव पड़ता है। ऐसी सूचनाओं की प्रतियां भी सम्बद्ध सरकारी विभाग को अग्रिम भेजनी चाहियें। जब तक ये प्रारम्भिक बाते पूर्ण न हों तब तक असार्वजनिक विधेयक के साथ आने वाली किसी याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता। दो संसदीय अधिकारी, जिन्हें 'असार्वजनिक विधेयको सम्बन्धी याचिकाओं के परीक्षक' कहते हैं, यह देख लेते हैं कि सब आवश्यकताएँ पूरी हो गई हैं और वे उसका प्रमाण-पत्र दे देते हैं। उस प्रमाण-पत्र के मिलने के बाद ही वह विधेयक किसी सदन मे पेश हो सकता है। सार्वजनिक विधेयक के लिये ऐसी कोई शर्त नहीं है, चाहे वह गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तावित हो, चाहे सरकारी सदस्य द्वारा।

पेश होने के पश्चात, प्रत्येक असार्वजनिक विधेयक का प्रथम तथा द्वितीय पठन होता है। यदि दूसरे पठन मे कोई विरोध न हो तो उसे निर्विरोध विधेयकों की समिति मे भेज दिया जाता है। यदि विरोध हो तो प्रत्येक विधेयक को असार्वजनिक विधेयको संबंधी अनेक समितियों में से किसी समिति मे भेज दिया जाता है। यह समिति-स्टेज है जिसमे से प्रत्येक सार्वजनिक विधेयक भी गुजरता है, किन्तु असार्वजनिक (Private) विधेयकों की समिति उसे भेजे गये विधेयक पर जिस प्रकार से विचार

* आगे अध्याय ७ को देखिये।

करती है वह उस तरीके से बिल्कुल भिन्न है जिससे स्थायी (Standing) समिति किसी विधेयक पर विचार करती है। असार्वजनिक विधेयकों की समिति की कार्यवाही अर्ध-न्यायिक होती है। समिति का पहला काम यह है कि वह विधेयक की प्रस्तावना पर विचार करे जिसमें उसका उद्देश्य लिखा होता है, और उन लोगों की युक्तियों को सुने जो उसका समर्थन करते हैं तथा उनकी भी युक्तियों को सुने जो उसका विरोध करते हैं। प्रत्येक पक्ष की ओर से भाड़े के वकील वाद-विवाद करते हैं। न्यायालयों के समान गवाहों को सुना जाता है, तथा सुनवाई न्याय-युक्त एवं निष्पक्ष होती है। यदि समिति को विश्वास हो जाये कि प्रस्तावना सिद्ध हो चुकी है तो वह आगे बढ़ती है, अन्यथा विधेयक रह जाता है। जिन विधेयकों के पक्ष में समिति प्रतिवेदन (Report) दे देती है उन्हें सभा प्रायः निश्चय ही वाद-विवाद के बिना पारित कर देती है और फिर वे दूसरी सभा में भेज दिये जाते हैं। यह भी कह देना चाहिये कि असार्वजनिक विधेयकों पर विचार करने वाली समिति प्रायः सम्बद्ध सरकारी विभाग से सम्पर्क में रहती है तथा यह भी देख लेती है कि विचाराधीन विधेयक सरकार की सामान्य नीति के विपरीत तो नहीं है और वह कोई अवांछित दृष्टान्त तो नहीं बन जाएगा। समिति प्रायः छोटी होती है जिसमें चार ही सदस्य होते हैं; लार्डसभा की समिति में पाँच सदस्य होते हैं।

असार्वजनिक विधेयकों की प्रक्रिया में कुछ लाभ भी हैं तथा कुछ हानियाँ भी हैं। इसमें यह निश्चय रहता है कि सभा के समक्ष पेश विधेयक पर ध्यानपूर्वक न्यायपूर्वक तथा निष्पक्ष रूप से विचार हो जाता है। इस पर दलबन्दी का प्रभाव नहीं पड़ता। समस्त पद्धति इस सिद्धान्त पर आधारित है कि ऐसे विधेयकों का विनिश्चय वे ही लोग करें जो दोनों पक्षों को सुन चुके हों तथा किसी एक पक्ष के प्रति अनुग्रह-निग्रह न करें। सरकार कार्यवाही में कभी भाग नहीं लेती या बहुत कम भाग लेती है।

उसका दूसरा गुण यह है कि इससे राष्ट्रीय संसद का समय बच जाता है। दोनों सभाएँ बहस आदि पर समय बरबाद किये बिना समितियों की सिफारिशों को प्रायः स्वीकार कर लेती हैं। अमरीका में इसके विपरीत स्थिति है जहाँ विधेयक पर न पक्षपातहीन विचार होता है और न कांग्रेस को कोई सहायता मिलती है। ब्रिटेन की इस व्यवस्था में सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि यह खर्चीली है। वकीलों को बड़ी बड़ी फीसें देनी पड़ती हैं। तथा गवाहों को बुलाने में भी खर्च होता है। किन्तु लाभ त्रुटियों से अधिक हैं। जो विशेषाधिकार मांगते हैं उन्हें उनके लिये खर्च भी करना चाहिये। कुल मिला कर यह योजना अच्छी है और सफलतापूर्वक चल रही है।

## अस्थायी आदेश स्थायीकरण विधेयक (Provisional Orders

**Confirmation Bill)**— कोई निगम (Corporation) या समवाय (Company) जिस प्रयोजन के लिये असार्वजनिक विधेयक पारित करवाना चाहता है, उसके लिये कई वार सम्वद्ध सरकारी विभाग एक आदेश दे देता है कि उस काम को आरम्भ किया जा सकता है। संसद ने स्वास्थ्य, रेल, सड़क रेल, सार्वजनिक प्रकाश व्यवस्था, दीन-सहायता, शिक्षा आदि के विषय में कई अधिनियम पारित कर दिये हैं जिनके द्वारा स्वास्थ्य मंत्रालय, गृह कार्यालय और शिक्षा वोर्ड आदि सरकारी विभागों को अधिकार दे दिया है कि वे कुछ व्यक्तियों को या संगठनों को कुछ शक्तियाँ प्रदान कर सकते हैं जहाँ उसके लिये उपयुक्त कारण हों। उदाहरण के लिये, कोई स्थानीय निकाय किसी हस्पताल को चलाने के लिये नगरपालिका-हुंडियां (Municipal Bonds) जारी करने का धन एकत्र करना चाहता है, तो वह उसके लिये स्वास्थ्य मंत्रालय से अनुमति मांगता है। मंत्रालय आवेदन- पत्र के गुणावगुण पर अपने प्रशासन अधिकारियों से पड़ताल करवाता है, और उसकी सचाई का समाधान हो जाने पर आदेश जारी कर देता है कि आवेदक उस काम को कर सकता है। इस प्रकार यह आदेश असार्वजनिक विधेयक का स्थान लेता है; यह उन मांमलो के विषयों में होता है जिन पर पहले असार्वजनिक विधेयक पेश होते थे। परिणाम यह है कि असार्वजनिक विधेयकों की आवश्यकता अब कम हो गई है तथा आदेश अधिक जारी होने लगे हैं। किन्तु वह आदेश *अस्थायी* होता है। उस पर तब तक अमल नहीं हो सकता जब तक कि उसका संसद अनुमोदन न करदे। इसी कारण उसे अस्थायी कहते हैं। कई अस्थायी आदेशों को विधेयक के रूप में संकलित करके सरकार की ओर से ससद में पेश कर दिया जाता है। इन आदेशो को स्थायी बनाने के लिये जो अधिनियम होता है उसे अस्थायी आदेश स्थायीकरण अधिनियम (Provisional Orders Confirmation Act) कहते हैं। प्रायः संसद में उसका विरोध नहीं किया जाता। यदि कभी विरोध होता है तो उस विधेयक को प्रवर समिति में भेज दिया जाता है। किन्तु उसके परास्त होने की संभावना नगण्य है। यह याद रखना चाहिये कि इन विधेयको पर संसद यथेष्ट ध्यान नहीं देती। यह एक उदाहरण है कि संसद ने ऐसा कार्य सम्भाला हुआ है जिसे वह समुचित रूप से पूरा नहीं करती।

**विधि निर्माण में केबिनेट का भाग :** वेस्टमिनिस्टर मे विधि-निर्माण की प्रक्रिया का उपरोक्त रूप तो वाह्य पर्यवेक्षक को दिखाई देता है, इससे ब्रिटिश पद्धति की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता स्पष्ट नहीं होती जो अमरीकी तथा फ्रांसीसी प्रणालियों में नहीं है। वह विशेषता है— विधि-निर्माण मे केबिनेट का स्थान। सिद्धान्त तथा नियम के अनुसार विधान-कार्य ससद ही करती है, केबिनेट का इसमे कोई हाथ नहीं है। किन्तु वास्तव मे केबिनेट ही विधि-निर्माण करती है; ससद का

यही कार्य है कि केबिनेट जो कुछ प्रस्थापना रखे उस पर अनुमति दे दे (हॉ, उसे केबिनेट की प्रस्थापनाओं मे रूपभेद करने का अधिकार है) । 'हम कहते हैं कि लोकसभा विधि बनाती है, वैधानिक सूत्र यह है कि प्रत्येक कानून राजा द्वारा संसद की मंत्रणा और अनुमति से बनाया जाता है। नई विधियो को मंत्रिमंडल लोकसभा मे बहुमत की सहमति से तथा अल्पसंख्यकों के प्रबल विरोध के बावजूद बनाता है।'* इससे स्पष्ट हो जाता है कि विधान-कार्य मे ब्रिटिश केबिनेट का कितना प्रबल हाथ होता है। केबिनेट ने विधान-कार्य मे नेतृत्व अपने हाथ मे ले लिया है । वही निर्धारित करता है कि संसद मे क्या महत्त्वपूर्ण विधेयक पेश किये जायें और किस क्रम से पेश किये जायें। जब उसका बहुमत होता है तो वह निश्चयपूर्वक कह सकता है कि उसने जिन विधियों का उत्तरदायित्व लिया है वे लगभग सभी लगभग उसी रूप मे पारित हो जायेंगी जिस रूप मे उसने उन्हें पेश किया है । संयुक्त राज्य अमरीका या फ्रांस मे ऐसी बात कभी नहीं हो सकती।

केबिनेट के आधिपत्य के कारण गैर-सरकारी सदस्य का मूल्य कम हो गया है। विधान-कार्य मे उसका प्रभाव कुछ नहीं होता। उसे इतना ही अधिकार है कि वह अपना 'गैर-सरकारी सदस्य का विधेयक' पेश कर सकता है जिसके संसद मे सफल होने की संभावना बहुत कम होती है। संसद के समक्ष प्रस्तावित विधेयक के रूपभेद के विषय में उसकी आवाज बहुत प्रभावहीन होती है जिसके कई कारण हैं— सभा के स्थायी आदेश, उसकी परंपराएं तथा मंत्रियों के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त।† इस प्रकार यह विचित्र बात है कि ग्रेट ब्रिटेन मे विधान-मंडल (Legislature) के बहुत से सदस्य वास्तव में विधायक (Legislators) नहीं हैं। ब्रिटिश पद्धति में यह बहुत बड़ा दोष है।

**वित्त (Finance) पर संसद का नियंत्रण—** संसद का दूसरा बड़ा काम यह है कि वह राष्ट्रीय धन पर अंकुश रखती है तथा उसके संरक्षक का काम करती है। स्मरण रहे कि राजाओं को आवश्यकता पड़ने पर धन देने या न देने की शक्ति के कारण ही लोकसभा उनसे शक्ति छीन सकी थी तथा अपनी स्थिति को प्रबल बना सकी थी। आज भी संसद की प्रभुता का एक आधार यही है कि थैली

---

*Sidney Low : *op. ct.* pages 59–60.

† यह नहीं समझना चाहिये कि सरकार द्वारा प्रस्तावित विधेयक लोकसभा में कभी भी परास्त या साररूप में संशोधित नहीं हो सकता। हां, सरकारी विधेयक को सीधा रद्द प्रायः नहीं किया जाता है ; क्योंकि इससे केबिनेट पदत्याग कर देगा, विशेषतः यदि वह विधेयक महत्त्वपूर्ण हो, किन्तु कई विधेयकों में दोनों सभाओं में सारवान रूपभेद अवश्य हो जाता है।

पर उसका अंकुश है। किसी ने महान् सत्य कहा है कि 'जिसके पास थैली है उसी के पास शक्ति भी है'। ब्रिटिश संविधान का यह मूल सिद्धान्त है कि क्राउन को कर लगाने की शक्ति नहीं है जब तक कि संसद् मंजूरी न दे दे और उसकी मंजूरी बिना एक पाई भी खर्च करने का अधिकार नहीं है। केवल संसद् ही यह फैसला करती है कि क्या कर लगाये जायेंगे और उनसे प्राप्त राजस्व (Revenue) को कैसे खर्च किया जायेगा। यह स्मरण रखना चाहिये कि यहां संसद् का मतलब लोकसभा है। धन पर अंकुश का लोकसभा को अनन्य अधिकार है और इसमें लार्डसभा का भी कोई भाग नहीं है। १९११ के संसद् अधिनियम से लार्डसभा का धन-विधेयकों को संशोधित करने का अधिकार औपचारिक रूप में छिन गया है।

धन के विषय में लोकसभा को चार मुख्य काम करने पड़ते हैं। सर्वप्रथम, उसे सरकारी विभागों द्वारा तैयार किये हुए प्राक्कलनों (Estimates) की जांच करनी पड़ती है और प्रत्येक अनुदान को पृथक पृथक पारित करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में वह सरकार को धन देती है तथा उन्हें विविध विभागों में बांटती है। दूसरी बात यह है कि उसे इस काम के लिये धन प्राप्त करने के साधनों पर विचार करना पड़ता है और यह भी निर्णय करना होता है कि क्या नये नये कर लगाये जायें तथा किन पुराने करों को घटाया या बढ़ाया जाये। तीसरी बात, उसे यह भी देखना पड़ता है कि उसने जो रुपया मजूर किया था वह कैसे खर्च किया गया है। अन्त में उसे यह भी देखना होता है कि खर्च करने वाले विभागों के हिसाबों की परीक्षा ठीक प्रकार होनी चाहिये। अंतिम दो कामों को करने में वह राष्ट्र की समूची आर्थिक स्थिति को देख लेती है। हम अब यह देखेंगे कि ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काम कैसे किये जाते हैं।

अभी हमें यह देखने की आवश्यकता नहीं है कि खर्च करने वाले विविध विभाग प्राक्कलनों (Estimates) को कैसे तैयार करते हैं। हम समझ लेते हैं कि यह काम तो हो गया। यही कहना पर्याप्त है कि अक्तूबर से ही सारे सरकारी विभाग खजाने को प्राक्कलनें भेजकर उससे बातचीत में लग जाते हैं। विभाग यह विचार करते हैं कि गत वर्ष उन्होंने कितना धन खर्च किया था और सरकारी नीति में परिवर्तन के कारण या जनसंख्या बढ़ने आदि के प्राकृतिक कारणों से अगले वर्ष के आंकड़ों में क्या परिवर्तन होगा। नये खर्च के सुझावों पर खजाने का अनुमोदन आवश्यक है। जिस मद पर खजाना आपत्ति करे उसे बढ़ाया नहीं जा सकता। खजाने द्वारा स्वीकृत रूप में इन प्राक्कलनों (Estimates) का जोड़ और संचित निधि सेवाओं (Consolidated Fund Services) के लिये आवश्यक राशियां— ये ही कुल व्यय हैं जिन्हें पूरा करने के लिये राजस्व (Revenue) उगाहना पड़ेगा। यह ध्यान रखना चाहिये कि कुछ मदों को जैसे राष्ट्रीय ऋण,

सिविल लिस्ट (राज परिवार का व्यय), न्यायाधीशों के वेतन और पेन्शनें, संसदीय निर्वाचनों का व्यय और संचित निधि पर अन्य भार (Charges), आदि को वार्षिक प्राक्कलनों में समाविष्ट नहीं किया जाता; उन्हें अलग दिखाया जाता है और उन पर संसद् में प्रति वर्ष मतदान नहीं होता। इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसा व्यय संसद् के नियंत्रण से परे है और वह उसमें हेर फेर नहीं कर सकती। वह भी संसद् के अधिनियमों (Acts) द्वारा ही प्राधिकृत होता है, और इस लिये आवश्यकता पड़ने पर वह उसमें परिवर्तन कर सकती है; किन्तु उसे अन्य व्यय की मदों के समान वार्षिक मंजूरी के लिये संसद् में पेश नहीं किया जाता। संसद् के मतदान से मुक्त व्यय कुल राष्ट्रीय व्यय का एक तिहाई भाग होता है। एक और बात भी याद रखनी चाहिये। समस्त प्राक्कलनों के तैयार होने और खजाने में भेजे जाने के पश्चात् भी, कभी कभी चांसलर ऑफ एक्सचेकर आगामी वर्ष की प्राक्कलित आय को ध्यान में रखते हुए खर्च में व्यापक कटौती की मॉग कर सकता है। सोच विचार के पश्चात् वह अपनी सिफारिशें केबिनेट में पेश करता है जो पूरे विचार विमर्श के पश्चात् उसे अधिकार दे देता है कि वह संसद् के समक्ष प्राक्कलनों को पेश करते समय ऐसे परिवर्तन कर सकता है जो आपस में तय हो जायें। इस प्रकार प्राक्कलनों का अन्तिम उत्तरदायित्व केबिनेट पर होता है, और चांसलर ऑफ ऐक्सचेकर पर नहीं होता। लोकसभा के समक्ष जब वे पेश होते हैं तो सरकार की ओर से ही पेश होते हैं।

यह लोकसभा का एक स्थायी आदेश है तथा ब्रिटिश वित्तीय व्यवस्था का मूल सिद्धान्त है कि सब अनुदानों की मांगें, और सार्वजनिक राजस्व पर भार के लिये प्रस्ताव (तथा समस्त करारोपण के सुझाव) सरकार की ओर से ही आने चाहिये। कोई ग़ैर-सरकारी सदस्य व्यय की नई मद की प्रस्थापना नहीं कर सकता, किसी शीर्षक में व्यय को बढ़ा नहीं सकता और किसी मांग के आशय में भी कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। वह तो केवल इतना ही कर सकता है कि सरकार को सुझाव मात्र दे दे कि किसी विशेष कार्य के लिये धन की व्यवस्था की जाये, अथवा किसी मद के अनुदान को बढ़ा दे। सरकार की इच्छा है कि उसके सुझाव पर ध्यान दे या न दे और प्रायः वह ध्यान नहीं देती। चाहे ग़ैर-सरकारी सदस्य किसी मद को बढ़ाने का प्रस्ताव नहीं कर सकता अथवा नई मांग की प्रस्थापना नहीं रख सकता, किन्तु समूची सभा को यह अधिकार है कि वह सरकार की किसी मांग को कम कर सकती है या बिल्कुल इनकार कर सकती है। सिद्धान्त के अनुसार तो लोकसभा की शक्ति इसी बात में है कि वह धन देने से इनकार करके किसी मंत्री या सरकार को त्यागपत्र देने के लिये बाध्य कर सकती है। किन्तु दल का संगठन ऐसे काम करता है कि उसने धन देने से इनकार करने के इस अधिकार को भी

नाममात्र का ही बना दिया है। केबिनेट का लोकसभा में बहुमत होता है। अतः यदि सभा किसी अनुदान को कम करना या इनकार करना चाहे तो केबिनेट उस प्रस्थापना को अस्वीकार कर सकती है। व्यवहार में, व्यय पर सभा का नियंत्रण प्रभावी नहीं है। इसके कई कारण हैं जो आगे चलकर स्पष्ट हो जायेंगे।

जनवरी के अन्त मे अथवा फरवरी के आरम्भ में जब चांसलर ऑफ एक्सचेकर अपने प्राक्कलनों को पेश कर चुकता है तब पूर्वनिश्चित दिवस पर सभा उन पर विचार करने के लिये समूची सभा की समिति का रूप धारण कर लेती है जिसे प्रायः सप्लाई की समिति कहते हैं। उनके परीक्षण और उन पर मतदान लिये सारे सत्र में २० दिन ही दिये जाते हैं। सप्लाई की समिति द्वारा पारित प्रस्ताव सभा को भेज दिये जाते हैं जिनके आधार पर विनियोग अधिनियम (Appropriation Act) तैयार होता है। इस अधिनियम मे सविस्तार यह उल्लेख होता है कि वित्तीय वर्ष में प्रत्येक विभाग विभिन्न प्रयोजनों के लिये कितना कितना धन व्यय कर सकता है।

सप्लाई की समिति मे, (इसे कई वार हाउस-इन-सप्लाई भी कह देते हैं) सरकार द्वारा पेश की गई अनुदानों (grants) की मांगो (demands) पर जो वाद-विवाद होता है उसके दो उद्देश्य हो सकते हैं। एक तो यह प्रयोजन हो सकता है कि समस्त प्रशासन पर दृष्टि डाली जाये और निश्चित किया जाये कि वह कार्यक्षमता के साथ तथा मितव्ययता (Economy) के साथ काम कर रहा है अथवा नहीं। दूसरे शब्दों मे, इस अवसर से लाभ उठाकर प्रशासन पर नियंत्रण किया जा सकता है और उसमे मितव्ययता का प्रवेश किया जा सकता है। किन्तु यह उद्देश्य पूरा होना अत्यन्त कठिन हो जाता है क्योंकि वाद-विवाद के लिये बहुत कम समय मिलता है— केवल २० दिन, बहस में व्यापक भावना भी दूसरी होती है, और सबसे बड़ी बात यह है कि विविध विभागों के हिसाब-किताब रखने का तरीका तथा उनके प्राक्कलनों को तैयार करने का तरीका ऐसा होता है कि उक्त उद्देश्य पूरा होना कठिन हो जा ता है। प्रशासन का अन्तिम उत्तरदायित्व केबिनेट का होता है, अतः जब सभा प्रशासन पर नियंत्रण करना चाहती है तो केबिनेट अपने बहुमत की सहायता से उसका विरोध करती है। खज़ाने के एक स्थायी सचिव ने स्वीकार किया था कि 'विविध सरकारी सेवाओं को उचित व्यय पर कुशलता से चलाने के अर्थ मे व्यय पर नियंत्रण करने का उद्देश्य वे (संसदीय अनुदानों की योजना के निर्माता) अपने सामने नहीं रखते।'* विरोधी दल आय-व्ययक (Budget) के वाद-विवादों से लाभ उठाकर सरकारी नीति का विस्तार से सिंहावलोकन तथा उसकी व्यापक आलोचना करता है और शिकायतें पेश करता है,

---

*रैमजे म्योर के *How Britain is Governed*, page 227 पर उद्धृत।

इन बातों को ही उनका मुख्य उद्देश्य समझा जा सकता है। यदि किसी विद्यार्थी ने हमारे अपने देश की संसद के आयव्ययक (Budget) सम्बन्धी वाद-विवाद को पढ़ा हो तो उसकी समझ मे सुगमता से आ जायेगा कि ग्रेट ब्रिटेन मे क्या होता है। जो सदस्य किसी मंत्री के वेतन मे कटौती का प्रस्ताव करता है उसका उद्देश्य वास्तव मे बचत करना या कार्य-कुशलता को बढ़ाना नहीं होता, वह तो उस प्रस्ताव को मंत्री की नीति की आलोचना करने के लिये आधार बनाना है। 'वे प्रस्ताव रखेंगे कि औपनिवेशिक सचिव का वेतन १०० पाउण्ड कम कर दिया जाये और केन्या (Kenya) मे जिस नीति का अनुसरण हो रहा है उसकी आलोचना करेंगे; वे औपनिवेशिक कार्यालय के कार्यों पर विचार नहीं करेंगे।'† ऐसे वाद-विवादों से भी लाभ होता है, उनसे पता लग जाता है कि सरकार और विरोधी दल में क्या अन्तर है, और सरकार को अपनी नीति की व्याख्या करनी तथा सफाई देनी पड़ती है। विरोधी दल को यह तो पता होता ही है कि मतदान में वह अवश्य हार जायेगा; फिर भी वाद-विवाद होता है, क्योकि असल मे वाद-विवाद का महत्त्व मतदान से भी अधिक है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि विरोधी दल आलोचना करता है किन्तु सरकार के विरुद्ध मतदान नहीं करता।

यदि आयव्ययक के वाद-विवाद का प्रयोजन बचत करना हो, प्रशासन की कार्यक्षमता को बढ़ाना हो और उसे संसद के प्रभावी नियंत्रण मे लाना हो, तो प्राक्कलनों (Estimates) तथा हिसाब को भिन्न तरीके से ही तैयार करना होगा तथा सप्लाई समिति की रचना मे परिवर्तन करना पड़ेगा। समिति में से उतनी ही उप-समितियां बन जायेगी जितने कि प्रशासन विभाग हैं और प्रत्येक उप-समिति एक ही विभाग के प्राक्कलनों पर विचार करेगी। समूची सभा की समिति, जो पूरे सत्र (Session) में २० दिन के लिये बैठती है, इस प्रयोजन के लिये ठीक साधन नहीं है।

प्राक्कलनों पर विचार करने के साथ ही साथ सभा को व्यय के लिये पर्याप्त राजस्व (Revenue) उगाहने के सरकारी सुझावों पर भी विचार करना होता है। और जैसे खजाने (Treasury) का यह कर्त्तव्य है कि वह विभिन्न व्ययकर्त्ता (Spending) विभागों द्वारा भेजे गये प्राक्कलनों (Estimates) के आधार पर कुल व्यय का प्राक्कलन तय्यार करे, उसी प्रकार उसका यह भी काम है कि वह आगामी वर्ष की सम्भावित आय का भी प्राक्कलन तैयार करे। अपितु खजाना राजस्व के प्राक्कलनों के लिये अधिक प्रत्यक्ष रूप मे तथा पूर्णतया उत्तरदायी है, जितना वह व्यय के लिये नहीं है, क्योंकि व्ययकर्त्ता विभाग उसके अंतर्गत नहीं होते किन्तु राजस्व विभाग होते हैं। जब चांसलर ऑफ एक्सचेकर सब भागों के पूरा करने

† Ramsay Muir. *Ibid*, page 229.

के लिये पर्याप्त राजस्व उगाहने की अपनी योजनाओं को तैयार कर चुकता है जिससे कि वे नये कर लगाकर तथा मंत्रिमंडल की नीति के अनुसार पुराने करों में अदल बदल करके लगभग एक संतुलित आयव्ययक पेश कर सकें, तब वह 'वेज एण्ड मीन्स की समिति' के रूप में समवेत सभा में अपना आयव्ययक एक लम्बे भाषण के साथ प्रस्तुत करता है। सभा में जो भाषण होते हैं उनमें सबसे बड़ा यही भाषण होता है। यह भाषण सदा दिलचस्प होता है तथा कभी कभी आश्चर्योत्पादक भी होता है, विशेषत जबकि वित्त (Finance) सम्बन्धी निश्चित परम्पराओं में परिवर्तन की घोषणा की जाती है। इसमें केवल आगामी वित्त वर्ष के लिये सरकारी योजनाओं का उद्घाटन ही नहीं होता, वरन् पिछले वर्ष के आय तथा व्यय, घाटे तथा नफे का भी सिंहावलोकन होता है। इसमें बताया जाता है कि प्राक्कलित आय (Estimated Income) में अन्तर क्यों पड़ा है, और कभी कभी इसमें राष्ट्रीय वैभव पर संक्षिप्त टिप्पणी भी होती है।

'आयव्ययक भाषण' के कुछ दिन पश्चात् सभा 'वेज एंड मीन्स की समिति' के रूप में समवेत होती है तथा सरकार की विभिन्न करारोपण प्रस्थापनाओं (Taxation proposals) पर बहस करती है। जैसे कोई ग़ैर-सरकारी सदस्य किसी विनियोग (Appropriation) को बढ़ा नहीं सकता तथा नये का सुझाव नहीं दे सकता, इसी प्रकार स्थायी नियमों के आधीन उसे यह अधिकार नहीं है कि नये कर की प्रस्थापना रखे अथवा सरकार द्वारा प्रस्थापित कर की दर को बढ़ाये। कर लगाने के सब सुझाव सरकार की ही ओर से आने चाहियें। सभा केवल यही कर सकती है कि वह सरकारी सुझावों को स्वीकार कर ले, कम कर दे या ठुकरा दे। यद्यपि सरकार प्राय अपने बहुमत की सहायता से सभा में अपने सुझावों को मनवा लेती है, फिर भी कभी कभी उसे सभा की इच्छाओं का आदर करके उसमें सुझाये गये परिवर्तनों को मानना पड़ता है। रैमजे म्योर का कथन है कि लोकसभा करों पर नियन्त्रण अवश्य करती है किन्तु उसी सीमा तक जिस तक कि केबिनेट उसे ऐसा करने देती है। कई बार सभा ने बुरे तथा अलोकप्रिय करों को वापस लेने के लिये केबिनेट को बाध्य भी किया है। वेज एण्ड मीन्स की समिति द्वारा स्वीकृत तथा लोकसभा में भेजे गये प्रस्तावों के ही आधार पर वित्त विधेयक (Finance Bill) तैयार किया जाता है। उसमें यह निश्चित होता है कि आगामी वित्तीय वर्ष में, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष कर कौन से लगाये जायें, और उन्हें किस दर पर उगाहा जाये, और उसमें राजस्व के नये साधनों का भी उल्लेख होता है। जैसे कि समस्त विनियोगों को संसद में प्रति वर्ष पारित करना आवश्यक नहीं होता, उसी प्रकार समस्त लागू करों को प्रति वर्ष प्राधिकृत करना अपेक्षित नहीं है। मृत्यु शुल्क (Death duties), मुद्रांक शुल्क (Stamp duties) और कुछ सीमान्त शुल्क

(Customs duties) स्थायी अधिनियमों पर आधारित हैं और वर्ष प्रतिवर्ष लागू रहते हैं, जब तक कि नये अधिनियम द्वारा उनमें परिवर्तन न किया जाये।

ये दो महान् अधिनियम (Acts), विनियोग अधिनियम तथा वित्त अधिनियम, जो क्रमशः 'सप्लाई की समिति' तथा 'वेज़ एंड मीन्स की समिति' द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों पर आधारित होते हैं, लोकसभा में सब स्थितियों में से गुजरने तथा उसमें पारित होने के पश्चात् लार्डसभा में भेजे जाते हैं। लार्डसभा को उन पर विचार करने का तो अधिकार है किन्तु उनमें संशोधन या परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। चाहे लार्डसभा उन्हें स्वीकार करे या न करे, वे राजा के पास अनुमति के लिये भेज दिये जाते हैं तथा उसकी अनुमति मिलने पर विधि बन जाते हैं।

हमारे अपने देश में वार्षिक आयव्ययक केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधानमंडलों में जनवरी अथवा फरवरी में पेश कर दिये जाते हैं और पहली अप्रैल को नया वित्तीय वर्ष आरम्भ होने से पहले पारित कर दिये जाते हैं। इस प्रकार सरकार को कर उगाहने तथा धन व्यय करने का अधिकार विधि द्वारा मिल जाता है।* किन्तु ग्रेट ब्रिटेन में प्राक्कलनों तथा राजस्व की प्रस्थापनाओं पर विचार नये वित्ती वर्ष के आरम्भ होने से पहले कभी समाप्त नहीं होता; स्थायी आदेश १५ के अनुसार यह आवश्यक है कि प्राक्कलनों पर विचार ५ अगस्त से पूर्व समाप्त हो जाना चाहिये। किन्तु शासन कार्य तो चलाना ही पड़ता है। इस कारण सभा सब से पहले विभिन्न लेखानुदान (Votes on account) पारित करके सरकार को अस्थायी अधिकार दे देती है कि वह सञ्चित निधि (Consolidated Fund) से उतनी राशि निकाल ले जिससे कि आयव्ययक के पारित होने तक उसका काम चल सके। समस्त लेखानुदान एक विधेयक में एकत्र कर दिये जाते हैं जो सत्र के आरम्भ में पारित कर दिया जाता है।

**वित्तीय व्यवस्था की विशेषतायें :** अब पाठक का ध्यान ब्रिटिश आयव्ययक व्यवस्था की कुछ विशेषताओं की ओर आकृष्ट करना अभीष्ट प्रतीत होता है। उसका बड़ा गुण यह है कि समस्त वित्तीय कार्यक्रम एक इकाई के रूप में तैयार किया गया है, जिसका पूरा उत्तरदायित्व अकेले केबिनेट पर है। व्यवस्था की इस एकता के कई कारण हैं। आयव्ययक के दोनों भागों— विनियोग प्राक्कलनों और राजस्व प्राक्कलनों— का अन्तिम उत्तरदायित्व चांसलर ऑफ एक्सचेकर पर होता है जो उन दोनों का समन्वय करके एक आर्थिक योजना बनाता है। फिर दोनों भागों पर

* १९५१ के आयव्ययक से भारतीय संसद ने भी ब्रिटिश प्रणाली को अपना लिया है। अतः अब यहाँ भी 'लेखानुदान' (Votes on account) पारित किये जाते हैं।

क ही प्राधिकारी-लोकसभा विचार करती है और वह दो विभिन्न नामों से समूची भा की समिति के रूप में बैठती है। आयव्ययक की अपेक्षित एकता को बनाये खने के लिये यह मूल सिद्धान्त लागू है कि अनुदानों (Grants) की सब मांगें और राजस्व उगाहने की सब प्रस्थापनाएं सरकार की ओर से ही पेश होनी चाहियें था सरकार की सहमति के बिना आयव्ययक में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं केया जा सकता। ब्रिटिश संसद् के लिये यह सभव नहीं है कि वह आयव्ययक मे आमूलचूल परिवर्तन कर दे और उसका रूप ही वैसा न छोड़े जैसा कि कार्यपालिका ने निर्धारित किया था। फ्रांसीसी संसद् तथा संयुक्त राज्य कांग्रेस ऐसा कर सकती हैं। जिन मंत्रियों के वित्तीय कार्य-क्रम पर संसद् मे विचार हो रहा होता है वे उसकी व्याख्या करने और सफाई देने के लिये सदा वहां उपस्थित रहते हैं। उसका भी यही परिणाम होता है। संयुक्त राज्य अमरीका में भी यह मांग हो रही है कि कांग्रेस की वित्तीय प्रक्रिया बहुत कुछ ब्रिटिश योजना के सन्निकट आ जाये जिसका अनुकरण संसार के कई देशों ने किया है तथा उसके प्रशंसकों ने जिसे आदर्श माना है। किन्तु उसमें भी दोष हैं। उसकी सुसंगठितता तथा एकता का कारण बहुत कुछ हद तक यह है कि लोकसभा ने वित्त के विषय में अपना नियंत्रण बहुत अंश तक केबिनेट को सौंप दिया है; थैली (Purse) पर उसका अधिकार अब रस्म ही बन गई है, वास्तविकता नहीं रही है। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि विनियोगों पर बहस का उद्देश्य बचत करना या प्रशासन की कार्य-क्षमता को बढ़ाना नहीं होता; वाद-विवाद वित्तीय प्रस्थापनाओं (Financial Proposals) के गुणावगुण पर नहीं होता, अपितु सरकार की नीति की सामान्य आलोचना का रूप धारण कर लेता है। इसका अर्थ यह है कि अपव्यय को रोकने का उत्तरदायित्व कार्यपालिका पर आ पड़ता है, विधान-मंडल पर नहीं। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि करोड़ों पाउंड के विनियोग प्राक्कलनों पर विचार करने के लिये केवल २० दिन का समय भी अपर्याप्त है। अंतिम दिन बड़ी बड़ी धनराशियों पर विचार किये बिना ही मतदान हो जाता है। व्यय पर नियंत्रण के विषय में जॉच करने के लिये जो समिति नियुक्त हुई थी उसने ब्रिटिश पद्धति की इस महान त्रुटि के विषय में लिखा था, "गत २५ वर्षों का ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जब कि लोकसभा ने, अपनी सीधी कार्यवाही द्वारा, किसी पेश किये हुए प्राक्कलन को, वित्तीय आधार पर घटा दिया हो। ... व्यय की प्रस्थापनाओं के सीधे प्रभावी नियंत्रण का जहां तक सम्बन्ध है, यह कहना ठीक है कि यदि प्राक्कलन कभी पेश नहीं किये जाते और सप्लाई समिति का कभी निर्माण नहीं होता तो भी कोई विशेष अन्तर नहीं पढ़ता।"*

* Ramsay Muir, *Ibid*, page 229 पर उद्धृत।

इस पद्धति मे सुधार की आवश्यकता बहुत समय से अनुभव की जाती रही है, और एक दो बार विशिष्ट समितियाँ भी नियुक्त की गईं थीं जो इन सुधारों के विषय में अपने सुझाव देने के लिये बनी थीं। किन्तु उनके प्रयत्नों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और अब भी पहले जैसी ही स्थिति है। एक अत्यन्त युक्तियुक्त प्रस्थापना को भी स्वीकार नहीं किया गया जिसका आशय यह था कि गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्थापित कटौतियों को मंत्रिमंडल मे अविश्वास का प्रस्ताव न समझा जाये तथा उनके गुणावगुण पर विचार किया जाये।

**धन के व्यय पर संसदीय नियंत्रण**— संसद का काम विनियोग अधिनियम तथा वित्त अधिनियम पारित करके ही समाप्त नहीं हो जाता। उसे यह भी देखना होता है कि खजाना विविध अधिनियमों के अन्तर्गत जो राशियाँ प्राप्त करे उन्हें वह उन्हीं प्रयोजनों के लिये खर्च करे जो ससद ने स्वीकार किये हैं। यह उद्देश्य निम्न उपाय से पूरा होता है। सब राष्ट्रीय राजस्व चाहे वे वित्त अधिनियम के अधीन उगाहे जायें, चाहे स्थायी अधिनियमों के अधीन उगाहे जायें, बैंक आफ इङ्गलैंड में संचित निधि (Consolidated Fund) में जमा करवा दिये जाते हैं। उसमें से केवल प्राधिकृत अभिकरण (Authorised Agencies) ही धन निकाल सकते हैं और वे भी केवल प्राधिकृत प्रयोजनो के लिये ही निकाल सकते हैं। विनियोग अधिनियम के ही अधिकार से खजाना या पेमास्टर जनरल धन निकाल सकता है। पेमास्टर जनरल को कोई धन देने से पहले उसका अनुमोदन नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor General) द्वारा होना चाहिये। इस उच्च पदाधिकारी का कर्तव्य यह देखना है कि धन के हस्तांतरण तथा प्रयोग विषयक सब नियमों का, जो बहुत उलझे हुए होते हैं, समुचित रूप से पालन होना चाहिये। वह प्रतिवर्ष संसद को एक लेखा-परीक्षा अपनी रिपोर्ट के साथ भेजता है जिसमें यह दिखाया जाता है कि संसद द्वारा पारित राशियाँ उल्लिखित प्रयोजनों के लिये ही व्यय की गई हैं, अथवा नहीं। रिपोर्ट पेश करने से पहले उसका समाधान हो जाना चाहिये कि उसने जो रुपया देना मंजूर किया था वह संसद की इच्छा के अनुरूप ही था और वह उसी चीज पर खर्च हुआ है जो विनियोग मे है। उसे अपनी रिपोर्ट तय्यार करने में दो वर्ष लगते हैं। उसकी रिपोर्ट संसद मे पेश होती है तथा लेखा समिति (Account Committee) उस पर विचार करती है।

**सभा वाद-विवाद का स्थान है**— लोकसभा का काम केवल विधि-निर्माण तथा वित्त पर नियंत्रण ही नहीं है। वह अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य भी करती है। 'पार्लियामेंट' (संसद) शब्द का अर्थ वार्तालाप अथवा वाद-विवाद का स्थान है। अतएव वाद-विवाद तथा बहस संसद का आवश्यक और महत्त्वपूर्ण कार्य है। एक प्रकार से तो यह काम विधि-निर्माण तथा वित्तीय नियंत्रण से भी अधिक महत्त्वपूर्ण

है क्योकि इन दोनो क्षेत्रों मे तो सारा उत्तरदायित्व तथा शक्ति केबिनेट के हाथ में चली गई है, किन्तु सभा को अब भी सरकार की प्रत्येक कार्यवाही पर विचार तथा वाद-विवाद करने का अधिकार शेष है। इस कार्य को ससद बहुत कुशलता से पूरा करती है।

सभा के पास बहस छेड़ देने के बहुत अवसर हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, विनियोग तथा राजस्व संबन्धी सरकारी प्रस्तावो के अवसर पर सरकारी नीतियो की व्यापक आलोचना होती है। कभी रात को सदन मे 'स्थगन प्रस्ताव' या 'काम रोको' (Adjournment Motion) द्वारा आवश्यक सार्वजनिक महत्त्व के प्रश्न पर बहस आरम्भ की जा सकती है। मंगलवार या बुधवार को सायकाल का समय सरकार को नहीं चाहिये तो कोई सदस्य उस समय कोई सकल्प (Resolution) पेश करने के लिये नाम भेज सकता है। सत्र (Session) के आरम्भ मे राजा के भाषण पर जो एड्रेस पेश होता है उसमे वह सशोधन पेश कर सकता है। यदि वाद-विवाद और बहस के लिये संसद में पर्याप्त अवसर उपलब्ध नहीं होते तो निसदेह वहाँ पर रोचकता भी न होती।

संसद के वाद-विवादो से भी एक लाभदायक प्रयोजन सिद्ध होता है। ग्रेट ब्रिटेन जैसे देश मे वाद-विवाद ही लोकतंत्र के प्राण हैं। ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि यदि ससद मे वाद-विवाद की स्वतंत्रता नहीं होती तो उस देश में लोकतत्र जीवित नहीं रह सकता था। संसद के वाद-विवाद से सरकार अपनी नीति को जनता के समक्ष रखने के लिये बाध्य हो जाती है, उनके कारण ही सरकार को अपनी नीतियो की व्याख्या करने तथा सफ़ाई देने का अवसर मिल जाता है। जब प्रत्येक सरकार को पता होता है कि उसे अपने प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य के विषय मे जनता के समक्ष सफ़ाई देनी होगी तो इससे उसकी नीति पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। उनका प्रभाव यहीं समाप्त नहीं होता, उन वाद-विवादों का प्रभाव ससद के बाहर जनमत पर भी पड़ता है। 'उनके विषय मे सहस्त्रो लेखो तथा सहस्त्रो भाषणों मे जो कुछ कहा जाता है या लिखा जाता है उसी को पढ़ कर मतदाता अपना निर्णय करते हैं।' *

विदेशी तथा साम्राज्य सबन्धी मामलो के विषय मे जो वाद-विवाद होते हैं वे अन्य वाद-विवादों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इन क्षेत्रों मे सभा विधि-निर्माण अथवा प्राक्कलनों द्वारा ऐसा नियन्त्रण नहीं कर सकती जैसा कि वह आंतरिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं विषयक विभागो के विषय मे कर सकती है। उनका सम्बन्ध सामयिक समस्याओं तथा नीति विषयक प्रश्नो से है। यह स्मरण रखना चाहिये कि इन समस्याओं पर लार्ड सभा के वाद-विवाद भी इतने ही ध्यान

* Laski *Parliamentary Government in England*, page 156.

के योग्य है जितने कि लोकसभा के वाद-विवाद है। वित्त पर नियंत्रण चाहे प्रथम सदन का ही अनन्य विशेषाधिकार हो, पर विचार तथा आलोचना के विषय में यह बात नहीं है।

**सभा परीक्षण-क्षेत्र**— सिडनी लो ने लोकसभा के एक और कार्य का उल्लेख किया है जो विधि द्वारा मान्य नहीं है, किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा रोचक है। सभा ऐसा 'क्षेत्र है जहाँ लोगों की व्यावहारिक नीति-कुशलता का परीक्षण होता है, उन्हें चुना और पसन्द किया जाता है।' इस काम को समझने के लिये हमें लोकसभा की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से तुलना करनी चाहिये। सब प्रकार के व्यक्ति तथा सब प्रकार की बुद्धिमत्ता एवं योग्यता के व्यक्ति कांग्रेस में आते हैं, किन्तु उनमें से सब ही समान रूप से शक्ति और प्रभाव का स्थान प्राप्त नहीं कर पाते। जो विशेष चरित्र-बल तथा बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करते हैं वे नाम पा जाते हैं— सर्वप्रथम नगर या जिला क्षेत्र में और बाद में प्रांतीय क्षेत्र में भी। यदि उनमें अपेक्षित योग्यता और क्षमता हो तो वे अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त करके राष्ट्र के नेता भी बन सकते हैं। कांग्रेस में एक क्रिया चलती रहती है जिससे कि नेतृत्व के गुणों वाले व्यक्ति ऊपर चढ़ जाते हैं तथा छोटे व्यक्ति नीचे ढकेल दिये जाते हैं। इसी प्रकार लोकसभा भी ऐसा क्षेत्र है जहां लोगों को नेतृत्व का प्रशिक्षण मिलता है तथा परीक्षण होता है। ऐसा ख्यातिप्राप्त शायद ही कोई भारतीय नेता होगा जिसने राष्ट्रीय कांग्रेस में नाम न कमाया हो। इसी प्रकार कोई महान् अंग्रेज राजनीतिज्ञ तथा नेता नहीं है जो लोकसभा में प्रसिद्धि और शक्ति न प्राप्त कर चुका हो। लोकसभा का प्रांगण एक रणक्षेत्र है जहां कोई भी व्यक्ति अपना बल आजमा सकता है तथा पुरस्कार पा सकता है।

हाँ, जिन योग्यताओं के कारण कोई व्यक्ति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में नाम पा सकता है, उन्हीं के आधार पर वह लोकसभा में नहीं चमक सकता; परिस्थितियों और राष्ट्रीय स्वभाव के अंतर के कारण कुछ अंतर होगा ही। किंतु यह कहा जा सकता है कि दृढ़ चरित्र और सबल व्यक्तित्व की हर स्थान पर आवश्यकता होती है। केवल भाषण देने और वाद-विवाद करने की योग्यता ही पर्याप्त नहीं है, सभा किसी प्रवीण वक्ता की बजाय, जो अपना नाम जनता में चमकाने की इच्छा से ही बोलता है, ऐसे साधारण वक्ता की बात सुनना अधिक पसंद करेगी जो ऐसी बात कहता है जिसे वह महत्त्वपूर्ण समझता है और जिसके विषय में उसकी भावना प्रबल है। कोई चतुर व्यक्ति जो बहस में विजय प्राप्त करना चाहता है चमक नहीं पाता। अधिक महत्त्वपूर्ण गुण यह है कि वक्ता विश्वास की वह भावना उत्पन्न करे जो दलीय विभाजनों से ऊपर होती है। ऐसे गुण बहुत कम लोगों में होते हैं, और वे ही केबिनेट मंत्री तथा प्रधान मंत्री पद को प्राप्त करते हैं।

सर जॉन सीली ने लोकसभा को सरकार-निर्माता बताया है। प्रोफेसर लास्की का भी यही विचार है कि सभा का मुख्य कार्य 'सरकार का निर्माण करना है जिसे वह तब तक पद पर रखती है जब तक कि उसे उस पर विश्वास बना रहे।' सभा को सरकार-निर्माता निकाय बताना भी सर्वथा ठीक नहीं है ; वास्तव में देखा जाये तो वह सरकार का निर्माण नहीं करती। उसे किसी सरकार को पद से हटाने की शक्ति है किन्तु वह उस शक्ति का प्रयोग नहीं करती। लास्की का कथन अधिक ठीक है ; इस समय द्विदल पद्धति के अन्तर्गत सभा एक सरकार को शक्ति में रखती है और सब कार्य उसे ही सौंप देती है। किन्तु चाहे लोकसभा के वर्तमान कार्य का यह कैसा ही अच्छा वर्णन हो, पर इसका यह अर्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता कि सभा का यही कार्य होना चाहिये। सभा को, रैमजे म्योर के शब्दों में, मुख्यतः एक अभिकरण (Agency) मानना चाहिये जो राष्ट्र की ओर से सरकार पर नियंत्रण रखता है। हाँ, यह विचार विमर्श करने वाला सदन भी है जहाँ राष्ट्रीय नीतियों पर विचार किया जाता है तथा विनिश्चय किये जाते हैं। यह शिकायती सदन भी है जहाँ कठिनाइयों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यह राष्ट्र की ओर से सरकार पर नियंत्रण रखने के लिये अभिकरण नहीं है या नहीं होना चाहिये। वह उस नियंत्रण को ठीक प्रकार नहीं रख पाती, केवल इसी आधार पर इस कथन को ग़लत नहीं बताया जा सकता।

**प्रशासनात्मक विधान (Administrative legislation)** . लोकसभा की शक्तियों तथा उसके विधि-निर्माण संबंधी और वित्तीय प्रक्रिया संबंधी विवरण के साथ साथ कुछ शब्द 'प्रशासनात्मक विधान' के विषय में भी कहना आवश्यक हैं। यह परंपरा यूरोप में आरंभ हुई थी किन्तु अब वह शीघ्रता से ग्रेट ब्रिटेन में भी बढ़ती जा रही है। आधुनिक समाज में इतनी उलझनें हैं कि उसका विकास अनिवार्य है। यह बहुत कठिन बात हो गई है कि कोई विधान-मंडल, चाहे वह कितना भी दक्ष क्यों न हो, इतना समय पा सके कि वह परिस्थितियों के अनुकूल सब विस्तृत विधान बना सके। कुछ ऐसे उलझे हुए तथा टेक्नीकल मामले भी हैं जिन पर अनुभवी प्रशासक ही विवेकपूर्वक निर्णय कर सकते हैं। अतः विधियों को सामान्य भाषा में रखने का तथा उनके स्पष्टीकरण का कार्य प्रशासकीय प्राधिकारियों पर छोड़ देने की प्रवृत्ति अधिकाधिक बढ़ती जा रही है। संसद् प्रशासकीय विभागों को जो शक्ति दे देती है कि वे किसी अधिनियम के प्रयोजनों से संगत कोई नियम बना सकते हैं जो उस अधिनियम की किसी धारा के अधीन होते हैं, इसे *प्रशासनात्मक विधान* कहते हैं। इस प्रकार की शक्ति देने वाले अधिनियमों की संख्या, जिन्हें संसद् पारित करती है, शीघ्रता से बढ़ती जा रही है। एक वर्ष विशेष में १०२ अधिनियमों में से २६ में ऐसे खंड थे जिनके द्वारा ऐसी

शक्ति कई विभागों को दी गई थी। निर्धन-सहायता, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कारखानों का निरीक्षण, यातायात तथा शिक्षा ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें इस प्रकार के विधान का काफी प्रयोग होता है।

इस शक्ति के प्रयोग पर कुछ सीमाएं भी हैं। किसी अधिनियम के अधीन निकाला गया कोई आदेश उस अधिनियम के क्षेत्र से परे नहीं जा सकता तथा उसके उद्देश्यों से असंगत नहीं होना चाहिये। किन्तु विभाग कभी कभी अपने निकाले हुए आदेशों के औचित्य को सिद्ध करने के लिये अधिनियम के खंडों को तोड़ मरोड़ लेते हैं तथा खंडों का अर्थ-विस्तार कर लेते हैं। विभाग द्वारा इस शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिये दो रक्षण-कवच रखे गये हैं। पहली बात तो यह है कि सब आदेशों और विनियमों को एक निर्धारित अवधि के लिये सभा की मेज पर रखा जाता है। सब सदस्यों को अधिकार है कि वे उन पर आपत्ति कर सकते हैं तथा बहस आरंभ कर सकते हैं। सदन उन्हें परिवर्तित अथवा समाप्त कर सकता है। इस प्रकार अब भी लोकसभा ही सर्वोच्च सत्ता है। किन्तु उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता तथा कोई आपत्ति उठाये बिना ही निर्धारित अवधि समाप्त हो जाती है। कुछ मामलों में आदेश एकदम लागू हो जाते हैं, किन्तु यदि बाद में उस पर कोई आपत्ति उठाई जाय तथा सभा उसे स्वीकार करले तो वह आदेश अवैधानिक हो जाता है। दूसरी बात यह है कि कोई न्यायालय उसे अवैधानिक ठहरा सकता है, यदि कोई व्यक्ति शिकायत ले कर उसके पास जाये तथा न्यायालय यह देखे कि उस आदेश विशेष को निकालने वाले प्राधिकारी ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया है। पहले एक स्थान पर हमने अस्थायी आदेशों (Provisional Orders) का जो निर्देश किया था वे भी प्रशासनात्मक विधान की श्रेणी में ही आते हैं।

---

अध्याय ७

# विधान-मंडल : लार्डसभा

**विषय-प्रवेश**— अब हम ब्रिटिश संसद के दूसरे सदन—लार्डसभा का अध्ययन करेंगे। यह संसार का प्राचीनतम विधायक निकाय है, वास्तव में यह लोकसभा से भी अधिक प्राचीन है, यद्यपि अब लोकसभा सम्मान, शक्ति तथा प्रभाव में लार्डसभा से अधिक बढ़ गयी है। लार्डसभा नारमन राजाओं की महापरिषद् से बनी है जो स्वयं पुरानी आंग्ल-सैक्सन विटनागमाट (Witenagemot) से बनी थी। इस प्रकार यह १००० वर्ष से भी अधिक से चल रही है और इस कालावधि

मे थोड़े से समय को छोड़ शेष समय लगातार उसका अस्तित्व रहा है। इसमे अनेक परिवर्तन किये गये हैं। एक समय ऐसा था जबकि संसद् की सब शक्तियां इसी के पास थीं और राजा सब सामयिक मामलों पर उससे ही परामर्श लेते थे ; किन्तु अब यह सभा अपने अतीत की छाया मात्र है और उसकी स्थिति गौण सदन जैसी हो गई है, यद्यपि उसके सदस्यों की संख्या पहले से बढ़ गई है। यह कहानी बहुत दिलचस्प है, किन्तु उसके विकास तथा इतिहास का सविस्तार वर्णन इस अध्याय में करना अभीष्ट न होगा। हम केवल यही देखेंगे कि उसकी विद्यमान रचना, शक्तियां तथा कार्य क्या हैं, उसका लोकसभा से क्या सम्बन्ध है, और संक्षेप मे उन सुझावों पर भी विचार करेंगे जो उसके सुधार के लिये रखे जा रहे हैं।

**इसकी रचना**—— लार्डसभा संसार का सब से बड़ा विधायी निकाय है तथा वंशपरम्परा से यही सब से अधिक चलता है। आज इसमे लोकसभा से भी अधिक सदस्य हैं, उनकी संख्या ७८० के लगभग है और घटती बढ़ती रहती है, यद्यपि दो शताब्दियों पूर्व यह ३३६ थी। इसके अधिकांश सदस्य तो केवल इसी आधार पर बने हैं कि वे पीयरों के ज्येष्ठ पुत्र हैं। इसकी यही वंशगत सदस्यता लोकतन्त्रात्मक संविधान मे एक असंगति है।

सदस्यता पिता से ज्येष्ठ पुत्र को मिलती है तथा इस पैतृक सपत्ति को त्यागने का पुत्र के पास कोई उपाय नहीं है। पुराने पीयर-वश कभी कभी ही समाप्त होते हैं तथा प्रति वर्ष नए पीयर बनते जाते हैं, लगभग दस पन्द्रह तो बन हीं जाते हैं। इसी कारण लार्डसभा की सदस्य-संख्या बढ़ती जाती है और वास्तव मे उसकी कुल सदस्य-संख्या की कोई निश्चित सीमा नहीं निर्धारित की गई है। राजा का यह परमाधिकार है कि वह अपने प्रधान मत्री की मंत्रणा से नये पीयर बनाता जाये। १६२२ से पूर्व की शताब्दी मे जिस उदारता से पीयर-पद लुटाये गये उस पर विरोध भी हुआ, तथा यह भी कहा गया कि दल को चन्दा देने वाले धनी व्यक्तियों को पद दिये जा रहे हैं। इन पदों के विषय में पड़ताल करने के लिये एक राजकीय आयोग (Royal Commission) भी नियुक्त हुआ किन्तु उसकी सिफारिशों पर अमल नहीं किया गया। किन्तु १६२५ मे एक अधिनियम बना दिया गया जिसके अनुसार कोई पद अथवा सम्मान प्राप्त करने या कराने के लिये प्रलोभन के रूप में कोई उपहार या धन देना या लेना या मांगना दुराचार घोषित कर दिया गया। इस प्रकार अब भी राजा प्रधान मत्री की मंत्रणा पर नये पीयर बना सकता है। हां, प्रधान मंत्री अपनी सिफारिश करने से पूर्व अपने केबिनेट से मंत्रणा कर लेता है। स्त्रियां अब भी वैधानिक रूप से इस सदन की सदस्या बनने के अयोग्य मानी गई हैं।

लार्ड सभा के सदस्यो को ६ वर्गो मे बांटा जा सकता है। एक वर्ग तो राजवंश के राजकुमारों का है। वे एक समय मे तीन चार से अधिक नहीं होते तथा

उनका कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं होता क्योंकि वे उसकी बैठकों में बहुत कम आते हैं तथा उसके वाद-विवाद में कभी भाग नहीं लेते। दूसरे वर्ग में यूनाइटेड किंगडम के वंशगत पीयर हैं। ये सभा में सबसे अधिक हैं और इस समय उनकी संख्या ७५० के लगभग है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, इस वर्ग की संख्या नये पीयरों के बनने से बढ़ती रहती है। इस वर्ग के इतना बढ़ जाने का भी यही कारण है कि गत सौ वर्षों में उदारता से पीयर पद प्रदान किये गये थे। ये सब पीयर वंशगत हैं। तीसरे सदस्य-वर्ग में स्कॉटलैंड के प्रतिनिधि पीयर होते हैं। ये संख्या में १६ हैं और स्कॉटलैंड के सब पीयरों द्वारा चुने जाते हैं जो निर्वाचन मंडल के रूप में सम्मिलित होते हैं। दूसरे शब्दों में, ग्रेट ब्रिटेन के सब पीयर तो लार्डसभा के स्वतः सदस्य होते हैं, किन्तु स्कॉटलैंड के पीयरों के १६ प्रतिनिधि ही होते हैं। ये संसद की कालावधि के लिये अर्थात ५ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। १७०७ से कोई स्कॉटलैंड का नया पीयर नहीं बनाया गया है। इस समय पुराने पीयरों में से भी ४० से कम शेष रह गये हैं। जब ये भी मर जायेंगे तब लार्डसभा के लिये प्रतिनिधि चुनने वाला कोई स्कॉट पीयर बचेगा ही नहीं, और यह वर्ग भी समाप्त हो जायगा।

चौथे वर्ग में आयरलैंड के प्रतिनिधि पीयर थे। १८०८ में जब आयरलैंड इंगलैंड से संयुक्त था तब कुल से आयरिश पीयर भी थे। उन्हें अधिकार दिया गया था कि वे अपने में से २८ को चुन कर समस्त वर्ग के प्रतिनिधियों के रूप में आजीवन लार्डसभा में भेज सकते थे। १९२२ में आयर स्वतंत्र राज्य बन गया था, तब से कोई निर्वाचन नहीं हुआ। अतः इस समय आयर के पीयरों की संख्या १४ से अधिक नहीं है। लार्डसभा में आयर के पीयर भी स्कॉटलैंड के पीयरों के समान शनैः शनैः समाप्त हो जायेंगे। यह याद रखना चाहिये कि इन दोनों प्रदेशों के पीयर लार्डसभा में वंशगत सदस्य नहीं होते; उनकी सदस्यता निर्वाचन से प्राप्त होती है। पांचवें वर्ग में २६ आध्यात्मिक लार्ड (Lords Spiritual) हैं। ये पीयर नहीं होते, ये धार्मिक (Ecclesiastical) सदस्य होते हैं। यार्क तथा केन्टरबरी के आर्चबिशप, तथा लन्दन, डरहम और विन्चेस्टर के बिशप इन २६ 'आध्यात्मिक लार्डों' में अवश्य समाविष्ट होते हैं। शेष २१ स्थानों को शेष २८ बिशपों में से उनकी स्थिति (Seniority) के अनुसार भरा जाता है। जब किसी बिशप को लार्डसभा में बुलाया जाता है तो वह तब तक सदस्य रहता है जब तक कि वह अपने पद पर रहता है। स्वभावतः बिशप की सदस्यता भी वंशगत नहीं होती। छठे वर्ग में ७ विधि लार्ड (Law Lords) हैं जिन्हें अपील के लार्ड भी कहा जाता है। ये साम्राज्य के सर्वोत्तम न्यायवेत्ताओं में से चुने जाते हैं और लार्डसभा के अन्य सदस्यों के समान ये अवैतनिक नहीं होते, वरन् वार्षिक वेतन पाते हैं। ये इंगलिस्तान, स्कॉटलैंड तथा उत्तरी आयरलैंड के उच्चतर न्यायालयों के निर्णयों की अपीलें

सुनते हैं तथा अपना सारा समय न्याय-कार्य को ही देते हैं । इसका कारण यह है कि लार्डसभा केवल विधायी निकाय ही नहीं है, वरन् उसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण न्याय-सम्बन्धी काम भी करने पड़ते हैं। उन कार्यों का भार विधि-लार्डों को सौंप दिया जाता है। वे सभा के आजीवन-सदस्य होते हैं।

इससे यह पता लग गया होगा कि लार्डसभा के ६० प्रतिशत सदस्य वशगत होते है, किन्तु शेप मे से कुछ पीयरों के निर्वाचन-क्षेत्रो से चुने जाते हैं, और कुछ अपनी टेक्नीकल योग्यता के आधार पर नियुक्त होते हैं।

**सभा का संघटन—** लार्डसभा के संघटन के विषय मे अधिक कुछ कहना अपेक्षित नहीं है। लोकसभा के समान उनके अपने पदाधिकारी होते हैं तथा उनकी अपनी समितियां होती हैं। उनका सभापति लार्ड चान्सलर है जो सदा केबिनेट का सदस्य होता है। उसकी नियुक्ति मे सभा का कोई हाथ नहीं होता। उसकी शक्तियाँ लोकसभा के अध्यक्ष की शक्तियो से कम होती हैं ; उसके पास अनुशासन सम्बन्धी शक्तियाँ भी नही होती और वह यह भी निर्णय नहीं कर सकता कि कौन सा पीयर पहले बोलेगा। लार्ड लोग अपनी वक्तृताओं मे सभापति को सम्बोधित नहीं करते वरन् 'मेरे लार्डों' (My Lords) कह कर सदस्यों को सम्बोधित करते हैं उसके सत्र भी लोकसभा के सत्रों के समय ही होते हैं, और उसकी बैठके मगल बुध तथा बृहस्पतिवार को होती हैं, कभी कभी सोमवार को भी हो जाती हैं किन्तु शुक्रवार को नहीं होती ; उसकी बैठके लोकसभा के समान लम्बी नहीं होती बहुत से पीयर प्राय बैठको से अनुपस्थित रहते हैं तथा कभी कभी ही वाद-विवाद मे भाग लेते हैं। दो सौ से अधिक तो शायद ही कभी आते हों, प्रायः ८० ही उपस्थित होते हैं। किन्तु वे बहुत योग्य व्यक्ति होते है जो राजदूत, गवर्नर जनरल, जनरल आदि उच्च राजपदों पर प्रतिष्ठित रह चुके होते हैं अथवा जो उद्योग, वित्त, साहित्य, पत्रकारिता, अथवा अन्य क्षेत्रो मे लब्धप्रतिष्ठ होते हैं। इसके फलस्वरूप उसके वाद-विवाद प्राय बहुत उच्च कोटि के होते हैं और कभी कभी प्रथम सभा से भी उच्चतर स्तर पर पहुंच जाते हैं। वहाँ वाद-विवाद के नियम बहुत ढीले हैं । प्रश्न तो बहुत ही कम पूछे जाते हैं।

**सभा की शक्तियां तथा कार्य—** यद्यपि लार्डसभा की शक्ति गत कुछ शताब्दियों मे बहुत घट गई है, तथापि उसके कार्यों मे वैसी कमी नहीं हुई है। लोकसभा के समान लार्डसभा भी विधायक, विचारात्मक तथा आलोचनात्मक कार्यों मे अब भी भाग लेती है। पहले उसे वित्त-क्षेत्र मे भी शक्ति प्राप्त थी किन्तु १६११ के ससद् अधिनियम से वह समाप्त हो गई है। उसका न्यायिक कार्य अनन्य है जो लोकसभा के पास नहीं है। अत हम इसके कार्यो को निम्नलिखित तीन शीर्षकों मे बांटेगे— विधायक, विचारात्मक तथा न्यायिक।

१. विधायक कार्य (Legislative functions)— कोई समय था जब लार्डसभा को ही विधि-निर्माण के कार्य में राजा को परामर्श देने का अनन्य अधिकार प्राप्त था, किन्तु बाद में विधि कार्य के लिये दोनो सभाओं की सहमति आवश्यक समझी जाती थी। १९११ के ससद् अधिनियम से यह स्थिति भी बदल गई, उस समय तक लार्डसभा को सब विधान-कार्य में, चाहे वह सार्वजनिक हो चाहे असार्वजनिक, लोकसभा के बराबर अधिकार प्राप्त थे और वहां विधेयक आरंभ भी हो सकते थे, सशोधित भी हो सकते थे तथा रद्द भी हो सकते थे। वह धन-विधेयको पर भी विचार कर सकती थी, उन्हें संशोधित अथवा अस्वीकृत भी कर सकती थी। किन्तु वास्तविक स्थिति यह बन गई थी कि लार्डसभा मे विधेयक प्राय. आरंभ नहीं होते थे क्योंकि शक्तिकेन्द्र लोकसभा बन चुकी थी, और यह भी अभिसमय (Convention) बन चला था कि वह धन-विधेयको पर केवल विचार-मात्र कर सकती थी और किसी सशोधन या परिवर्तन के बिना ही उन्हें स्वीकार या अस्वीकार कर दिया जाता था। धन-विधेयक को अस्वीकार करने के अधिकार का प्रायः प्रयोग नहीं किया जाता था।

इस समय धन-विधेयकों के अतिरिक्त अन्य विधेयको के विषय मे भी लार्डसभा का मुख्य कार्य केवल दोहराना, आलोचना करना तथा सशोधन करना ही रह गया है। उसमे विधेयको का प्रारम्भ प्राय. नहीं होता। लोकसभा अब अधिकाधिक केबिनेट की 'जो हजूर' बनती जा रही है तथा वहां वाद-विवाद को समाप्त करने के लिये 'गिलोटिन' का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा है, अतः उसके द्वारा पारित विधेयको पर ध्यान से पुनर्विचार करना और आलोचना करना पहले से अधिक आवश्यक हो गया है। लार्डसभा पुनर्निरीक्षण (Revision) का बहुत अच्छा साधन है क्योंकि वहां दलीय सचेतको (Whips) का भय कम रहता है। किन्तु इस समय उसका सघटन ऐसा है कि उसमे रूढ़िदल का अधिकांश बहुमत है और उसमें समस्त विधेयक सत्र के अन्त मे ही इकट्ठे पहुँचते हैं, इस कारण उसके लिये ठीक प्रकार कार्य करना कठिन सा बन गया है। सभा अपने कार्यों को कुशलता से तथा सफलता से तभी पूरा कर सकती है जबकि उसमे सुधार हो, तथा उसके सत्रो की व्यवस्था ऐसी की जाये कि उसे लोकसभा द्वारा भेजे गये विधेयको पर विचार करने के लिये काफी समय मिल सके। (पाठको को यह तो स्मरण होगा ही कि धन-विधेयको को आरम्भ करना तो लोकसभा का अनन्य अधिकार है। उन्हें संसद् अधिनियम के उपबन्धो को भी याद रखना चाहिये जो पहले समझाये जा चुके हैं।)

(२) विचारात्मक (Deliberative) तथा आलोचनात्मक (Critical) कार्य— इस समय स्थिति ऐसी है कि लार्डसभा शायद विधायक निकाय के

रूप में इतनी उपयोगी नहीं है जितनी कि विचारक निकाय के रूप में है। लार्डसभा में ख्यातिप्राप्त तथा अनुभवशील व्यक्ति होते हैं, जो विदेशी तथा साम्राज्य-सम्बन्धी विषयों में पारंगत होते है, अत राष्ट्रीय नीति पर उसके वाद-विवाद प्राय. उस कोटि के ही होते हैं जैसे प्रथम सभा के सर्वोत्तम भाषण हो सकते हैं, कभी कभी उनसे भी उच्च स्तर के होते हैं। वहाँ प्राय' शान्तिपूर्ण वातावरण होता है तथा आराम के साथ वाद-विवाद होते हैं, वहाँ लोग अस्थायी जोश में कम बहते हैं। सभा प्रस्तावों पर अधिक वाद-विवाद करती है, विधेयकों पर कम।

यदि लोकसभा का कार्य जनता की ओर से शासन पर नियंत्रण रखना है, तो यह भी कहना उचित ही होगा कि लार्डसभा का कार्य 'उच्चवर्ग के लोगों' की ओर से ऐसा ही नियंत्रण रखना होना चाहिये। किन्तु वह सफलता के साथ इस कार्य को नहीं कर सकती, क्योंकि उसे वित्त के विषय में कोई शक्ति नहीं है तथा सरकार उसके प्रति उत्तरदायी नहीं है। 'किन्तु वह सरकार की आलोचना कर सकती है और उसके कार्य-क्रम में बाधा डाल सकती है क्योंकि दो वर्ष के लिये तो वह विधेयकों को खटाई में डाल सकती है और बाद में दो वर्ष के लिये स्थगित कर सकती है, जिससे कि अन्तत' नये निर्वाचनों में जनमत के कारण वे अनिश्चित काल के लिये स्थगित हो सकते हैं।'*

(३) न्यायिक कार्य (Judicial Functions) — विधायक निकाय होने के अतिरिक्त लार्डसभा विधि-न्यायालय भी है। वह ग्रेट ब्रिटेन में सर्वोच्च न्यायालय है, उसका अन्तिम अपील-न्यायालय है। किन्तु यह बात याद रखनी चाहिये कि समूचा सदन इस कार्य में भाग नहीं लेता। इस काम को लार्ड चांसलर तथा सात 'विधि-लार्ड करते हैं जिनका अलग ही एक वर्ग है, जो उन छः वर्गों में से हैं जिनमें उसके सदस्यों को बाँटा जा सकता है। उसके न्यायिक कार्य में वे ही सदस्य भाग ले सकते हैं जो उच्च न्यायिक पद पर हों या रह चुके हों। इससे पता लगेगा कि लार्डसभा उच्चतम न्यायालय के रूप में तथा लार्ड-सभा विधायिका सभा के रूप में बिल्कुल भिन्न भिन्न हैं। उच्चतम न्यायालय के रूप में वह प्रात काल बैठती है तथा विधायिका के रूप में वह बाद में कार्य आरम्भ करती है। इन दो कार्यों को एक साथ रखना युक्तियुक्त नहीं है, किन्तु ब्रिटेन में वे साथ साथ हैं। संसद् अधिनियम द्वारा भी उसका न्यायिक कार्य छीना नहीं गया।

लार्डसभा का न्यायिक कार्य अंशत. अपील सम्बन्धी है और अंशतः प्रारम्भिक (Original) है। अपील के उच्चतम न्यायालय के रूप में लार्डसभा इंगलिस्तान, स्कॉटलैंड तथा उत्तरी आयरलैंड के सर्वोच्च न्यायाधिकरणों (Tribunals)

* Laski *Parliamentary Government*, page 125

के व्यवहार विषयक तथा आपराधिक मामलों की अपीलें सुनती है। प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के रूप में उसे अपने सदस्यों पर मुकदमा चलाने का अधिकार था, किन्तु उसका यह अधिकार छिन गया है। किन्तु अब भी वह उन पीयरों का मुकादमा सुन सकती है जिस पर भयंकर अपराध अथवा राजद्रोह के अभियोग हों। उसे यह भी शक्ति है कि वह लोकसभा द्वारा महाभियोग लगाये गये (Impeached) व्यक्तियों के मुकदमों पर विचार कर सकती है, किन्तु अब यह प्रथा समाप्त सी हो गई है।

**सदस्यों के विशेषाधिकार तथा कर्तव्य :** लार्डसभा के सदस्यों को वाक् स्वातंत्र्य (Freedom of Speech) है तथा जब सभा सत्र में हो तब उन्हें गिरफ्तारी से स्वतंत्रता है और ज्यूरी-कार्य से भी स्वतन्त्रता है। जिस सदस्य को एक बार यूनाइटेड किंगडम के पीयर के रूप में सभा में आने का निमंत्रण मिल जाता है उसे सदा आमंत्रित होने का अधिकार मिल जाता है। उसका अधिकार उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके ज्येष्ठ पुत्र को मिल जाता है। प्रत्येक पीयर को राजा से व्यक्तिगत रूप में मिलने का अधिकार है, पर अब उसका प्रयोग नहीं किया जाता। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है प्रत्येक पीयर यह मांग कर सकता था कि उसके अपराधों का मुकदमा उसके समान स्तर वाले ही सुनें— अर्थात् लार्डसभा ही सुने— किन्तु इस अधिकार का दुरुपयोग किया गया था और अब उस अधिकार को छीन लिया गया है। आयर तथा स्कॉटलैंड के पीयरों को, जो लार्डसभा के सदस्य नहीं होते, छोड़ कर किसी पीयर को लोकसभा के लिये खड़ा होने का अधिकार नहीं है और वह उसके लिये मत भी नहीं दे सकता।

**दोनों सभाओं के संबंध :** दोनों सभाओं का सम्बन्ध सदा एक सा नहीं रहा है, वह समय समय पर बदलता रहा है। जब वे दो विभिन्न सभाओं के रूप में बैठना शुरू हुईं थीं तब, विधि अनुसार, उनकी शक्तियां समान थीं। शीघ्र ही यह स्वीकार किया गया था कि वित्त के विषय में लोकसभा को मुख्य शक्ति मिल जानी चाहिये जिससे वह लार्डसभा से अधिक शक्तिशाली बन जाये। किन्तु इस लाभ की स्थिति के बावजूद भी अठारहवीं शताब्दी के आखिर तक लोकसभा निम्न सभा ही रही। 'शासन के प्रत्येक कार्य में— विधायी कार्य में, नीति की आलोचना में अथवा मंत्रिमंडलों के निर्माण में— लार्डसभा लोकसभा से उच्चतर रही।'* इसके दो मुख्य कारण थे। पहली बात यह थी कि लार्डसभा में राज्य के जमींदार सामन्त भरे थे और राज्य के अधिकांश उच्च पदों पर भी पीयर ही होते थे।

---

* Finer : *The Theory & Practice of Modern Governments*, page 438.

दूसरी बात यह थी कि लोकसभा की तरफ से कोई वैधानिक चुनौती नहीं थी, क्योंकि उसमे एक तिहाई सदस्य तो पीयर लोगो के समर्थक थे जो उन्हीं की सहायता से निर्वाचनों में जीत कर सदस्य बनते थे। दोनों सभाओं मे एक ही सामाजिक वर्ग की प्रधानता थी इसलिये दोनो मे कभी शक्ति का सघर्ष नहीं होता था। असली राजनैतिक संघर्ष तो बादशाह और संसद के बीच था और मूक देश तथा संसद के मध्य था, लार्डसभा तथा लोकसभा के बीच नहीं था। १८३२ मे स्थिति बदली, और महान् 'सुधार अधिनियम' (Reform Act) पेश हुआ जिस पर दोनों सभाओं मे संघर्ष हुआ तथा अन्त में लोकसभा की विजय हुई। उस समय के बाद, और लोकसभा के उत्तरोत्तर लोकतंत्रीकरण के साथ साथ, लोकसभा का प्रमुत्व लार्डसभा से अधिक होता गया और लार्डसभा सच्चे अर्थ में द्वितीय सदन सा बनता गया।

"लार्ड-सभा को ड्यूक ऑफ वैलिंगटन से यह कड़वा पाठ पढ़ना पड़ा था कि जब 'जनता की इच्छा' स्पष्ट हो तो उसे लोकमत का विरोध नहीं करना चाहिये, किन्तु आपत्तिजनक बातों में संशोधन या विलम्ब ही करना चाहिये, और केवल उन्हीं विधेयकों को रद्द करना चाहिये जिनमे अंग्रेज निर्वाचको ने अधिक दिलचस्पी न ली हो, जैसे कि आयर की शिकायतों के हटाने के विधेयक हैं।" ※ फिर भी सिद्धान्त मे लार्ड-सभा १९११ तक लोकसभा के साथ साथ समान शक्ति का प्रयोग करती रही, आखिर उसका लोकसभा से संघर्ष हो गया और उसे सिद्धान्त के अनुसार भी गौण तथा द्वितीय सभा बना दिया गया, जो वह वास्तव मे तो बहुत पहले ही बन चुकी थी। १९११ के ससद अधिनियम के पारित होने की परिस्थितियों का यहां उल्लेख करना उपयोगी होगा क्योंकि उस से यह पता लग जायेगा कि दोनों सभाओं के आपसी सम्बन्ध कैसे रहे हैं।

ऊपर यह बताया जा चुका है कि यद्यपि लार्डसभा मे सिद्धान्त के अनुसार लोकसभा के समान ही शक्ति थी, फिर भी वास्तव मे वह द्वितीय सदन का रूप धारण कर चुकी थी और लोक-प्रिय सभा (लोकसभा) द्वारा पारित विधेयकों से व्यक्त जनमत का विरोध नहीं कर सकती थी। यह लोकसभा के साथ अपनी राजनैतिक समानता पर बहुत कम जोर देती थी अत. उसे चलने दिया गया। उसे सिद्धान्त मे जो शक्तियां प्राप्त थीं उनको प्रयोग करने का वह साहस करती तो वह कभी की मिट चुकी होती। अत. उसकी शक्ति यही थी कि वह बहुत निर्बल थी। जब उसने अपनी शक्ति का परिचय दिया तथा उदार दलीय सरकारो के काम में रोड़े अटकाने आरम्भ किये तभी उसकी शक्तियों को कम करने का आन्दोलन आरम्भ हो गया और अन्त मे १९११ का महान संसद अधिनियम पारित हो गया १९०९ मे श्री एस्क्विथ की

※ Ramsay Muir, *op cit.*, Page 248

उदार सरकार ने जब भूमि तथा अन्य 'प्रकार की सम्पत्ति पर अधिक कर लगाने चाहे तो लार्ड-सभा ने उन कर-प्रस्तावों को रद्द करने का दुस्साहस किया। एस्क्विथ सरकार ने त्याग-पत्र दे दिया, देश से अपील की और पुनः शक्ति प्राप्त करली। इस पर लार्ड झुक गये तथा उस वित्त-विधेयक को पारित कर दिया जिसे वे पहले रद्द कर चुके थे। पर उदार सरकार ऐसी घटनाओं को दुबारा होने देना नहीं चाहती थी, इसलिये उसने लार्डसभा की शक्ति को कम करने के लिये अपना अस्तित्व ही बाजी पर लगा दिया। दूसरा साधारण निर्वाचन १६१० में हुआ जिसमें मुख्य प्रश्न यही था कि क्या लार्डसभा की शक्तियों को कम किया जाये। देश ने एक बार फिर उदारदल का समर्थन किया। १६११ का संसद अधिनियम उदार दल की विजय का ही परिणाम था। इस अधिनियम द्वारा लार्डसभा की धन-विधेयकों को संशोधित करने की शक्ति छीन ली गई और विधि-निर्माण में लोकसभा के साथ उसकी समानता समाप्त कर दी गई, जो उसे सिद्धान्त में प्राप्त थी, इन बातों के अतिरिक्त लोकसभा का अधिकतम जीवनकाल भी ७ वर्ष से घटाकर ५ वर्ष कर दिया गया। इस अधिनियम से लार्डसभा की रचना में कोई परिवर्तन नहीं किया गया और उसकी न्यायिक (Judicial) शक्तियों को ज्यों का त्यों रहने दिया गया। इस प्रकार लार्डसभा में सुधार करने के प्रश्न का कोई समुचित हल नहीं निकला।

**१६११ के संसद अधिनियम का महत्त्व**— इस अधिनियम का ब्रिटेन के सांविधानिक विकास के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है; इससे ब्रिटिश इतिहास में ऐसा महान् परिवर्तन हो गया जैसा और कभी जानबूझ कर, विधि द्वारा नहीं किया गया था। अतः यह जानना अभीष्ट है कि इस से वास्तव में क्या परिवर्तन हुआ है। कभी कभी यह कह दिया जाता है कि इस से लोकसभा को पूर्ण विधायिका प्रभुता (Full legislative supremacy) मिल गई है। इसमें सन्देह नहीं है कि अब लोकसभा के लिये यह विधि-रूप में सम्भव हो गया है कि वह लार्डसभा की सहमति के बिना सब प्रकार का क़ानून बना सकती है। धन-विधेयक को लार्डसभा में भेजने के एक मास पश्चात् राजा की अनुमति के लिये भेज दिया जाता है चाहे लार्डसभा उसे स्वीकार करे या रद्द करे। अन्य विधेयकों के विषय में सभा को पहले के समान पूर्ण-निषेधाधिकार (Absolute veto) प्राप्त नहीं है वरन् विलम्बनकारी निषेधाधिकार (Suspensive veto) दिया गया है, वह उनके पारित होने में हद से हद दो वर्ष का (जो अब एक वर्ष ही रह गया है) विलम्ब कर सकती है। यदि लोकसभा किसी विधेयक को दो वर्ष की अवधि के भीतर तीन बार उसी रूप में पास करदे तो उसे लार्ड्स की सहमति के बिना ही राजा की अनुमति के लिये पेश कर दिया जायगा। इन उपबन्धों से यद्यपि लार्डसभा की लोकसभा के साथ विधायी

समानता (Legislative parity) छिन गई किन्तु फिर भी इस से लोकसभा पूरी तरह सम्पूर्ण-प्रभुत्व सम्पन्न (Sovereign) नहीं बन सकी है। यह नतीजा निकालना गलत होगा कि लोकसभा सदा अपनी इच्छानुसार ही कार्य करती है। संसद् अधिनियम की शर्तों को पूरा करना सदा आसान काम नहीं है। लार्डसभा किसी विधेयक को वार वार रद्द करके उसके विरुद्ध जनमत को भड़का सकती है अथवा अन्य प्रकार से केबिनेट को वाध्य कर सकती है कि वह उसमें ऐसे परिवर्तन कर दे जो लार्डसभा को स्वीकार्य हों।

जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है लार्डसभा आपात के कामों (Emergency Measures) को तो विल्कुल रोक ही सकती है। उन्हें दो वर्ष तक पारित होने से रोक कर वह ऐसे काम का महत्त्व तथा मूल्य समाप्त कर सकती है। लास्की ने कहा है कि 'किसी श्रम सरकार के विरुद्ध शरारत करने का उसमें अब भी वहुत सामर्थ्य है'। अब भी उच्च सभा लोकसभा द्वारा पारित विधेयकों में परिवर्तन करती रहती है और लोकसभा को परिस्थितियों के वश होकर उन्हें मानना ही पड़ता है। विशेषतः उन विधेयकों के सबंध में यह वात लागू होती है जिन्हें लोकसभा अपनी अवधि के अंतिम वर्ष में पारित करती है क्योंकि उन्हें लार्डसभा अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर सकती है। अब भी दोनों सभाओं के बीच के मतभेद समझौते से निबटाये जाते हैं जिसमें दोनों को झुकना पड़ता है। ससद् अधिनियम के पारित होने से काफी अन्तर नहीं पड़ा है। इससे तो वही वात सिद्धान्त रूप में प्रकट हुई है जो पहले भी तथ्य रूप में थी। यद्यपि इससे लोकसभा सर्वोच्च सत्ता वन गई है फिर भी लार्डसभा में काफी शक्ति शेष रह गई है। १९४९ के अधिनियम द्वारा अवित्तीय-विधेयकों (Non-Money Bills) के विषय में भी लार्डसभा के विलम्वनकारी निषेधाधिकार (Suspensive Veto) को दो वर्ष से घटा कर एक वर्ष कर दिया है।

**लार्डसभा के विरोध के कारण :** १९११ तथा १९४९ के संसद् अधिनियमों द्वारा लार्डसभा की शक्ति कम कर देने पर भी उसके आलोचक सतुष्ट नहीं हुए हैं। उसके आलोचक अभी यह कहते हैं कि उसका लोकतंत्र से मेल नहीं है। यह माना जा सकता है कि एक दूसरी सभा की आवश्यकता है (१) जो लोकसभा में पारित विधेयकों का पुनर्निरीक्षण (Revision) और परीक्षण कर सके, क्योंकि लोकसभा को ऐसे विशेष नियमों के अधीन कार्य करना पड़ता है कि उस में वाद-विवाद सीमित ही होता है, (२) जो किसी विधेयक को पारित करने में इतना विलम्ब कर सके कि राष्ट्र को पर्याप्त रूप में अपना मत प्रकट करने का समय मिल जाये, (३) जो अविवादास्पद विधेयकों को आरंभ कर सके, और जिससे कि विदेशी नीति आदि महान् और महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर पूर्ण और स्वतंत्र वाद-विवाद

हो सके; इन प्रयोजनों को पूरा करने के लिये ऐसी सभा कभी ठीक नहीं हो सकती जिसमें कि ७५० से भी अधिक सदस्य हों और उनमे से भी ६० प्रतिशत सदस्य वंशगत हों।

वंशगत परंपरा के ही कारण उसे लोकतंत्रात्मक राज्य में एक विसंगति (anomaly) समझा जाता है; उसी से कई बार यह व्यंग-वाक्य कह दिया जाता है कि 'लोकसभा तो सब का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु लार्डसभा किसी का भी प्रतिनिधित्व नहीं करती'। दूसरी बात यह है कि जमींदारों तथा बड़े व्यवसायी लोगों के तो उसमे काफी से ज्यादा प्रतिनिधि हैं किन्तु समाज के अन्य अंगों— मध्यवर्ग आदि— के प्रतिनिधि उसमे हैं ही नहीं या बहुत कम हैं। इससे यही स्पष्ट है कि लार्डसभा—'संपत्ति का गढ़' बन गई है। कोई ऐसा महान् राष्ट्रीय उद्योग (national industry) नहीं जिसके राजनैतिक नेताओं को उसमें प्रतिनिधित्व न मिला हो। तीसरी बात यह है कि सभा मे अब दो दल नहीं रहे हैं; वह मुख्यतः एक ही राजनैतिक दल के सिद्धान्तों पर दृढ़ है। व्यवहार मे वह 'रूढ़िवादी दल का अड्डा' है। जब कोई रूढ़िवादी सरकार होती है तब तो लार्ड-सभा अपना दोहराने तथा आलोचना करने का कार्य ठीक प्रकार करती रहती है, किन्तु जब उदार दल या श्रम दल शक्ति प्राप्त कर लेता है "तब यह सभा 'संपत्ति का सामान्य गढ़' के रूप मे प्रकट हो जाती है वह रूढ़िवादी दल की रिजर्व शक्ति बन जाती है जिसका यह दृढ़ निश्चय है कि निर्वाचनों मे प्रगतिशील दलों की विजय के परिमाणों को, यथाशक्ति, असफल बना दिया जाये।"* शायद इसके विरुद्ध यह सब से बड़ा आरोप है। चौथी बात यह है कि उसकी प्रतिष्ठा बहुत कुछ इसी कारण कम हो गई है कि उसके बहुत से सदस्य अपने कार्य की चिन्ता नहीं करते। उनमे से अधिकांश अनुपस्थित रहते हैं, उसमे साधारणतः लगभग ३५ सदस्य उपस्थित रहते हैं, और गत बीस वर्ष में ऐसे केवल १२ अवसर आये हैं जब कि उसमे २०० से अधिक संख्या थी। इसके अतिरिक्त यह भी सत्य है कि अधिकांश नये पीअर दल के कोष मे धन देकर पीयर बने थे। यह ध्यान रखना चाहिये कि जब लोकसभा का लोकतंत्रीकरण (Democratisation) हुआ, तब लार्डसभा चुप रही और अपना वंशगत (hereditary) तथा कुलीनतंत्रीय (aristocratic) रूप बनाये रखा। इसी के फलस्वरूप वह रूढ़िवाद का गढ़ बन गई, उन शक्तियों का सदा विरोध करती रही जो समाज की व्यवस्था को बदलना चाहते हैं, और उनका साथ देती रही जो कुलीनतंत्र (Aristocracy) को सदा बनाये रखना चाहते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी संस्था के विषय मे लोकतंत्रीय लोग सदा आलोचना ही करेंगे।

**सुधार के सुझाव**— १८३२, १८६७ और १८८४ के महान् सुधार

---

* Laski : *op. cit.*, page 114.

अधिनियमों के परिणामों के व्यक्त होने के समय से ही लार्डसभा को सुधारने के प्रश्न पर ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का ध्यान लगा रहा है। समय समय पर सुझाव रखे गये हैं जिनमें मुख्यत: दो बातों के सकेत मिलते हैं— (१) वशगत पीयरों को शासन करने का कोई अधिकार नहीं है, और (२) प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त ही ठीक है। सुधार का प्रथम प्रयत्न १८६९ में हुआ था जब लार्ड रसेल ने यह विधेयक रखा था कि 'आजीवन पीयर' बनाये जायें जिनकी सख्या २८ से अधिक न हो। वह विधेयक अस्वीकृत हो गया। लार्ड रोजबरी ने १८७४ में सुधार का प्रयत्न किया और रोजबरी तथा सेलिसबरी ने मिलकर १८८८ में फिर सुधार का प्रयत्न किया किन्तु उनका कुछ भी फल नहीं निकला। इसके बाद एस्क्विथ सरकार ने प्रयत्न किया जिसके परिणामस्वरूप १९११ का संसद अधिनियम बना। इसमें केवल उसी समय की समस्याओं को सुलझाया गया तथा यह मूल सुधारों की ओर एक कदम के रूप में घोषित किया गया। इसकी प्रस्तावना में यह लिखा था, "उद्देश्य तो यह है कि वर्तमान लार्डसभा के स्थान पर एक ऐसा द्वितीय सदन बनाया जाये जो वशगत न होकर लोकप्रिय हो, किन्तु यह परिवर्तन एकदम नहीं किया जा सकता .. ।" प्रस्तावना की इस मंशा को पूरी करने के लिये, १९१७ में एक समिति लार्ड ब्राइस के सभापतित्व में सुधारों का सुझाव देने के लिये बनाई गई। समिति ने खूब विचार करने के पश्चात् १९१८ में अपनी रिपोर्ट दी। उस समिति ने पुरानी सभा और सुधार के पश्चात् की लार्डसभा में शृङ्खला बनाये रखने, बड़े राजनैतिक दलों को प्रतिनिधित्व देने तथा सब नागरिकों के लिये उसमें आने का रास्ता सुगम बनाने के उद्देश्यों से, निम्न उपाय सुझाये : (१) उसकी सदस्य सख्या घटाकर ३२७ कर दी जाये ; (२) सब पीयरों में से ८१ सदस्य चुने जायें जिन्हें दोनों सभाओं की स्थायी सयुक्त समिति चुने, (३) शेष २४६ सदस्यों को लोकसभा १३ वर्गों में विभाजित होकर चुने, प्रत्येक वर्ग को अपने प्रतिनिधि समुचित सख्या में चुनने का अधिकार हो। सब सदस्य १२ वर्ष के लिये चुने जायें, दोनों मुख्य वर्गों (८१ पीयर और २४६ सदस्य जो १३ निर्वाचन-मंडलों द्वारा चुने जायेंगे) के एक तिहाई सदस्य प्रति चार वर्ष में निवृत्त हो जायें। कोई भी एक लोकसभा २४६ में से एक तिहाई से अधिक सदस्यों को न चुने। इस प्रकार समस्त योजना पर शनै शनै अमल होना था। किन्तु ऐसा कभी किया ही न जा सका। १९२२ में श्री लायड जार्ज ने लार्डसभा में बहुत से प्रस्ताव पेश किये जिनमें ब्राइस समिति की रिपोर्ट की कुछ सिफारिशें भी शामिल थीं, किन्तु उन पर भी कोई कार्यवाही नहीं की गई। १९२९ में लार्ड केव ने लार्डसभा के सुधार के लिये एक और योजना पेश की जिससे कि उसे लोकसभा की तुलना में शक्तिशाली बनाया जा सके। उसका सब ओर से घोर विरोध हुआ। उसी वर्ष लार्ड क्लेरेनडन ने एक और योजना पेश की किन्तु उसे भी स्वीकार नहीं किया गया। दिसम्बर १९३३ में लार्ड सेलिसबरी ने एक

विधेयक (Bill) पेश किया जिसमें ये उपबंध थे कि लार्डसभा के सदस्यों की संख्या को घटा कर ३२६ कर दिया जाये, जिसमें १५० वंशगत पीयर हों; १५० पीयरों के अतिरिक्त चुने हुए सदस्य हो; और शेष राजपरिवार के पीयर, विधि-लार्ड तथा कुछ धार्मिक अधिकारी भी हो। इससे लार्डसभा को काफी शक्तियां देने का प्रस्ताव भी था कि यदि समस्त लार्डसभा के पूर्ण बहुमत से किसी योजना को तीन बार अस्वीकृत कर दिया जाये, तो उस पर निर्णय करने का अधिकार नई लोकसभा को ही होना चाहिये। यह विधेयक पास नहीं हो सका।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या कारण है कि इतने प्रयत्नों के बावजूद भी लार्डसभा का अभी तक सुधार नहीं हो सका है। इसका मुख्य कारण यही है कि अलग अलग दलों मे आपस में कभी पूरा समझौता नहीं हो सका कि उसका सुधार किन सिद्धान्तों के अनुसार किया जाये। लगभग सभी अंग्रेज मानते हैं कि लार्डसभा मे सुधार होना चाहिये, किन्तु ज्योंही यह प्रश्न सामने आता है कि क्या सुधार किये जाये, मतभेद प्रकट हो जाते हैं। रूढ़िवादी चाहते हैं कि १९११ के अधिनियम द्वारा उससे जो शक्ति छीन ली गई थीं, वह उसे वापस मिल जाये, क्योंकि लार्डसभा ही ऐसा सफल शस्त्र है जिससे वे समाजवादी सरकार का सामना कर सकते हैं। रूढ़िवादी दल समाजवाद को बहुत भयानक चीज समझता है और इसलिये वह चाहता है कि एक शक्तिशाली द्वितीय सभा हो जो समाजवादी विधेयकों को पारित होने से रोक सके। श्रमदल उसे बिल्कुल समाप्त ही कर देना चाहता है। वह समझता है कि लार्डसभा प्रतिक्रियावादी सदन है, वह 'सम्पत्ति का गढ़' है, अत. वह श्रमदल के मार्ग में एक महान रोड़ा है। १९३४ में श्रमदल के सम्मेलन ने लार्डसभा को समाप्त करने का प्रस्ताव पारित किया था। एक सदस्य ने अपने भाषण में कहा था, लार्डसभा का सुधार या संशोधन नहीं हो सकता, उसका तो अन्त ही हो सकता है और वही होना भी चाहिये'। उदार दल का, जो अब छोटा रह गया है, यह उद्देश्य है कि (१) लार्डसभा की सदस्यता मे सुधार किया जाये जिससे कि वह वंशगत न रहे; और (२) संसद अधिनियम द्वारा उस पर जो निबंधन (Restrictions) लगाये गये हैं वे जारी रहें। अतः लार्डसभा अब तक इसीलिये बनी हुई है कि ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ अभी तक सहमत नहीं हो सके कि उसके स्थान पर क्या हो। किन्तु जब भी श्रमदल यह अनुभव करेगा कि देश मे उसकी स्थिति मजबूत है, वह देश से यह मांग कर सकता है कि सभा को समाप्त किया जाये तथा लोकसभा की प्रक्रिया मे सुधार किया जाये। हम यहां इस वाद-विवाद मे नहीं पड़ना चाहते कि लार्डसभा को समाप्त करना ठीक होगा या नहीं। हमें केवल यही ध्यान रखना चाहिये कि लार्डसभा की ब्रिटिश इतिहास मे ऐसी जड़ जमी हुई है तथा उनके स्वभाव मे वह ऐसी समा गई है कि उसे समाप्त

करना आसान बात नहीं होगी। 'सीनेट' के रूप में उसके कार्य, सिडनी लो के अनुसार, महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी हैं; यदि उसे समाप्त किया जायेगा तो उसके स्थान पर कुछ और बनाना पड़ेगा। ब्रिटिश परम्परा के अनुसार यह अधिक ठीक होगा कि उसमे सुधार कर दिया जाये जिससे वह अत्यन्त वंशगत तथा रूढ़िवादी न रहे।

यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यद्यपि श्रमदल गत चालीस पचास वर्ष से लार्डसभा के सुधार का आन्दोलन करता रहा था, फिर भी जब उसने १६४६ का संसद् अधिनियम पारित किया तब उसने उच्च सभा की रचना में कोई परिवर्तन नहीं किया, जबकि उसमें ऐसा करने की शक्ति मौजूद थी। श्रमदल का विचार अब बदल गया प्रतीत होता है, वह अब लार्डसभा को समाप्त नहीं करना चाहता। लार्डसभा ने उसके विधायी मामलों में अधिक बाधा भी नहीं डाली, अतः श्रमदल ने निश्चय किया कि इस विषय में कोई बड़ा वाद-विवाद खड़ा करना उचित नहीं है।

---

अध्याय ८

# संसद् और सरकार

**विषय-प्रवेश**—पिछले कुछ अध्यायों में हमने ब्रिटिश संविधान के दो महत्त्वपूर्ण अंगों—कार्यपालिका (Executive) तथा विधान-मंडल (Legislature)— की रचना तथा कार्यों का विवरण दिया है, और उनके बीच के संबन्ध का भी थोड़ा सा हाल बता दिया है। यह विषय महत्त्वपूर्ण है अतः अब हम इस पर अधिक विस्तार से विचार करना चाहते हैं, चाहे इससे कुछ पुनरावृत्ति ही हो जाये।

**संसद् की सैद्धान्तिक प्रभुता**— ब्रिटिश संविधान में विधान-मंडल तथा कार्यपालिका की स्थिति समान नहीं है जैसी कि संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में है। ब्रिटेन में विधान-मंडल की स्थिति निश्चित रूप से उच्चतर है। संसद् की सर्वोच्च प्रभुता (Supremacy) ब्रिटिश सांविधानिक व्यवस्था का मूलभूत तथा आधारभूत सिद्धान्त है। सर एडवर्ड कोक के अनुसार इसका यह मतलब है कि संसद् की शक्ति और क्षेत्राधिकार को किसी व्यक्ति या उद्देश्य के लिये सीमा में नहीं रखा जा सकता। संसद् का प्राधिकार (authority) ब्रिटिश साम्राज्य में सब व्यक्तियों पर, सब स्थानों पर तथा सब घटनाओं पर है। किन्तु श्री ऐडवर्ड के उक्त कथन के पश्चात् वेस्टमिनिस्टर का कानून (स्टेट्यूट) बना था जिसमें यह उपबन्ध

था कि संसद् का कोई भी अधिनियम किसी अधिराज्य (Dominion) पर लागू नहीं होगा जब तक कि उसमें यह स्पष्ट उल्लेख न हो कि वह अधिराज्य उसके लिये सहमत हो गया है। उक्त कानून के पारित होने से पहले भी संसद् का सर्वव्यापी तथा पूर्ण प्राधिकार नाम में ही था, वास्तव में उसका कोई अस्तित्व नहीं था। हमें यहाँ इस सिद्धान्त के निर्वचन से कोई मतलब नहीं है; हमें तो उसका दूसरा आशय समझना है कि संसद् ग्रेट ब्रिटेन में शासन का सर्वोच्च अंग है। सिद्धान्त के अनुसार संसद् को सम्पूर्ण प्रभुत्व की शक्तियां प्राप्त हैं।* सर्वोच्च निकाय के रूप में उसे समस्त विधि-कार्य और करारोपण (Taxation) तथा खर्च पर पूर्ण नियंत्रण रखने का अधिकार है, और वह अपने सेवक तथा साधन केबिनेट द्वारा समस्त प्रशासन पर नियन्त्रण रखती है। संसद् इसलिये सर्वोच्च सत्ता है कि सरकार को अपने सब कामों का हिसाब उसे ही देना पड़ता है; क्योंकि वह धन देने से इन्कार करके केबिनेट को त्यागपत्र देने के लिये बाध्य कर सकती है। केबिनेट प्रणाली या संसदीय शासन-प्रणाली में सदा ही कार्यपालिका पर संसद् को सर्वोच्चता होती है। ड्यूक ऑफ डेवनशायर ने संसद् की सर्वोच्चता के इस सिद्धान्त को निम्न शब्दों में समझाया है, "संसद् हमारे मंत्रिमंडलों को बनाती और बिगाड़ती है, वह उनके कामों का पुनर्निरीक्षण करती है। मंत्री युद्ध या शांति की घोषणा कर सकते हैं, किंतु उन्हें ऐसा करते समय यह जोखम रहता है कि उन्हें उनके पद पर से तत्काल हटाया जा सकता है, और आंतरिक प्रशासन के मामलों में भी संसद् की शक्ति इतनी ही स्पष्ट है। यदि कोई मन्त्रिमण्डल अत्यधिक अपव्ययी या मितव्ययी हो तो संसद् उसे हटा सकती है।"

**व्यवहार में संसद् का प्राधिकार :** संसद् की सर्वोच्च सत्ता सिद्धान्त में इस प्रकार की है। किन्तु सच्चाई यह नहीं है। वास्तव में व्यवहार में संसद् कभी भी सर्वशक्तिमान नहीं थी, अब तो वह सर्वशक्तिमान है ही नहीं। उसकी शक्तिमत्ता के समय में भी उसकी सत्ता सम्पूर्ण नहीं थी; उसे यथेष्ट कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं थी। उसके हाथ उसके बाहर की शक्तियों से बंधे हुए थे। एक समय था जब कि उसकी शक्ति शासक-राजा की सत्ता के कारण सीमित थी और इस समय वह केबिनेट के अधीन हो गई है। केबिनेट ने ऐसी बहुत सी शक्तियों को हथिया लिया है जो नाममात्र के लिये संसद् के हाथ में हैं। संसद् सदा अपने ही पूर्व निश्चयों तथा परम्पराओं से भी बाध्य रहती रही है, और

* संसद् इस अर्थ में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न है कि उसके यथेष्ट विधियां बनाने के अधिकार पर कोई वैधानिक सीमा नहीं है। कोई ऐसा सर्वोच्च संविधान नहीं है जिसके उपबंधों का पालन करना उसके लिये आवश्यक हो, और कोई ऐसी उच्चतर शक्ति नहीं है जो उसके अधिनियमों को असांविधानिक बता सके।

लोकमत का दबाव सदा उसकी कार्यवाही को रोकता रहा है। उसने अपने सिर पर बहुत प्रकार के विविध-रूप कार्य ले लिये हैं। इसी से उस पर एक सीमा तथा वन्धन लग गया है कि वह उन्हें कुशलता से करने में असमर्थ है। संसद् की पूर्ण प्रभुता तो अब केवल कुछ पाठ्य पुस्तकों में ही रह गई है जो कई वर्षों पूर्व लिखी गई थीं। पिछले अध्याय में बताया गया है कि ससद् किस प्रकार विधियाँ बनाती है तथा राष्ट्रीय धन पर नियत्रण रखती है, उसी से पाठकों को काफी पता लगा होगा कि इन दोनों क्षेत्रों में भी उसका कार्य कितना सीमित है, यद्यपि यह प्राय: कहा जाता है कि उन दोनो क्षेत्रों में उसकी सर्वोच्च सत्ता है। विधि-निर्माण में पहल करने की शक्ति तथा नेतृत्व पूर्णतया केबिनेट के हाथ में चला गया है। केबिनेट केवल यही निश्चय नहीं करती कि ससद् मे क्या चीजें पेश की जायेंगी तथा किस क्रम से उन पर विचार होगा, वरन् वह उनके मसविदे भी तैयार करती है। केबिनेट ही विधेयकों की ससद् मे व्याख्या करती है, सफाई पेश करती है तथा उन्हे पारित करवाती है। गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक के लिये संसद् मे पारित होकर कानून बन जाने की तब तक कोई संभावना नहीं है जब तक कि सरकार उसका समर्थन न करदे। अतएव यह कथन ठीक ही है कि ससद् विधियो को आरम्भ नहीं करती, अथवा उनका निर्माण भी नहीं करती, उसका काम तो केवल यही है कि केबिनेट जो कुछ सुझाव रखे उसका अनुमोदन कर दे (हॉ. वह ऐसे परिवर्तन भी कर सकती है जिन्हें केबिनेट स्वीकार कर ले)। यह भी दिलचस्पी की बात है कि अच्छे या बुरे कानूनों का श्रेय या बदनामी भी केबिनेट को ही मिलती है, ससद् को नहीं। जनता की दृष्टि में भी विधि-निर्माण का उत्तरदायित्व केबिनेट का है, ससद् का नहीं। वित्त के क्षेत्र में सरकार का नियत्रण और भी अधिक होता है; केबिनेट की ओर से जो वित्तीय प्रस्थापनाएं पेश होती हैं उनमे केबिनेट की इच्छा के विरुद्ध परिवर्तन करने से सरकार की पराजय हो जाती है जो प्राय असंभव बात होती है। धन देने से इनकार करके मंत्रिमंडल को हटाने की लोकसभा की शक्ति भी सविधान में नाममात्र के लिये ही रह गई है।

संसद् ने केवल विधि-निर्माण तथा वित्त के विषय मे ही नहीं, वरन् सब प्रकार से अपनी शक्ति केबिनेट को सौंप दी है। वह राष्ट्र की ओर से शासन पर समुचित नियंत्रण रखने मे असमर्थ है। स्मरण रहे कि संसद का काम यह नहीं है कि वह देश पर शासन करे तथा प्रशासन के लिये प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व ले, यह तो केबिनेट के ही कार्य हैं। संसद् यह निर्णय नहीं करती कि विभिन्न विभागों का संगठन कैसे होगा और उनके कर्मचारी कितने होंगे, और संसद् नियुक्तियों पर या पदों के हटाने पर नियन्त्रण नहीं रखती। किन्तु उससे आशा की जाती है कि वह प्रशासन के कार्य का परीक्षण करे और यह देख ले कि प्रशासनकार्य कुशलता से

तथा मितव्ययता से चल रहा है, और संसद द्वारा प्रदत्त अधिकार से विभागों द्वार निकाले गये आदेश तथा विनियम उपयुक्त और वैध हैं। केबिनेट के बढ़ते हुए 'आधिपत्य' (Dictatorship) के कारण, नौकरशाही के बढ़ने से, और कई अन्य कारणों से, जिनमें हिसाब किताब रखने की प्रणाली तथा प्राक्कलनों के पेश होने की और उन पर लोकसभा मे वाद-विवाद की प्रणालियां भी शामिल हैं, संसद के इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काम में बाधा पड़ती है। प्रशासन पर उनका नियन्त्रण अत्यन्त प्रभावहीन है। मन्त्रियों और उनके अधीनस्थ कर्मचारियो को ठीक रखने के लिये इस समय संसद के पास निम्न उपाय हैं: प्रश्न, सरकारी सङ्कल्पों (Resolutions) पर वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श, कामरोको-प्रस्ताव और अविश्वास प्रस्ताव। दुर्भाग्य से इन उपायो से इतनी छानबीन तथा आलोचना नहीं होती जो प्रभावी नियन्त्रण रखने के लिये जरूरी है। केबिनेट लोकसभा की शक्ति को हड़प कर शक्तिशाली बना है।

एक और तरीके से यह सिद्ध किया जा सकता है कि संसद की शक्ति वर्तमान परिस्थितियों मे पूर्ण नहीं हो सकती, तथा उसकी सर्वोच्चता वास्तविक नहीं है, केवल सैद्धान्तिक है। जैसा कि अध्याय ६ मे बताया गया है, वास्तव में लोकसभा ही संसद है, अतः संसद की शक्ति और अधिकार लोकसभा से अधिक नहीं हो सकते। लोकसभा जिस प्रकार अपना काम चलाती है उससे स्पष्ट पता चल जाता है कि जब भी उसमे किसी सरकार का बहुमत होता है, लोकसभा की शक्ति सरकार की शक्ति होती है। सरकार की शक्ति पूर्ण नहीं हो सकती अत. लोकसभा की शक्ति भी उतनी ही सीमित होगी। सरकार और लोकसभा दोनों की शक्ति और कार्यवाही को सीमित करने तथा उन पर प्रतिबंध लगाने के लिये जनमत सदा मौजूद रहता है। अतः यह कहा जा सकता है कि आज संसद की घटती हुई तथा सीमित शक्ति और महत्ता की चर्चा करना अधिक सत्य है, उसकी सर्वशक्तिमत्ता तथा प्रभुता और शक्ति का उल्लेख करना गलत होगा। १६८८ की क्रांति के पश्चात् यह प्रधान परिवर्तन हुआ था कि 'राज्य का केन्द्र तथा शक्ति क्राउन के स्थान पर लोकसभा बन गई थी'। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि १८३२ के पश्चात् ब्रिटिश संविधान में सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है कि 'यह केन्द्र तथा शक्ति संसद के स्थान पर केबिनेट बनती जा रही है और केबिनेट सीधे निर्वाचकों के नियंत्रण के अधीन होती है, उनके निर्वाचित प्रतिनिधियो के नियंत्रण के अधीन नहीं होती'।* केबिनेट का बढ़ता हुआ आधिपत्य शायद गत अर्धशताब्दी की सबसे महत्त्वपूर्ण राजनैतिक घटना है। उसके बहुत से परिणाम हुए हैं जिन मे से अधिक महत्त्वपूर्ण परिणामों का वर्णन नीचे किया जायेगा।

---

* Sidney Low : *op. cit.*, page 53.

**संसद पर केबिनेट के आधिपत्य से लाभ तथा हानियाँ—** पहली बात तो यह है कि विधि-कार्य में इसके कारण संसद को अखण्ड नेतृत्व प्राप्त हो गया है, जिसकी तुलना यूरोप तथा अमरीकी राज्यों के विभाजित तथा अस्थिर नेतृत्व से की जा सकती है। संसद् का विधान-कार्य-क्रम प्रत्येक सत्र में केबिनेट बनाती है और बहुमत की सहायता से पारित करवाती है। यूरोप तथा अमरीका के समान उसे रोका नहीं जा सकता तथा उसमें परिवर्तन करके उसे बिगाड़ा नहीं जा सकता। दूसरी बात यह है कि इस से ब्रिटेन के वित्तीय कार्यक्रम में सुसङ्गठितता तथा एकता आ गई है। इस विषय पर पहले ही काफी बताया जा चुका है। तीसरी बात यह है कि इसी के कारण ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल काफी स्थिर होते हैं जिसकी तुलना भी फ्रांस की शीघ्र बदलने वाली सरकारों से की जा सकती है। निस्सन्देह ब्रिटेन में केबिनेट प्रणाली जिस प्रकार चल रही है उससे उस देश को बहुत लाभ हैं। किन्तु उसके साथ ही साथ कई हानियां भी हैं। पहली हानि तो यह है कि इससे विधायी तथा अन्य कार्यों में संसद् की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई है, जिससे उसको प्रतिष्ठा तथा सम्मान में कमी हो गई है। केबिनेट की सत्ता ज्यों ज्यों बढ़ी है उतनी ही संसद् की घटी है। दूसरी बात यह है कि कुछ सदस्यों के अतिरिक्त जो आगे बैठते हैं अन्य साधारण सदस्य, जो पीछे बैठते हैं, संसद की कार्यवाही में वैसी दिलचस्पी नहीं लेते जैसी वे पहले लेते थे; उनको दिलचस्पी सभा के कार्य में दिन प्रति दिन कम होती जा रही है। इसके कई कारण हैं, सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि वे समझने लगे हैं कि वाद-विवाद व्यर्थ है, उसका विचाराधीन विधेयक के रूप पर अथवा भाग्य पर कोई प्रभाव पड़ेगा ही नहीं। औसत सदस्य को यही भावना है कि विधान-कार्य में उसका प्रभाव उतना ही है जितना बाहर के किसी व्यक्ति का। इस बात में फ्रांस के चेम्बर आफ डेपुटीज या अमरीका की प्रतिनिधि सभा के सदस्य का लोकसभा के सदस्य से कहीं अधिक प्रभाव होता है। फ्रांस तथा अमरीका का सदस्य अधिक स्वतंत्र होता है तथा अपने स्वतत्र कार्य द्वारा बहस में या मतदान में पॉसा पलटने में सहायक हो सकता है। ब्रिटेन की लोकसभा में गैर-सरकारी सदस्य की कार्य-स्वतन्त्रता जितनी कम हो गई है वह आश्चर्यजनक है; वैसा उदाहरण तानाशाही वाले देशों के अतिरिक्त कहीं भी मिलना कठिन है। केबिनेट के आधिपत्य का एक परिणाम यह है कि विधि-निर्माण में ले दे कर समझौता नहीं किया जाता, वरन् बहुमत दल के सचेतक (Whip) के बल पर सब निर्णय किये जाते हैं। चाहे विरोधी दलों के विचार कितने ही उग्र या दृढ़ क्यों न हों वे सरकार को उन्हें स्वीकार करने के लिये तनिक भी बाध्य नहीं कर सकते। चाहे श्रम दल कितना ही घोर विरोध करे, रूढ़िवादी सरकार फिर भी ऐसा नियम बना सकती है कि हड़तालें करना अवैध है, और चाहे रूढ़िवादी कितना ही विरोध क्यों न करें श्रम सरकार उद्योगों

का समाजीकरण कर सकती है। केवल बहुमत की शक्ति से विधि-निर्माण में कई दोष आ जाते हैं, और ग्रेट ब्रिटेन में उनका कोई इलाज नहीं है तथा कोई रोक थाम नहीं है। केबिनेट के बढ़ते हुए आधिपत्य पर एक ही रोक है, वह है जनमत।

इस महत्त्वपूर्ण राजनैतिक विकास का एक और परिणाम है जिसे हम न गुण ही कह सकते हैं और न अवगुण ही। वह यह है कि राजनैतिक प्रश्नों की मुख्य चर्चा संसद् की बजाय पत्र-पत्रिकाओं में होती है। पत्र-पत्रिकाओं में केबिनेट की नीतियों और कार्यों की कटु आलोचना होती है तो उसका केबिनेट पर जितना जल्दी प्रभाव पड़ता है उतना लोकसभा में विरोधी दल के सदस्यों की वक्तृताओं का नहीं पड़ता। दूसरे शब्दों में संसद् के नियन्त्रण का स्थान अब जनमत ने ले लिया है। इससे यह भी भावना उत्पन्न हो गई है कि नीति के मुख्य निर्णय करने से पहले राष्ट्र को अवसर मिलना चाहिये कि वह साधारण निर्वाचन में अपने मत को प्रकट कर सके।

**इस परिवर्तन के कारण** — लोकसभा के स्थान पर राज्य का केन्द्र और शक्ति केबिनेट बन जाने का प्रधान कारण यह है कि दल का अनुशासन अधिक पूर्ण तथा कठोर हो गया है जो सुधार अधिनियमों के फलस्वरूप मताधिकार विस्तृत हो जाने से आवश्यक हुआ है। ब्रिटेन में राजनैतिक दल तो गत शताब्दी के आरंभ में भी थे और उससे पहले भी थे किन्तु उनका कोई पूर्ण और सुगठित संगठन नहीं था। उम्मीदवार अपने गुणों के आधार पर ही खड़े होते थे, अपने निर्वाचन-क्षेत्रों में जाते थे, अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे तथा अपना खर्च आप करते थे। वे इस बात के लिये वचन-बद्ध नहीं होते थे कि सब परिस्थितियों में एक सरकार का ही समर्थन करेंगे तथा दूसरी की आलोचना ही करेंगे। लोकसभा में काफी सदस्य स्वतंत्र रूप से मत देते थे और कभी इधर तो कभी उधर भी मत दे देते थे। उन दिनों सरकारों का अधिकार बहुत नहीं होता था अतः बहुत कुछ वाद-विवाद पर निर्भर होता था और सरकार को लोकसभा का निर्णय स्वीकार करना पड़ता था। किन्तु अब परिस्थितियां बदल गई हैं। विभिन्न राजनैतिक दल ही उम्मीदवारों को चुनते हैं, वे ही मतदाताओं के सामने अपने सिद्धान्तों तथा कार्य-क्रम को पेश करते हैं, और मतदाता भी उम्मीदवारों के नाम पर मत नहीं देते वरन् उन दलों के नाम पर मत देते हैं जिनका समर्थन वे उम्मीदवार हर हालत में करेंगे। दल का अनुशासन इतना कठोर बन गया है कि कोई सदस्य अपने दल के विरुद्ध मत नहीं दे सकता चाहे वह किसी प्रश्न पर कितना भी मतभेद क्यों न रखता हो। उसे सचेतक (Whip) के निदेश अनुसार मत देना होता है अथवा उस दल से त्यागपत्र देना होता है जिसका अर्थ है कि वह

या तो राजनैतिक जीवन से संन्यास लेले या किसी अन्य दल में जा मिले। अन' आजकल सदस्य स्वतन्त्र रूप से या समय समय पर भिन्न भिन्न दलों को मत नहीं देते जैसा कि राजनैतिक दलों के सुसंगठित होने से पहले होता था। सरकार अपने बहुमत के भरोसे संसद् की बात को ठुकरा देती है। इसका परिणाम यह है कि एक दल के बहुमत पर निर्भर केबिनेट को सभा से डरने की जरूरत नहीं है, वह मंत्रिमंडल सुरक्षित है।

लोकसभा पर केबिनेट के नियंत्रण का दूसरा मुख्य कारण यह है कि जब भी किसी महत्त्वपूर्ण मामले पर दोनों में मतभेद हो जाये, तभी केबिनेट लोकसभा का विघटन करके देश से अपील कर सकती है। सरकार सदा अपने दल के हठी सदस्यों से कह सकती है, "या तो हमारे विचारों को स्वीकार करो या विघटन के लिये तैयार हो जाओ"। फ्रांस में केबिनेट की तानाशाही नहीं है क्योंकि वहाँ के केबिनेट को इतनी शक्ति नहीं है कि वह चेम्बर ऑफ डेपुटीज के जीवन-मरण का निर्णय कर सके और वहां दल का अनुशासन इतना कठोर नहीं है। जब तक केबिनेट के पास यह विघटन का शस्त्र है तब तक संसदीय नियंत्रण बेकार रहेगा।

केबिनेट के आधिपत्य के एक और कारण का भी निर्देश किया जा सकता है। केबिनेट ने प्रशासन की छोटी से छोटी बात का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है, और प्रशासन या वित्त-नीति की प्रत्येक आलोचना को वह विश्वास का प्रश्न बना लेती है और अपने दल की पूरी शक्ति से उसका विरोध करती है। इससे स्वतंत्र रूप से कोई चर्चा नहीं हो सकती। सभा प्रशासन पर उचित नियंत्रण नहीं रख सकती। आखिर यह भी बात है कि लोकसभा को जो काम करना पड़ता है वह भी बहुत भारी है; सभा के पास अपने औपचारिक कर्त्तव्य, विविध प्रकार के काम ही बहुत हैं। प्राय: काम इकट्ठा हो जाता है और सभा को कई बातें मन्त्रियों पर छोड़नी पड़ जाती हैं।

केबिनेट का लोकसभा पर जो विस्तृत नियंत्रण है वह अवांछित तथा हानिकर है। इससे थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में अत्यधिक शक्ति आ जाती है और बहुमत का स्वेच्छाचार (Despotism) स्थापित हो जाता है। सभा सरकार पर वह नियंत्रण रखने में असमर्थ हो जाती है जो प्रशासन की कुशलता तथा सफलता के ही लिये आवश्यक नहीं है वरन् देश में सच्ची स्वतंत्रता और लोकतन्त्र को बनाये रखने के लिये भी आवश्यक है। यह कथन सत्य से दूर नहीं है कि ग्रेट ब्रिटेन में केबिनेट की तानाशाही है जिसे केवल जरा प्रचार का भय है तथा जिस पर जरा जनमत का दबाव है।

**विरोधी दल का कार्य**— ब्रिटिश संसद् के उपरोक्त वर्णन को पूर्ण बनाने

के लिये यह बताना भी आवश्यक है कि ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था मे विरोधी दल का क्या स्थान है। केबिनेट के या संसदीय शासन-व्यवस्था के समुचित रूप से कार्य करने के लिये 'विरोधी दल' आवश्यक है। विरोधी दल जितना शक्तिशाली होता है उतनी ही शासन पर रोकथाम रहती है और प्रशासन उतनी ही कुशलता से चलता है। ऊपर बताया जा चुका है कि संसद् का एक प्रधान कार्य यह भी है कि वह पूछताछ तथा आलोचना करती रहे, जिससे कि मंत्रियों की योग्यता का पता लगता रहे और वे तथा उनके अधीनस्थ अधिकारी ठीक कार्य करते रहे। यह कार्य मुख्यतः विरोधी दल करता है। विरोधी दल इस काम को जितनी अच्छी तरह से पूरा कर पाता है, उतनी ही अच्छी तरह उस देश मे लोकतन्त्र सफल रहता है। संसदीय प्रणाली के शासन के सफल कार्य करने के लिये सरकार बनाने वाला बहुमत दल जितना आवश्यक है उतना ही विरोधी दल भी है। फासिज्म तथा नात्सीवाद को और साम्यवाद को भी लोकतन्त्र इसीलिये नहीं समझा जाता कि उनमें विरोधी दल नहीं होता।❀ ब्रिटिश सविधान के सिद्धान्त तथा व्यवस्था मे यह सुन्दर परम्परा है कि अल्पसंख्यक यह सत्य स्वीकार करते हैं कि बहुसंख्यकों को शासन करने का अधिकार है और बहुसंख्यक स्वीकार करते हैं कि अल्पसंख्यकों को आलोचना करने का अधिकार है। यह बात मनोरंजक है कि संसद् में अल्पमतों को सरकार का शत्रु नहीं समझा जाता वरन् उन्हें राजा महोदय का निष्ठावान् विरोधी दल माना जाता है। निष्ठावान् (Loyal) शब्द से पता लगता है कि विरोधी दल को ब्रिटिश पद्धति का अभिन्न अङ्ग माना जाता है।

अब क्योंकि विरोधी दल का ब्रिटिश पद्धति मे एक महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य स्थान है, अत. उसके कर्मों को स्पष्टतः समझना भी आवश्यक है। कभी कभी यह कहा जाता है कि उसका काम सरकार का विरोध करना तथा उसे हटा देना है। इसका प्रायः यही आशय समझा जाता है कि उसे सब संभव अवसरों पर सरकार का विरोध करना चाहिये, यथाशक्ति उसके काम मे बाधा डालनी चाहिये जिससे कि वह बदनाम हो जाये और हट जाये। यह ग़लत और हानिकारक सिद्धान्त है। इसका असली काम सरकार के काम मे बाधा डालना नहीं है वरन् उसे बाध्य करना है कि वह अपनी नीति का स्पष्ट निर्माण करे, और उनके परिणामों की ठीक ठीक व्याख्या करे, और उसे ऐसा अवसर देना है कि वह विरोधी आलोचना के उत्तर में अपनी

---

❀ जेनिंग्स अपने 'ब्रिटिश सविधान' के पृष्ठ ८२ पर लिखते हैं : "हम स्वतन्त्र इसलिये हैं कि हम स्वतन्त्र रूप से आलोचना कर सकते हैं और यदि हमारी आलोचना का प्रभाव पड जाये तो सरकार को हटने के लिये बाध्य कर सकते हैं ...... यदि यह पता लगाना हो कि कोई लोग स्वतन्त्र हैं या नहीं तो केवल यही पूछिये कि क्या वहां कोई विरोधी दल है और है तो कहां है।"

सफाई पेश करे और युक्तिपूर्वक सब बातों को समझाये। दूसरे शब्दों में, विरोधी दल से ऐसी आलोचना करने की आशा की जाती है जिससे सरकार सचेत रहे तथा उसका परीक्षण हो जाये। यह प्रयोजन तभी सिद्ध हो सकता है जबकि सरकार सब आलोचनाओं का उत्तर युक्तियों से दे, शक्ति-प्रदर्शन तथा गुप्त पुलिस से नहीं। विरोधी दल का सच्चा काम तब समझ में आता है जब उसे वैकल्पिक (Alternative) सरकार समझा जाये। जब किसी कारण से बहुसंख्यक दल पद स्वीकार न कर सके, तब विरोधी दल को सरकार बनाने का काम सौंपा जाता है। ग्रेट ब्रिटेन की द्विदल पद्धति में तो ऐसा तभी होता है जब निर्वाचक-गण पिछली सरकार में विश्वास प्रकट न करें। ऐसा बहुत कम होता है कि विरोधी दल इतना सबल हो जाये कि वह सरकार को लोकसभा के प्रांगण में ही हरा सके। अतः उसके सब प्रयत्नों का उद्देश्य मतदाताओं के विचारों में परिवर्तन करना ही रहता है। अगले निर्वाचनों में थोड़े से मतों के हेर फेर से ही विरोधी दल को शक्ति मिल सकती है। वह सरकार को प्रायः उस समय तक हटाने की आशा नहीं कर सकता जब तक कि उसका बहुमत है। सरकार भी यही प्रयत्न करती है कि डांवाडोल मतदाताओं को अपने साथ ले ले। अत. अल्पसंख्यक दल तथा बहुसंख्यक दल के मध्य संघर्ष संसद में नहीं होता वरन् देशव्यापी अल्पसंख्यक दल के अस्तित्व के कारण बहुसंख्यक दल को ऐसा व्यवहार करना पड़ता है कि जनमत उसके विरुद्ध न हो जाये। विरोधी दल की अनुपस्थिति में ऐसी अच्छी रोक थाम नहीं रहेगी और लोकतन्त्र जोखम में पड़ जायेगा। अतः ग्रेट ब्रिटेन में विरोधी दल को व्यर्थ की आफत समझ कर सहन नहीं किया जाता है, वरन् वह संविधान का सुनिश्चित तथा आवश्यक अङ्ग है। इसी कारण उसे "राजा महोदय का विरोधी दल" कहते हैं और विरोधी दल के नेता को २००० पाउंड का वेतन मिलता है, जो सार्वजनिक कोष में से दिया जाता है, जिससे कि 'वह अपनी आजीविका कमाने के झंझट में न पड़कर अपने सार्वजनिक कार्य को कर सके।'*

---

## अध्याय ६

# राजनैतिक दल तथा दलीय व्यवस्था

**विषय प्रवेश** — यद्यपि सांविधानिक विधि में राजनैतिक दलों को शासन से पृथक तथा स्वतंत्र अंग के रूप में मान्यता नहीं दी गई है, फिर भी ग्रेट ब्रिटेन में शासन व्यवस्था के काम से उनका ऐसा गहरा सम्बन्ध है कि उन पर विचार करना

* Jennings : *The British Constitution*, 3rd Edition, Page 81.

अत्यावश्यक है। पिछले अध्याय मे बताया जा चुका है कि गत सत्तर अस्सी वर्षों मे दलों के अनुशासन के ही कारण लोकसभा पर केबिनेट का आधिपत्य बढ़ता जा रहा है। दलों के अनुशासन के कारण ही संसद और सरकार के सम्बन्ध मे तथा जनता और संसद के सम्बन्ध मे ऐसा भारी परिवर्तन हो गया है, अतः उस पर ध्यान से विचार करना आवश्यक है।

**दलीय प्रणाली का प्रभाव** — एक लेखक ने एक बार लिखा था कि ब्रिटेन की संसदीय व्यवस्था पूर्ण दलीय शासन है। उसने शायद इस विशेषण 'पूर्ण' का प्रयोग ग्रेट ब्रिटेन तथा अन्य देशों की दलीय व्यवस्था में अन्तर को समझाने के लिये किया था। ब्रिटेन में दल का शासन इतना कड़ा होता है जितना फ्रांस, स्विट्ज़रलैंड और संयुक्त राज्य अमरीका तक मे नहीं होता। ग्रेट ब्रिटेन मे शासन किस प्रकार का होगा यह भी दलीय व्यवस्था से ही निर्धारित होता है तथा कई सांविधानिक अभिसमय भी उसी पर निर्भर हैं। 'दल का नेता होने के कारण ही प्रधान मन्त्री को इतनी शक्ति प्राप्त होती है; दल की समान सदस्यता के कारण ही केबिनेट में एकता तथा उद्देश्य की एकता होती है; लोकसभा मे समर्थन करने वाले सङ्गठित दल के कारण ही केबिनेट अपना काम चलाती है तथा (जब दल का बहुमत होता है) वह अपना पूर्ण आधिपत्य जमाये रखती है, और इस तानाशाही पर एकमात्र यह भय नियन्त्रण रखता है कि किसी भयानक भूल के कारण कहीं दल कमजोर होकर अगले निर्वाचनों मे गिर न जाये।'* यदि ब्रिटेन में दो के स्थान पर तीन या अधिक दल हों और उनके कारण मिश्रित सरकारें बनानी पड़ें तो ब्रिटेन की सारी शासन-व्यवस्था की रूपरेखा ही बदल जायेगी। इस समय ऐसी स्थिति है कि जिस दल को बहुमत प्राप्त हो जाता है वह अपने ही समर्थकों की सरकार बनाता है तथा अन्य दलों के सदस्यों को जरा भी शामिल नहीं करता। अल्पसंख्यक दल (या दलों) का सदा यही काम रहता है कि वह लोकसभा मे तथा समस्त देश मे इस आशा से संघर्ष करता रहे कि कभी वह बहुमत प्राप्त करके अपनी सरकार बना सकेगा। दलों के संघर्ष का ही प्रभाव देश के समस्त राजनैतिक जीवन पर दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक दल अपने सम्पूर्ण साधनों से विभिन्न निर्वाचन-क्षेत्रों में मतदाताओं का संगठन करता है और उनकी सहानुभूति तथा समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। मंचों, पत्र-पत्रिकाओं, जलूसों आदि का स्वतंत्र प्रयोग किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन में ही ये बातें सदा चलती रहती हैं, फ्रांस तथा स्विट्ज़रलैंड आदि देशों मे वे सदा नजर नहीं आतीं।

**१८३२ से पूर्व राजनैतिक दल**— राजनैतिक दल कोई नई वस्तु नहीं हैं,

* Ramsay Muir : *How Britain is Governed*, page 116.

वे तो आदिकाल से चले आ रहे हैं। जिन व्यक्तियों का एक ही उद्देश्य होता है तथा एक ही विचारधारा होती है, वे अपने समान उद्देश्य को पूरा करने के लिये स्वभावतः मिल कर एक हो जाते हैं। अतः राजनैतिक दल सब देशों में और सदा ही होते थे— प्राचीन रोम में पेट्रीशियन तथा प्लेबियन दल थे, मध्यकालीन जर्मन में ग्यूल्फ तथा घिवेलाइन दल थे। इङ्गलिस्तान में वे लेनकेस्ट्रियन तथा यारकिस्टों के नाम से मध्यकाल में वर्तमान थे, फिर स्टूअर्ट काल में वे केवेलियर तथा राउंडहैड कहलाये, तत्पश्चात् वे उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में व्हिग तथा टोरी दल के नामों से प्रसिद्ध हुए और उसी शताब्दी के उत्तरार्ध में उनके नाम उदार तथा रूढ़िवादी पड़ गये। हमें उनके पूरे प्रारम्भिक इतिहास को नहीं लेना है वरन् उनके विषय में दो बातों की ओर ध्यान देना है। १८३२ के सुधार अधिनियम के पारित होने तक दलों की स्थिति आज से बिल्कुल भिन्न थी। १८३२ से पहले उन दो प्रकार के वर्गों में विरोध था जिनमें से एक तो क्राउन के परमाधिकार (Prerogative) का समर्थन करता था और दूसरा संसद् के अधिकार और सत्ता को बनाये रखना चाहता था। वे दल आर्थिक आधार पर नहीं बने थे, उनकी नीतियां भिन्न भिन्न नहीं थीं, और वे उन्हें पूरा करने के लिये मतदाताओं का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते थे। दूसरी बात यह है कि १८६७ से पहले, वे आज के समान सुसङ्गठित नहीं थे, उनको कोई केन्द्रीय संस्था नहीं थी जो उम्मीदवारों को चुनती या उनकी सहायता करती और उन पर संसद् में नियन्त्रण रखती। उम्मीदवार अपनी व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर खड़े होते थे अपने लिये प्रचार करते थे, अपना खर्च स्वय करते थे, और लोकसभा में किसी प्रश्न पर वाद-विवाद होता तो उन्हें स्वतंत्रता थी कि वे किसी भी ओर मिल सकते थे। अतः स्वतंत्र मतदान बहुत होता था और ऐसा भी बहुत होता था कि कोई सदस्य कभी इधर तो कभी उधर मत दे दे। व्यक्तिगत रूप से सदस्यों को अपने कार्य की स्वतंत्रता थी। किन्तु अब समस्त स्थिति बदल गई है। दल की संस्थाएँ ही उम्मीदवारों को छांट कर खड़ा करती हैं, उनके लिये प्रचार-कार्य करती हैं और मतदाताओं को मतदान-स्थान पर लाने का प्रबन्ध करती हैं। जो उम्मीदवार किसी दल के नाम पर खड़ा नहीं होता उसके सफल होने की बहुत कम संभावना होती है। निर्वाचन में सफलता के लिये दलीय संगठन पर इतने निर्भर होने के कारण ही, ससद् में चुने जाने पर सदस्यों को अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बलिदान करना पड़ता है और दल के अनुशासन को मानना पड़ता है, जो बहुत कठोर बन गया है। इस महान् परिवर्तन के कारणों पर विचार करना रुचिकर होगा तथा महत्त्वपूर्ण भी है।

पूर्ण दलीय सगठनों के विकास तथा उनके अनुशासन की ओर बढ़ती हुई कठोरता के दो मुख्य कारण हैं। एक तो यह है कि १८३२ तथा १८६७ के सुधार

अधिनियमों द्वारा मतदाताओं की संख्या बहुत बढ़ गई। दूसरा कारण यह है कि १८६७ के सुधार अधिनियम द्वारा जब लगभग १० लाख शहरी श्रमिकों को मताधिकार मिला, ठीक उसी समय दो महान् व्यक्ति, ग्लेड्सटन तथा डिजरायली राजनैतिक क्षेत्र में आये और वे सम्पूर्ण राजनीति पर छा गये।

यह आसानी से समझा जा सकता है कि निर्वाचकों के बढ़ने पर किस प्रकार दलीय संगठन अधिक सुसंगठित होता जाता है तथा निर्वाचित सदस्यों पर दल का अधिकाधिक नियंत्रण होता जाता है। मताधिकार के विस्तार होने के साथ साथ नए व्यक्तियों के नामों को निर्वाचन नामावली में लिखवाने का काम, उनमें प्रचार करके उन्हें मत देने के लिये बुलवाने का काम, निर्वाचन आन्दोलन तथा उसका व्यय अवश्य ही बढ़ जायेगा। व्यक्तिगत उम्मीदवार देखते हैं कि वे बाहरी सहायता के बिना सब कार्य नहीं कर सकते। एक दल की केन्द्रीय संस्था विभिन्न निर्वाचन-क्षेत्रों में अपने वैतनिक नौकरों द्वारा यह सब कार्य अधिक अच्छी तरह करवा सकती है। वह उनके लिये साहित्य देती है, वक्ताओं का प्रबन्ध करती है और उस प्रयोजन के लिये अधिक आवश्यक धन की व्यवस्था करती है। वह दल की केन्द्रिय संस्था उनके लिये धन देती है तथा उम्मीदवारों की सहायता करती है अतः उम्मीदवारों को पसंद करने के विषय में भी उसका काफी हाथ होता है तथा वह सभा में भी उनके कामों पर अधिक नियंत्रण रख सकती है। इस प्रकार दल का सगठन अधिकाधिक सुसंगठित होता जाता है तथा उसका अनुशासन अधिक कठोर बनता जाता है। इस प्रवृत्ति का एक अच्छा उदाहरण हमें अपने देश में ही मिल सकता है भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सुसंगठित केन्द्रीय तथा प्रांतीय संस्थाएं थीं और वह अपने सदस्यों को कठोर अनुशासन में रखती थीं (यद्यपि अभी हाल में उसका सगठन कुछ कमजोर पड़ गया है)। इंगलैंड में यह संगठन बहुत धीरे धीरे स्थापित हुआ, जो अदृश्य सा था। इसका विस्तार से वर्णन करना जरूरी है।* इसके विकास में इस बात से सहायता मिली कि उपयुक्त समय पर दो महान् व्यक्ति ग्लेड्सटन तथा डिजरायली राजनैतिक-क्षेत्र में आये। मतदाताओं ने व्यक्तिगत उम्मीदवारों के लिये मत देने की बजाय उन उम्मीदवारों के लिये मत देना आसान समझा जिनसे आशा की जा सकती थी कि वे सब परिस्थितियों में किसी नेता विशेष का समर्थन करेंगे। हमारे देश में भी स्वतंत्रता मिलने से पहले करोड़ों मतदाताओं ने किसी व्यक्तिगत उम्मीदवार को देख कर मत नहीं दिये वरन् महात्मा गाँधी तथा जवाहर लाल नेहरू के नाम पर उन्हें मत दिये। यह स्वाभाविक है कि निर्वाचनों के समय दल के नेता का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है।

---

*जो इस विषय पर अधिक जानना चाहते हैं वे Ramsay Muir के *How Britain is Governed* का अध्याय ४ पढ़ें।

**ब्रिटिश राजनैतिक दल—** ग्रेट ब्रिटेन में ही आधुनिक समय में सबसे पहले उत्तरदायी सरकार की स्थापना हुई थी, वही राजनैतिक दलों का प्राचीन सदन है। राजनैतिक दल का अर्थ आज है "ऐसे लोगों का वर्ग जो सार्वजनिक कल्याण के अपने विचारों को अमल में लाना चाहते हैं।" संसदीय प्रणाली के लिये यह आवश्यक है कि कम से कम दो मुख्य राजनैतिक दल हों, बहुमत दल की सरकार बन जाती है तथा अल्पमत दल विरोधी दल का रूप ले लेता है। यदि किसी देश में केवल दो ही प्रधान राजनैतिक दल हो तो वह पद्धति द्विदल प्रणाली कहलाती है। इंगलिस्तान में परम्परा से द्विदल पद्धति है, यद्यपि यूरोप के अनेक देशों में बहुदल प्रणाली प्रचलित है।

ग्रेट ब्रिटेन में श्रमदल के उत्थान से पहले, रूढ़िवादियों तथा उदार दल वालों में ही शक्ति के लिये संघर्ष होता था; रूढ़िवादी जरा सुधरे हुए रूप में 'टोरी' परम्परा को बनाये रखते थे तथा उदारदल वाले 'व्हिग' परम्परा को सुधरे हुए रूप में निबाहते थे। कभी एक दल को शक्ति मिल जाती थी तो कभी दूसरे दल को। जब श्रम दल का उत्थान हुआ तथा उसे १९२२ में १४२ स्थान, १९२३ में १९१ स्थान, और १९२४ में १५१ स्थान मिल गये तो द्विदल पद्धति समाप्त हो गई। १९२३ में लोकसभा में तीन दल थे और किसी का पूर्ण बहुमत नहीं था। देश को एक नया अनुभव हुआ कि श्रम दल की सरकार बन गई यद्यपि उसका बहुमत नहीं था। वह तभी तक रह सकती थी जब तक कि उदार दल उसका समर्थन करने के लिये तैयार था। दूसरे शब्दों में द्विदल प्रणाली के समाप्त होने से अल्पमत सरकार बन गई थी। यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही, क्योंकि अगले सामान्य निर्वाचन में रूढ़िवादी दल को बहुमत प्राप्त हो गया और वह स्थिर सरकार बनाने में समर्थ हो गया। उसे जो अधिक स्थान मिले थे, उतने उदारों को कम मिले थे। १९२९ के निर्वाचनों में १९२३ की ही स्थिति फिर उत्पन्न हो गई; किसी दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला। फिर श्रम दल की सरकार बन गई और उदार दल के हाथ में शक्ति-संतुलन था। वह सरकार थोड़े ही समय तक रह सकी, १९३१ में उसके स्थान पर राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो गई। उसके पश्चात् राष्ट्रीय सरकार के नाम से रूढ़िवादी ही शासन करते रहे। १९४५ के सामान्य निर्वाचन में पुरानी द्विदल पद्धति फिर उभर आई, श्रमदल की सरकार बन गई और रूढ़िवादियों का विरोधी दल बन गया। उदार दल बहुत छोटा सा रह गया और यह कहा जा सकता है कि उसके लिये फिर एक प्रधान दल की स्थिति को प्राप्त करना बहुत कठिन काम होगा। अतएव, व्यवहार में, ग्रेट ब्रिटेन में दो ही राजनैतिक दल हैं जिनकी सरकार बन सकती है। १९५० के निर्वाचनों में ये दोनों दल लगभग बराबर शक्ति में रहे। उदार दल तथा रूढ़िवादी दोनों मिल कर श्रम दल से पांच

सात स्थान कम प्राप्त कर सके, अतः श्रमदल की ही सरकार बनी रही, तथा रूढ़िवादी विरोधी दल बन गया। उदार दल को इस बार भी नगण्य स्थान मिले, किन्तु उदार दल का ऐतिहासिक महत्त्व है। अतः ब्रिटेन के राजनैतिक दलों के इतिहास में उसका भी उल्लेख करना आवश्यक होगा। अब हम तीनों दलों के मुख्य सिद्धान्तों का विवरण देंगे। यह याद रखना चाहिए कि ब्रिटिश राजनैतिक दल उन विचारों पर आधारित हैं जो बदल सकते हैं; धर्म, जाति, भाषा या वंश आदि बातों पर नहीं, जो सामान्यतः बदलते नहीं। वे दल 'कैथोलिक' हैं क्योंकि वे धर्म, आर्थिक स्थिति, अथवा जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति को अपनी सदस्यता से नहीं रोकते।

**रूढ़िवादी दल :—** यह दल गत शताब्दी के प्रथम २५ वर्षों में तथा उनसे पूर्व 'टोरी' दल कहलाता था, अब वह रूढ़िवादी दल कहलाता है जो शब्द उसके गुणों का ठीक ठीक परिचायक है। इसका अर्थ यह है कि वह दल उन संस्थाओं, प्रथाओं तथा विचारधाराओं को बनाये रखना चाहता है जो बहुत समय से प्रचलित हैं तथा आदर पाती रही हैं। स्वभावतः इस दल को वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन करना अच्छा नहीं लगता और वह उसका सदा विरोध करता रहा है। किन्तु परिवर्तन तो जीवन का नियम ही है और कोई भी वस्तु स्थिर नहीं रह सकती, अतः रूढ़िवाद का यह अर्थ है कि परिवर्तन शनैः शनैः तथा सावधानी से होना चाहिये, और केवल तभी होना चाहिए जबकि उसकी आवश्यकता पूर्णतः सिद्ध हो जाये। यह उन लोगों का दृष्टिकोण है जो परम्पराओं का बहुत सम्मान करते हैं और निहित स्वार्थों तथा विशेषाधिकारों को स्थापित व्यवस्था का अङ्ग मानकर स्वीकार करते हैं। इससे हम यह समझ सकते हैं कि किस प्रकार के व्यक्ति और किस प्रकार के सामाजिक वर्ग रूढ़िवादी दल का समर्थन करते होंगे, और इस दल के मुख्य उद्देश्य क्या हो सकते हैं। उद्देश्य के विषय में यह कहा जा सकता है कि रूढ़िवादी पूंजीवाद के ढांचे को बनाये रखना चाहते हैं। दूसरी वस्तु जिसे वे बनाये रखना चाहते हैं वह ब्रिटिश साम्राज्य है। वे जिन राजनैतिक संस्थाओं को बनाये रखना चाहते हैं उनमें मुख्य ये हैं : क्राउन के परमाधिकार (Prerogative), लार्डसभा की स्वतंत्रता, इङ्गलिस्तान के गिरजे (Church) की विशेष स्थिति, शक्तिशाली शासक वर्ग, राष्ट्रीय एकता, ग़ैर-सरकारी सम्पत्ति की राज्य के हस्तक्षेप से विमुक्ति, बड़े जमींदारों तथा उद्योगपतियों के स्वार्थ। रूढ़िवादियों के हृदय में क्राउन तथा राजपरिवार का जो सम्मान है वह बहुत ज्यादा है। वे उन्हें राष्ट्रीय एकता तथा दूरस्थ साम्राज्य का प्रतीक समझते हैं। उदार दल ने आयर को स्वशासन दिया तब रूढ़िवादियों ने उसका बहुत विरोध किया था तथा भारत और उपनिवेशों (Colonies) में स्वायत्तता (Autonomy) की स्थापना का भी वे विरोध करते रहे थे। वे

अपनी विदेश नीति में कट्टर साम्राज्यवादी हैं तथा साम्राज्य के अन्तर्गत आ
अधिमानों (Preference) तथा संयुक्त शस्त्रीकरण का वे प्रवल समर्थन करते
उनका यह विश्वास तथा सिद्धान्त है कि प्रवल ब्रिटिश साम्राज्य विश्व-श
के लिये सर्वोत्तम प्रत्याभूति (Guarantee) है। उनका यह पूर्ण विश्वास है
एक शक्तिशाली तथा विशेषाधिकार-प्राप्त शासक वर्ग होना चाहिये क्योंकि उन्हे
यह योग्यता तथा अधिकार प्राप्त है कि जनता की इच्छा से स्वतन्त्र होकर शा
कर सकें। यह भी एक कारण है कि रूढ़िवादी सदा यह कहते रहे हैं कि लार्ड
को वे शक्तियां वापस दे दी जायें जो संसद अधिनियम द्वारा उससे छीन
गई थीं।

ऊपर के विवरण से यह समझना आसान है कि रूढ़िवादी दल के सम
तथा भक्त धनी-मानी, पदवीप्राप्त और सामाजिक प्रतिष्ठाप्राप्त लोगों में ही मिलेंगे। उ
सदस्यों में वे लोग हैं जो यह समझते हैं कि समाजवाद से उनके हितों को ह
पहुँचेगी, जैसे रईस, जमींदार, उद्योगपति, धनी, साहूकार, आंग्ल-गिरजे के सद
विश्वविद्यालयों के अधिकांश स्नातक (Graduates), समृद्धिशील व्यापारी
व्यवसायी। किन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि उसमें सब पूंजीपति ही हैं, द
हैं ही नहीं। रूढ़िवादियों का पत्र-पत्रिकाओं पर बहुत नियंत्रण है अतः उनका जन
पर जितना प्रभाव होता है उतना अन्य दलों का नहीं।

यद्यपि रूढ़िवादी दल ने स्थापित व्यवस्था का समर्थन किया था तथा उदार
द्वारा समय समय पर किये गये सुधारों का प्रायः विरोध किया था, फिर भी
ध्यान रहे कि कई बार उन्होंने सार्वजनिक मामलों में उदार दल से भी अ
उदारता दिखाई थी और कुछ सुधार के विधेयक पारित किये थे। १८६७ के म
सुधार अधिनियम को तथा १८८८ में काउन्टी शासन की पुनर्रचना करने
लोकतंत्रीकरण करने के विधेयकों को रूढ़िवादी दल ने ही पारित किया था। दू
बात, यह याद रखना चाहिये कि दल में समस्त सदस्य एक से ही नहीं हैं जैसा
प्रायः सोचा जाता है; रूढ़िवादी कहलाने वाले सब व्यक्ति परिवर्तन का
विरोध नहीं करते। रूढ़िवादी दल में ही वाम पक्ष, दक्षिण पक्ष तथा केन्द्रीय पक्ष
जैसे कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में पहले थे। 'वामपक्षी', जो प्रायः 'युवक रूढ़िवा
कहलाते हैं, दक्षिणपक्षियों से अधिक उदार होते हैं, दक्षिणपक्षी प्रायः 'डाइ-ह
अथवा 'अल्ट्रा-कन्जरवेटिव' कहलाते हैं। वामपक्षी कभी कभी श्रमदल वालों
समान हो जाते हैं। केवल यही अन्तर रह जाता है कि वामपक्षी-रूढ़िवादी पूंजीव
को तो बनाये रखना चाहते हैं परन्तु उस पर राज्य का अधिक नियंत्रण चाहते
जब कि श्रमदल उसको पूर्णतः समाप्त कर देना चाहता है। अधिकांश रूढ़िव
मध्य की विचारधारा के हैं जो वामपक्षी या दक्षिणपक्षी नहीं हैं। अब रूढ़िव

समय के साथ प्रगतिशील बनते जा रहे हैं तथा उन्होंने उन्नत सामाजिक विधान बनाये हैं।

**उदार दलः—** प्रधान दल के रूप मे श्रम दल के आने से पहले, उदार दल ही रूढ़िवादी दल का ऐतिहासिक विरोधी था, और जब रूढ़िवादी सरकार नहीं बनती थी तब उसकी ही सरकार बनती थी। उनके सिद्धान्तों तथा सामान्य दृष्टिकोणों मे भी बहुत अन्तर था। रूढ़िवादी प्राचीनकाल से जमी हुई व्यवस्था का समर्थन करते थे तथा उन प्रथाओं तथा विचारों को छोड़ना नहीं चाहते थे जो परंपरागत हो गये थे, किन्तु उदार दल वाले मनमाने शासन का विरोध करते थे। उदार दल का आरम्भ तब हुआ जब सुधारवादियों ने धार्मिक संघर्ष आरम्भ किये थे और यह दावा किया था कि धर्म मे भी वैयक्तिक निर्णय तथा विचार-स्वातन्त्र्य को स्थान मिलना चाहिये, और वह संघर्ष "राज्य के गिरजे" तथा मनमाने शासन के विरुद्ध आन्दोलन के रूप मे परिणत हो गया। ये ही इस दल के मूल्य सिद्धान्त रहे हैं। उदारवाद की भावना यह है कि 'नये अनुभव को स्वीकार किया जाय तथा स्वतन्त्र विकास का समर्थन किया जाये' अतः इस 'वाद' को समझना इतना सुगम नहीं है जितना रूढ़िवाद को समझना है। किन्तु सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि उदारदल व्यक्ति को राज्य से अधिक महत्त्व देता है, और उसका यह ख्याल है कि राज्य का उद्देश्य यही है कि वह अधिक सख्या मे पूर्ण मानवों का सृजन करे। इस प्रकार उसने निहित अधिकारों पर अधिक जोर न देकर मानव के अधिकारों पर अधिक बल दिया है। उदार वादी लोग परम्परा पर कम अड़ते हैं तथा वे जीवन की बदलती हुई स्थितियों के अनुसार सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थाओं को बदलने के लिये अधिक तैयार हैं। अतः वे शासन तथा उद्योग में वर्तमान स्थिति का बदलना चाहते हैं।

आर्थिक क्षेत्र में उदारदल की नीति यह थी कि उद्योग तथा वाणिज्ज को प्रोत्साहन देकर जनसाधारण को अधिकाधिक अवसर दिये जायें। वह स्वतत्र व्यापार तथा स्वतंत्र प्रतियोगिता (Free Competition) के पक्ष मे था। उदार दल छोटे पैमाने के कृषि तथा व्यापार की अधिक चिंता करता था, और औद्योगिक श्रमिकों की हालत को सुधारना चाहता था। विदेशी मामलों के क्षेत्र मे वह साम्राज्य में रहते हुए लोगों को अधिक अधिकार देना चाहता था। एक उदार दल के ही मंत्रिमंडल ने आयरलैंड को स्वशासन देने की प्रस्थापना की थी जिसका रूढ़िवादियों ने घोर विरोध किया था। उदारदल को 'व्यक्तिवाद, प्रगति तथा उन्नति का दल' कहा जा सकता है, और इसके विपरीत रूढ़िवादी लोग अपने आप को उन अधिकारों के संरक्षक समझते थे जो परंपरा के कारण पवित्र बन गये हैं।

किन्तु रूढ़िवाद तथा उदारवाद के मतभेद पर अधिक बल नहीं देना चाहिये। श्रमदल के उत्थान से उनके मतभेद बहुत कम हो गये हैं। आयर के प्रश्न पर ग्लेड्स्टन दल को अपने साथ नहीं चला सका। लगभग १०० उदार सदस्य उसका साथ छोड़ कर रूढ़िवादियों से मिल गये तथा स्वशासन विधेयक (Home Rule Bill) को परास्त कर दिया, जिसके फलस्वरूप मंत्रिमंडल को त्यागपत्र देना पड़ा। उस समय रूढ़िवादियों तथा विद्रोही उदारों मे जो मित्रता हुई थी वह स्थायी बन गई, और उस समय से रूढ़िवादी दल का नाम रूढ़िवादी तथा एकतावादी दल रख दिया गया। पूंजीवाद तथा समाजवाद के संघर्ष में, उदार दल का झुकाव पूंजीवाद की ही ओर अधिक होता है। वे समाजवाद को व्यक्ति की स्वतत्रता के लिये बहुत भयानक समझते हैं और व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करना उनका ऐतिहासिक धर्म है। किन्तु समाजवाद का विरोध करते हुए भी वे पूंजीवाद मे काफी सुधार आवश्यक बताते हैं। वे कुछ उद्योगों का समाजीकरण भी करने के लिये तैयार हैं यदि यह सिद्ध हो जाये कि ऐसा करने से कार्यकुशलता बढ़ जायेगी। उनका कहना यह है कि सार्वजनिक उद्योगों तथा ग़ैर-सरकारी उद्योगों के मध्य कोई नियत रेखा स्थिर नहीं है; वह रेखा पहले सरकती रही है और आगे भी सरक सकती है। यह तो व्यवहार और सुविधा का प्रश्न है, सिद्धान्त का नहीं। इस दृष्टिकोण के कारण वे रूढ़िवादियों के अधिक निकट हैं, समाजवादियों के नहीं।

अपनी उन्नति के शिखर पर उदार दल में कई प्रकार के सदस्य थे; उसमें वृत्ति वाले (Professional) तथा वाणिज्य वाले भी थे, नागरिक मध्यवर्ग, छोटे दुकानदार तथा व्यापारी, नगर के श्रमवर्ग वाले तथा कुछ कृषि श्रमिक भी थे। पादरी लोग कभी उसमें शामिल नहीं हुए। अब उसके सदस्य डांवाडोल हो गये हैं, उसके बहुत से समर्थकों ने श्रम दल की या रूढ़िवादी दल की सदस्यता स्वीकार कर ली है। इस दल के पतन का मुख्य कारण यह है कि उसके पास कोई स्पष्ट तथा सीधा कार्यक्रम नहीं है। वह पूञ्जीवाद तथा समाजवाद के बीच का मार्ग पकड़ता है, धनियों के लिये व्यक्तिवाद का तथा निर्धनों के लिये सङ्गठन का समर्थन करता है। ऐसी नीति कई लोगों को पसन्द नहीं आती। इस दल को बहुत कुछ नुक्सान नेताओं के मतभेद से भी उठाना पड़ा है। बहुत समय तक उसके नेता सङ्गठित नहीं रहे। ब्रिटेन मे प्रचलित निर्वाचन-पद्धति से भी उसे बहुत हानि पहुंची है; उसके कारण इस दल को देश में जितने मत मिले उस अनुपात से स्थान नहीं मिले।

श्रम दल— ग्रेट ब्रिटेन में रूढ़िवादी तथा उदार दल तो इतने ही पुराने हैं जितना कि वहां संसदीय शासन है, वे पहले क्रमशः टोरी तथा व्हिग कहलाते थे और उस से भी प्राचीन काल में केवेलियर और राउण्डहैड कहलाते थे; किन्तु श्रमदल नया दल है तथा इन दोनों पुराने दलों के विरोध मे बना है। यद्यपि १९००

से पहले भी लोकसभा में कुछ श्रम सदस्य थे, तथापि वे किसी सुसङ्गठित दल में नहीं थे और उनकी संख्या बहुत नगण्य थी। १६०० में श्रम दल का निर्माण हुआ तथा उसने ५० वर्ष में बहुत उन्नति की है। १६०६ में उसे २६ स्थान मिले थे, १६१० में ४०, १६१८ में ५७, १६२२ में १४२, १६२३ में १६१, १६२४ में १५१ तथा १६२६ में २८६। १६३१ तथा १६३५ के निर्वाचनों में उसके नेताओं में मतभेद होने के कारण उसे बहुत कम स्थान मिले। किन्तु १६४५ में उसने सब कसर पूरी करली तथा पूर्ण बहुमत प्राप्त करके किसी अन्य दल की सहायता के बिना ही सरकार बनाली, जो इसके लिये इस प्रकार का पहला ही अवसर था। १६५० के निर्वाचनों में भी उसे पूर्ण बहुमत प्राप्त हो गया यद्यपि विरोधी दल और श्रम दल के स्थानों का अन्तर नगण्य रह गया; फिर भी केवल पांच सात के बहुमत से उसका मंत्रिमंडल चलता रहा।

एक ओर श्रम दल के कार्य-क्रम तथा नीतियों में और दूसरी ओर रूढ़िवादी तथा उदार दलों की नीतियों तथा कार्य-क्रम में बहुत अंतर है। दोनों प्राचीन दल तो पूंजीवादी समाज के ढांचे में ही अपने कार्य-क्रम चलाते हैं, किन्तु श्रम दल समाजवाद पर आधारित नई सामाजिक व्यवस्था बनाना चाहता है जिसमें यातायात (Transportation) तथा खान आदि मूल उद्योगों में गैर-सरकारी स्वामित्व के स्थान पर सार्वजनिक स्वामित्व स्थापित हो जाये। वह मतदाता को यह निश्चय करने का अवसर देता है कि वह प्राचीन पूंजीवाद की व्यवस्था को बनाये रखना चाहता है या उसके स्थान पर बिल्कुल नई सामाजिक व्यवस्था चाहता है। गरीबी तथा बेकारी को तत्काल दूर करना इस दल के कार्य-क्रम में है; ठीक है, उनका स्थायी इलाज केवल समाजवाद ही तो है। इस प्रकार हम श्रम दल के कार्य-क्रम को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं— एक तो इङ्गलिस्तान को पूंजीवादी राज्य के स्थान पर समाजवादी राज्य बनाना है, दूसरा समाजिक सेवाओं का विस्तार करना है। धन का अधिक न्यायपूर्ण वितरण तथा जनसाधारण के जीवन-स्तर का उत्थान ये ही समाजवाद के स्वाभाविक परिणाम हैं। आर्थिक दृष्टि से समाज के पुनर्निर्माण के साथ साथ राजनैतिक दृष्टि से भी समाज का पुनर्निर्माण होना आवश्यक है। लार्ड सभा तथा दुहरे मतदान की समाप्ति, वर्तमान राजनैतिक संसद अर्थात् लोकसभा के साथ साथ एक सामाजिक संसद का निर्वाचन जिसका करारोपण (Taxation), शिक्षा, निर्धन-सहायता तथा अन्य सामाजिक सेवाओं पर पूरा नियन्त्रण हो, ये उसकी राजनैतिक पुनर्निर्माण योजना की कुछ विशेषताएं हैं। उसे राजतन्त्र के जारी रखने पर कोई आपत्ति नहीं मालूम होती।

विदेशी सम्बन्धों तथा साम्राज्य की राजनीति के क्षेत्र में, श्रम दल चाहता है कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के आर्थिक कारणों को हटाया जाये, शस्त्रास्त्रों को

कम किया जाये, शस्त्रास्त्रों के निर्माण का राष्ट्रीयकरण किया जाये, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को बढ़ाया जाये तथा विश्व सङ्घ (पहले लीग आफ नेशस तथा अब सयुक्त राष्ट्र सङ्घ) को मजबूत बनाया जाये। साम्राज्य सम्बन्धी नीति मे श्रम दल सदा भारत के लिये स्वशासन का समर्थन करता रहा है (और अन्त में श्रम सरकार के समय मे ही भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई), वह उपनिवेशो (Colonies) में ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को लागू करने तथा वहां स्वशासन का विकास करने की नीति का समर्थन करता है, और यूरोपीय पूञ्जीवाद के शोषण से आदि-वासी लोगों को बचाने के लिये पर्याप्त संरक्षण रखना चाहता है।

ग्रेट ब्रिटेन के अन्य दलों के समान, श्रम दल में भी मतभेद तथा गुटबंदियां हैं। वहां भी वामपक्ष तथा दक्षिणपक्ष हैं। मतभेद मुख्यतः इस बात पर है कि समाजवाद लागू करने के लिये जो कदम उठाये जायें उनमे कितनी जल्दी की जाये। समस्त श्रमदल सहमत है कि वर्तमान व्यवस्था से नई सामाजिक व्यवस्था लाने का परिवर्तन शांतिपूर्ण तथा सांविधानिक साधनों द्वारा हो, रक्तपूर्ण क्रांति से न हो। किन्तु वामपक्षी चाहते हैं कि 'हमारे जीवनकाल में ही समाजवाद' आ जाये। नरम दल का विश्वास है कि 'धीरे चलना अनिवार्य है'। दक्षिणपक्षी सामाजिक सेवाओं के विकास पर जोर देते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि सामाजिक सुधारों में सफलता मिलने से उन्हें अधिक समर्थन प्राप्त होगा। वामपक्षियों के विचार मे, सामाजिक सुधार तभी स्थायी हो सकते हैं जब कि उद्योग का समाजीकरण किया जाये।

पहले श्रम दल को मुख्य समर्थन ट्रेड यूनियनों (श्रम-संघों) से प्राप्त होता था। मुख्यत' निम्नतर सामाजिक तथा आर्थिक वर्गों से ही उसे सदस्य मिलते थे। गत बीस तीस वर्ष मे उसका सामाजिक आधार बहुत विस्तृत हो गया है। उसके सदस्यों मे अब विभिन्न सामाजिक वर्गों की जनता शामिल है। १९२८ के अधिनियम द्वारा जिन महिलाओं को मताधिकार मिला है वे इसका बहुत समर्थन करती हैं। किन्तु इस दल के नेता मुख्यत. उच्च मध्यवर्ग में से हैं। यद्यपि प्रधान दलो में यह दल सबसे नया है, फिर भी इसका संगठन तथा अनुशासन सब दलों से अच्छा है। इसके वार्षिक सम्मेलन मे प्रत्येक सहायक संस्था तथा शाखा के सदस्य आते हैं और उसमे जो प्रस्ताव पारित होते हैं उनसे ही दल की नीति का निर्धारण होता है।

**अन्य दल**—इन तीन प्रधान दलों के अतिरिक्त (जो अब व्यवहार मे दो ही रह गये हैं) कुछ छोटे छोटे दल भी हैं, जिनमे से अधिक महत्वपूर्ण साम्यवादी (Communist) दल, फासिस्ट दल तथा स्वतंत्र श्रम-दल हैं। साम्यवादी दल छोटा सा है किन्तु उन्नति की ओर अग्रसर है। उसका रूस से सम्बन्ध होने के कारण जनता उसे पसन्द नहीं करती। उसने कई बार श्रम-दल से मिलना चाहा,

किन्तु असफल रहा। फासिस्टों के नेता सर ओस्वाल्ड मोसले हैं। १६३१ के उप-निर्वाचन से पता लग गया था कि इस दल का भविष्य उज्ज्वल नहीं है। स्वतंत्र श्रम-दल तो श्रम-दल से भी प्राचीनतर है और वास्तव में उसी से श्रम-दल की उत्पत्ति हुई है। १६३१ मे स्वतंत्र श्रम-दल 'श्रम-दल' से अलग हो गया क्योंकि उसके विचार में श्रम-दल काफी प्रगतिशील तथा उग्र नहीं था। इस दल के मुख्य सदस्य श्री मेक्सटन तथा श्री फेनर ब्रोकवे थे।

**दलों की वर्तमान व्यवस्था**—ग्रेट ब्रिटेन में दलों की स्थिति का जो सिंहावलोकन ऊपर किया गया है, उससे यह स्पष्ट है कि शक्ति के लिये मुख्य संघर्ष रूढ़िवादियों तथा श्रम-दल मे है। तीनों छोटे दलों— साम्यवादी, फासिस्ट तथा स्वतंत्र श्रम-दल— मे से किसी का भी ब्रिटिश मतदाताओं मे प्रिय होना सम्भव नहीं जान पड़ता। पुराना उदार-दल भी अब अपनी पहले वाली स्थिति को पुनः प्राप्त कर सकेगा, इसका कोई चिह्न दिखाई नहीं देता। जो उदार सदस्य रूढ़िवाद को पसंद करते थे वे रूढ़िवादी दल मे चले गये हैं तथा उग्र विचारों वाले सदस्य श्रम-दल मे चले गये हैं। अतः हम कह सकते हैं कि श्रम-दल के उत्थान से द्विदल प्रणाली की समाप्ति अस्थायी ही थी, और ब्रिटेन मे अब पुनः यही प्रणाली स्थापित हो गई है जो उसकी परम्परा के अनुकूल है।

रैम्जे म्योर जैसे कुछ व्यक्तियों के विचार में यह द्विदल प्रणाली अच्छी चीज नहीं है, उनके विचार मे त्रिदल प्रणाली अधिक स्वाभाविक तथा लाभप्रद है। उनका कहना है कि द्विदल प्रणाली मे साधारण निर्वाचन मे राष्ट्र का निर्णय ठीक प्रकार प्रकट नहीं होता। कोई मतदाता रूढ़िवादी नीति का विरोधी होने के कारण श्रम-दल को मत दे सकता है, चाहे वह समाजवादी न हो। इसी प्रकार रूढ़िवादी दल का मत देने वाला शायद उस दल से प्रेम के कारण नहीं, अपितु श्रम-दल से घृणा के कारण ऐसा कर सकता है। त्रिदल प्रणाली मे दक्षिण, वाम तथा मध्यम-वर्ग होते हैं जो मानव-प्रकृति के अधिक अनुकूल हैं और जिनसे मतदाताओं को अपने विचार ठीक प्रकार अभिव्यक्त करने का अवसर मिल जाता है। द्विदल प्रणाली में एक और गम्भीर त्रुटि है। संसदीय शासन-पद्धति में इससे केबिनेट की तानाशाही स्थापित हो सकती है। जब किसी मंत्रिमंडल को विधान-मंडल मे ठोस तथा पूर्ण बहुमत प्राप्त हो जाता है तब वह विधि-निर्माण मे, वित्त के विषय मे, तथा प्रशासन मे सर्वोच्च सत्ताधारी बन जाता है जैसा कि ग्रेट ब्रिटेन मे हुआ है। मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त तथा द्विदल प्रणाली— इन दोनों के मिल जाने से सरकार अत्यधिक शक्तिशाली तथा शीघ्रगामी बन जाती है और उसमें 'समझौते की वह भावना नहीं रहती जो सच्ची प्रतिनिधि सरकार के लिये आवश्यक है।'

उधर, त्रिदल प्रणाली अथवा बहुदल प्रणाली के विरुद्ध मुख्य युक्ति यह है कि इससे मिश्रित सरकारें बनेंगी जो अवश्यमेव शक्तिहीन तथा अस्थिर होती हैं। जब मंत्रिमंडल को विधान-मंडल में अनेक दलों अथवा वर्गों पर आश्रित रहना पड़ता है तब वह सचेतक के बल पर काम नहीं कर सकती, वरन् उसे विधि-निर्माण में समुचित मध्य-मार्ग ढूंढने पड़ते हैं तथा सब बातों पर विचार करना पड़ता है। यह ठीक नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता ; इसके विपरीत, उचित परिस्थितियों में यह बात एक गुण है। कई वर्गों पर आश्रित होने के कारण शक्ति पर आवश्यक रोक-थाम तथा नियंत्रण लग जाता है, जो द्विदल प्रणाली में नहीं होता। इस विषय पर अधिक विस्तार करने की यहां आवश्यकता नहीं है ; जो पाठक इस विषय पर अधिक जानना चाहते हैं वे रैमजे म्योर तथा लास्की की रचनाओं को पढ़ सकते हैं, क्योंकि इस वाद-विवाद में वे विरोधी विचारों के प्रतिनिधि-लेखक हैं।

**दलीय संगठन**— जैसा कि पहले अनेक बार बताया जा चुका है, ग्रेट ब्रिटेन में दलीय संगठन बहुत पूर्ण बन गया है (यही स्थिति आजकल संसार के अन्य कई देशों में भी है)। सारे दल लगभग एक ही प्रकार से संगठित होते हैं। प्रत्येक दल में दो अंग होते हैं— एक संसद में काम करता है तथा दूसरा संसद के बाहर काम करता है। संसद में काम करने वाले अंग में उस दल के समस्त संसद सदस्य होते हैं और उसे प्रायः 'संसदीय दल' कहा जाता है। वह अपने नेता, उप-नेता तथा दलीय सचेतकों (Party Whips) को स्वयं चुनता है। संसद के बाहर के अंग में केन्द्रीय संस्था तथा स्थानीय संस्थायें होती हैं जिन्हें शाखायें कहते हैं। हमारे देश में कांग्रेस दल के उदाहरण से विद्यार्थी को यह बात समझने में आसानी होगी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का भारतीय संसद में 'संसदीय दल' है जिसके नेता श्री जवाहरलाल नेहरू हैं। इसी प्रकार प्रांतीय विधान-मंडलों में भी उसके 'संसदीय दल' हैं यथा उत्तर प्रदेश के 'कांग्रेस संसदीय दल' के नेता श्री गोविन्द वल्लभ पंत हैं। प्रत्येक संसदीय दल अलग अलग इकाई के रूप में काम करता है। इसके अतिरिक्त कांग्रेस की केन्द्रीय संस्था, जो संसद के बाहर काम करती है, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति (A. I. C. C.) कहलाती है तथा उसकी एक कार्यकारिणी समिति (Working Committee) भी है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक राज्य में 'राज्य कांग्रेस समितियां' जिनके अधीन जिला तथा नगर अथवा ग्राम कांग्रेस समितियां हैं। कांग्रेस के किसी संसदीय-दल के सदस्य के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी उक्त समिति का भी सदस्य हो। कांग्रेस का एक वार्षिक अधिवेशन होता है जिसमें आगामी वर्ष के लिये नीति और कार्य-क्रम का निर्धारण होता है। संसदीय दल बाहर की संस्था के अधीन नहीं होता, किन्तु दोनों के बीच सहयोग होता है (यद्यपि अब कई बार दोनों प्रकार के दलों के बीच संघर्ष के बीज दृष्टिगोचर

होते हैं)। ग्रेट ब्रिटेन में भी सब दलों की व्यवस्था प्रायः ऐसी ही होती है। जैसे हमारे देश में प्रत्येक दल में कुछ वैतनिक तथा कुछ अवैतनिक, कुछ पूरे समय के लिये तथा कुछ आंशिक समय के लिये, सब प्रकार के कार्यकर्ता होते हैं, इसी प्रकार प्रत्येक ब्रिटिश राजनैतिक दल प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में वैतनिक तथा पूरे समय के लिये कर्मचारी रखता है। हाँ, कई अवैतनिक (Honorary) कार्यकर्ता भी होते हैं जो दल के सिद्धान्तों में विश्वास करते हैं। अतः वे उसके लिये मेहनत से कार्य करते हैं। प्रत्येक दल का एक कोष होता है जिसमें सदस्य तथा समर्थक चन्दा देते हैं। कोष एकत्र करने के अन्य कई साधन भी हैं किन्तु उन पर यहाँ टिप्पणी करना आवश्यक नहीं है।

**ग्रेट ब्रिटेन में लोकतंत्र**— ऊपर ग्रेट ब्रिटेन के विधान-मंडल तथा केन्द्रीय कार्यपालिका और उनके सम्बन्धों का जो विवरण दिया गया है, उससे हम इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं कि "वहां लोकतंत्र का आदर्श व्यवहार में कहां तक सफल हुआ है ?" यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि लोकतन्त्र के विषय में एक ओर तो सोवियत रूस का साम्यवादी दृष्टिकोण है और दूसरी ओर आंग्ल-अमरीकी अथवा पूंजीवादी दृष्टिकोण है और इन दोनों में समझौता असम्भव सा है।

लिंकन की प्रसिद्ध परिभाषा के अनुसार लोकतन्त्र का अर्थ 'जनता का, जनता के लिये तथा जनता द्वारा शासन' है। आंग्ल अमरीकी विचारधारा में *जनता द्वारा शासन* पर अधिक बल दिया जाता है कि जनता स्वयं अपना शासन चलाये। व्यवहार में इसका अर्थ बहुमत का शासन हो जाता है। इसके विपरीत रूसी विचार धारा यह है कि लोकतन्त्र का अर्थ है '*बहुमत के हितार्थ शासन*', और उन हितों का निर्धारण मार्क्स के दर्शन के अनुसार किया जाता है। हम यहाँ इस विषय पर विचार नहीं करेंगे कि इनमें से कौनसा दृष्टिकोण ठीक है ; हम केवल यही देखेंगे कि ब्रिटेन में 'जनता द्वारा शासन' का सिद्धान्त कहां तक सफल है, और इसी से ब्रिटिश और रूसी सिद्धान्तों के मुख्य मतभेदों पर कुछ प्रकाश पड़ जायगा।

किसी देश में लोकतंत्र है या नहीं उसका पता लगाने की कई कसौटियां हैं। पहली तो यह है कि सब वयस्कों को उन लोगों के चुनने में समानाधिकार मिलना चाहिये जो शासन कार्य चलायेंगे। व्यापक वयस्क मताधिकार के होते हुए भी, ग्रेट ब्रिटेन में यह आदर्श पूरा नहीं होता। जैसा कि पिछले एक अध्याय में बताया जा चुका है, एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र (Single-member Constituency) में बहुमत द्वारा निर्वाचन की व्यवस्था से व्यवहार में बहुत से मतदाताओं का मताधिकार छिन जाता है। इस अर्थ में लोकसभा जनता की प्रतिनिधि नहीं रहती। जब तक आनुपातिक प्रतिनिधित्व लागू नहीं किया जायेगा तब तक यह बुराई दूर नहीं

हो सकती। प्रधानत. वंशगत सदस्यों वाली लार्डसभा से भी ब्रिटेन की व्यवस्था कम लोकतंत्रात्मक बन जाती है, क्योंकि लार्डसभा के विषय में कहा जाता है कि वह किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करती, किन्तु फिर भी वह प्रगतिशील सरकार द्वारा प्रस्तावित सामाजिक विधानों को अनन्त काल के लिये और कम से कम एक वर्ष के लिये तो अवश्य ही खटाई में डाल सकती है। इस प्रकार लार्डसभा लोकसभा में अधिव्यक्त जनमत पर रोक लगा सकती है; ऐसी कोई सभा रूस में नहीं है, अत. इस अर्थ में रूस ग्रेट ब्रिटेन से अधिक लोकतंत्रवादी कहा जा सकता है।

दूसरी बात यह है कि सच्चा लोकतंत्रात्मक शासन सदा जनता की सहमति के आधार पर चलता है। जनता की इच्छानुसार चलने का यह अर्थ नहीं है कि सरकार के समस्त कार्यों का समर्थन प्रत्येक नागरिक करे और जो व्यक्ति सरकार की विधियों को स्वीकार न करके उनका उल्लघन करे उसके विरुद्ध सरकार कोई क़दम भी न उठाये; इसका तो अर्थ केवल इतना ही है कि जनता पर सरकार को प्रत्येक बात बलपूर्वक नहीं लादनी चाहिये, यदि अधिकांश नागरिक उसकी नीतियों को बुरा बतायें तो उसे त्यागपत्र दे देना चाहिये। इसका यह आशय है कि नागरिकों को पर्याप्त सुविधाएँ मिलनी चाहियें कि वे सरकार के कामों को जान सकें तथा उनकी आलोचना कर सकें, और उन सब को भी स्वतत्रता मिलनी चाहिये जो वर्तमान सरकार को हटा कर उसके स्थान पर, शान्तिपूर्ण तथा सांविधानिक साधनों से, नई सरकार की स्थापना करने का उद्देश्य लेकर प्रचार करना चाहे तथा संगठन बनाना चाहे। दूसरे शब्दों में सच्चे लोकतंत्रात्मक शासन में विरोधी दल अवश्य होता है जो सरकार और उसकी नीतियों की आलोचना करता है तथा उसे स्वतंत्रता होती है कि मतदाताओं को अपने सिद्धान्तों तथा कार्य-क्रम के पक्ष में करके अपना बहुमत बना ले। ब्रिटिश शासन व्यवस्था इस कसौटी पर पूरी उतरती है, पर रूसी व्यवस्था में ऐसी स्वतत्रता नहीं है, अतः इस बात में रूस कम लोकतंत्रात्मक है। ग्रेट ब्रिटेन में सरकार अपने आलोचकों का मुँह बन्द नहीं करती और शक्ति से उनका दमन नहीं करती, वह उन्हें आलोचना करने का अधिकार देती है तथा युक्तियों और तर्कों से उनका उत्तर देती है। रूस में पत्र-पत्रिकाओं पर, मंच पर तथा अन्य प्रचार-साधनों पर सरकार का नियत्रण है और वहाँ विरोधी दल को नहीं रहने दिया जाता। वहाँ सरकार की त्रुटियों, कुकर्मों या भूल-चूक को स्वतंत्र रूप से चर्चा नहीं हो सकती। अतः इस कसौटी पर कसने से ग्रेट ब्रिटेन लोकतत्र ठहरता है, रूस नहीं।

एक और भी कसौटी है कि सच्चे लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति जितना योग्य है उसका उतना ही मूल्य आंका जायेगा, और प्रत्येक को आत्म-अभिव्यक्ति (Self-expression) की पूर्ण-स्वतंत्रता दी जायेगी। "व्यक्ति किसी एक व्यक्तित्व के

चित्रमात्र नहीं बन जायेंगे बल्कि उनका अपना अनन्य व्यक्तित्व होगा।" ये आदर्श, विशेषतः अन्तिम आदर्श, सोवियत समाजवादी गणराज्य-संघ (U. S. S. R.) की बजाय ब्रिटेन में अधिक पूरे हुए प्रतीत होते हैं।

किन्तु ब्रिटेन में बहुमत का शासन तथा जनता की सहमति और स्वतंत्र आलोचना भी सच्चे रूप में उपस्थित नहीं है। इनके लिये पहली आवश्यकता यह है कि समाज का आर्थिक तथा सामाजिक ढांचा ऐसा हो कि राज्य के मामलों में सब नागरिक सच्चे अर्थ में भाग ले सकें और आलोचना कर सकें। जब तक समाज में पूँजीवाद का बोलबाला है तब तक उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण रखने वाले पूँजीपतियों का ही आधिपत्य देश के औद्योगिक तथा आर्थिक जीवन पर भी रहेगा और वे ही राजनैतिक क्षेत्र में भी अत्यन्त शक्तिशाली रहेंगे। चाहे लोकतंत्र का कोई रूप क्यों न हो, फिर भी वास्तविक शक्ति ब्रिटेन के एक छोटे से धनी वर्ग के हाथ में ही है; क्योंकि धन की सहायता से वे ही शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं, वे ही सिविल सर्विस में उच्च पद प्राप्त कर पाते हैं, निर्वाचनों में भी वे असंख्य धन खर्च करके स्थान प्राप्त कर पाते हैं, पत्र-पत्रिकाओं तथा अन्य प्रचार-साधनों पर भी उनका ही एकाधिकार है। सम्पत्तिहीन मजदूर उनकी तुलना में सफल हो कर शक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है? श्रम सरकार के आने से भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ा है। दूसरी ओर रूस में उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण होने से तथा लाभाकांक्षा (Profit motive) मिट जाने से धनियों का आधिपत्य नहीं रहा है। इस अर्थ में रूस इङ्गलिस्तान से अधिक लोकतन्त्रात्मक है।

---

## अध्याय १०

# न्यायपालिका

**विषय-प्रवेश**— लोकतन्त्र को बनाये रखने के लिये केवल बहुमत का शासन, स्वतन्त्र सहमति तथा स्वतन्त्र वाद-विवाद ही आवश्यक नहीं है, वरन् विधि-न्यायालयों का न्यायपूर्ण तथा कुशलतापूर्वक काम करना भी जरूरी है। न्यायालय नागरिकों को केवल यही नहीं बताते कि उन पर किन विधियों के अनुसार शासन होगा और उनकी कठिनाइयों को दूर करने में ही सहायता नहीं करते, वरन् अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे नागरिकों को स्पष्ट सुझाते हैं कि वे विधि-शासन (Rule of-Law) के अधीन हैं और निरंकुश शासन के अधीन नहीं हैं। वे एक और भी महत्त्वपूर्ण काम करते हैं; वे शक्ति-प्रयोग को, जिसके बिना किसी सरकार का

अस्तित्व नहीं है और न रह ही सकता है, विधि के अधीन ले आते हैं। अतः अच्छी विधि-व्यवस्था और देश की विधियों का न्यायपूर्ण निर्वचन (Interpretation) तथा उनका समुचित रूप से लागू होना लोकतंत्र की आवश्यक शर्तें हैं। अतः हमें देखना है कि यह शर्त ग्रेट ब्रिटेन में कहाँ तक पूरी होती है। इस अध्याय में हम ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था तथा उसकी कार्य-प्रणाली पर विचार करेंगे।

**विधि के प्रकार**— ब्रिटेन की विधि-व्यवस्था इस समय विश्व की सबसे अग्रतम व्यवस्थाओं में से है— अन्य दो व्यवस्थाएं रोमन तथा मुस्लिम हैं। यह भी वहाँ की राजनैतिक व्यवस्था के समान लम्बे विकास से बनी है तथा मुख्यतः देशी व्यवस्था ही है। उस पर विदेशी न्याय-व्यवस्थाओं का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। इस व्यवस्था की मुख्य विशेषता यही है कि उसमें सुसंगठितता, नियमितता तथा औपचारिक संगतता नहीं है, जो रोमन व्यवस्था में विशेषतः पाई जाती हैं। इसी कमी के कारण ब्रिटिश व्यवस्था को चीनी, जापानी, तुर्की आदि राष्ट्रों ने पसंद नहीं किया और उन्होंने रोमन व्यवस्था पर आधारित फ्रांसीसी व्यवस्था को अपनाया। ब्रिटिश व्यवस्था की तीसरी विशेपता यह है कि उसमें तीन विभिन्न स्रोतों से सामग्री ली गई है, (विशेपत, इङ्गलिस्तान में ऐसी बात है; स्कॉटलैण्ड की विधि, सिद्धान्त प्रथा प्रक्रिया (Procedure) दोनों में इङ्गलिश विधि से भिन्न है)। इङ्गलिस्तान में तीन प्रकार की विधियाँ लागू हैं— *कॉमन ला, स्टेट्यूट ला* तथा *ईक्विटी*। कॉमन ला (सामान्यविधि) की व्युत्पत्ति तथा विस्तार का इतिहास बहुत रोचक है किन्तु यहाँ उसका संक्षिप्त विवरण ही दिया जायेगा। नॉरमन तथा प्लेनटजेनेट कालों में ब्रिटेन के लोग राजा के न्यायाधीशों से यह आशा करते थे कि वे उन परम्पराओं के अनुसार न्याय करें जो देश के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न थीं। न्यायाधीशों का यह काम हो गया था कि वे इन परम्पराओं में से ऐसी 'नियमावली' तैयार करें जो समस्त देश में *'कॉमन'* हो, *सामान्य रूप* से प्रचलित हो। वे ही नियम विकसित होकर 'कॉमन ला' कहलाये। अतः 'कॉमन विधि (ला)' का अर्थ है वे प्रथाएं तथा रीति-रिवाज जो न्यायाधीशों द्वारा निर्वाचित होकर व्यवस्थित रूप में आ गये। कॉमन विधि का निर्माण न राजाओं ने किया और न संसद ने ही किया, वे अलिखित रूप में बढ़ते गये और आज तक भी उन्हें संहिता (Code) का रूप नहीं मिला। किसी पुस्तक में उनका व्यापक तथा प्राधिकृत सग्रह नहीं मिलता। कॉमन विधि तो न्यायाधीशों के उन निर्णयों में सन्निहित है जो गत शताब्दियों में किये गये थे। हाँ, लेखकों ने समय समय पर उसका सङ्कलन करने का प्रयत्न किया है, किन्तु वे उसके निर्माता नहीं हैं केवल व्याख्या करने वाले हैं। यदि कॉमन विधि का निर्माण किसी ने किया है तो केवल न्यायाधीशों ने ही किया है। उनके अभिलिखित (Recorded) निर्णयों से ही कॉमन विधि बनी है अतः उसे

न्यायाधीश-निर्मित विधि कह सकते हैं। किन्तु उस विधि का बल तथा उसकी वैधता स्टेट्यूट-ला के समान ही है। ब्रिटिश लोग अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा अन्य अधिराज्यो मे जहाँ भी गये, कॉमन विधि को अपने साथ ले गये तथा अपने राष्ट्र ध्वज के समान उस का सम्मान तथा उसकी रक्षा की।

इगलिस्तान के न्यायालयो मे प्रशासित दूसरी प्रकार की विधि को स्टेट्यूट *ला* कहते हैं। इसका भी प्रारम्भ कॉमन विधि के समान बहुत प्राचीन है, किन्तु कॉमन विधि का तो *विकास* हुआ है और स्टेट्यूट विधि अधिनियमित हुई है। आरम्भ मे इसका निर्माण शासक राजाओं ने, पहले महापरिषदों में तथा बाद मे संसदो मे किया था। ज्यो ज्यो संसद की शक्ति बढ़ती गई, त्यों त्यां विधि-निर्माण मे राजा का हाथ कम होता गया, अब उसका काम केवल अनुमति (Assent) देना ही रह गया है। अब विधि-निर्माता 'संसद-सहित-राजा' (King-in-Parliament) है, जो उन विषयों पर विधियाँ बनाता है जिन पर कॉमन विधि लागू नहीं है। वह कॉमन विधि के भी किसी नियम को बदल सकता है, उसमे परिवर्तन, रूप-भेद या विस्तार कर सकता है, और उसे संहिता-बद्ध (Codify) भी कर सकता है। जहाँ कॉमन विधि तथा स्टेट्यूट विधि मे विरोध होता है वहाँ स्टेट्यूट को ही माना जाता है। यद्यपि स्टेट्यूट विधि से कॉमन विधि कम होती जा रही है, फिर भी ब्रिटिश न्यायालयों मे अब भी अधिकांश कॉमन विधि की ही मान्यता है। इसका कारण यह है कि इंगलिस्तान में अधिकांश व्यक्तिगत अधिकार कॉमन विधि पर आधारित हैं। कई स्टेट्यूटों मे कॉमन विधि के अस्तित्व का आश्रय लिया गया है तथा कॉमन विधि के बिना उन स्टेट्यूटों का अर्थ ही कुछ नहीं रहता।

इंगलिश विधि की तीसरी महान् शाखा को ईक्विटी (न्याय्यता) कहते हैं। ईक्विटी का इतिहास देखने से हमे पता लग जायेगा कि यह क्या है और अन्य प्रकार की विधियों से इसका क्या सम्बन्ध है। प्राचीन काल में जब राजा वास्तव मे 'न्याय का स्रोत' था, तब वे लोग जो न्यायाधीशो के न्याय से सन्तुष्ट नहीं होते थे, राजा से याचना करते थे, 'ईश्वर के नाम पर और दया करके, हमारे साथ जो अन्याय हुआ है उसे दूर कीजिये।' राजा उन सब याचिकाओं को निबटाने में असमर्थ था। अतः उसने उन्हें निबटाने के लिये अपने 'चान्सलर' को नियुक्त कर दिया। जब काम बढ़ता गया तो चान्सलर की सहायता के लिये कुछ सहायक (असिस्टेंट) रखे गये और कुछ समय में एक पूरा न्यायालय बन गया जिसे 'चान्सरी का न्यायालय' कहते थे। वह न्यायालय जिन सिद्धान्तों तथा नियमों के अनुसार फैसले करता था वे ही 'ईक्विटी विधि' के आधार बन गये। जैसे राजा के न्यायाधीशों के निर्णयों से कॉमन विधि बन गई थी, उसी प्रकार चान्सरी न्यायालय के न्यायाधीशो ने अपने निर्णयों, परम्पराओं और सिद्धान्तो द्वारा ईक्विटी विधि का

निर्माण कर डाला। इस प्रकार ईक्विटी भी पूर्व-निर्णीत मामलों (Case-law) पर ही आधारित है और उसे कॉमन विधि का ही एक प्रकार माना जा सकता है। ईक्विटी का जन्म कॉमन विधि की त्रुटियों को दूर करने के लिये हुआ था और उन धोखेबाजियों को रोकने के लिये हुआ था जो कॉमन विधि का आश्रय लेकर लोग करते थे। अब ईक्विटी की विधि बहुत उलझी हुई बन गई है। उसका अपराधों से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह तो कुछ प्रकार के व्यवहार वादों (Civil Cases) से ही सम्बद्ध है। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि ईक्विटी की प्रक्रिया (Procedure) अलग ही है, फिर भी अब उसके अलग न्यायालय नहीं हैं। आज कॉमन विधि, स्टेट्यूट विधि (लिखित विधि) तथा ईक्विटी (न्याय्यता) के लिये एक ही प्रकार के न्यायालय होते हैं।

व्यवहार विधि (Civil Law) तथा आपराधिक अथवा दण्ड विधि (Criminal Law) के अन्तर का भी यहाँ निर्देश कर देना ठीक रहेगा। व्यवहार विधि के प्रशासन के लिये व्यवहार-न्यायालय (Civil Courts) तथा आपराधिक विधियों के लिये दण्ड-न्यायालय (Criminal Courts) होते हैं। दोनों प्रकार के न्यायालयों में निरन्तर तथा उच्चतर न्यायालय होते हैं जिनमें क्रमशः कम महत्वपूर्ण तथा अधिक महत्वपूर्ण मामले जाते हैं। ब्रिटेन में साधारण विधि (Ordinary Law) तथा प्रशासकीय विधि (Administrative Law) में कोई अन्तर नहीं है जैसा कि फ्रांस आदि अन्य कुछ यूरोपीय देशों मे होता है। सभी नागरिको पर उन्हीं न्यायालयो में और उन्हीं विधियों के अन्तर्गत मुकद्मे चलते हैं चाहे वे नागरिक ऊँचे हो या नीचे, ग़ैर-सरकारी लोग हो या सरकारी अफसर हों। यह बात 'विधि-शासन' (Rule of Law) की विशेषताओं में से है जिस पर अंग्रेजो को गर्व है।

**विधि-न्यायालय—** समस्त ग्रेट ब्रिटेन में विधि-न्यायालयों का संगठन एक सा नहीं है। इङ्गलैंड और वेल्स के लिये अलग व्यवस्था है, स्कॉटलैंट की व्यवस्था अलग है, तथा उत्तरी आयरलैंड की पद्धति इन सबसे निराली है। हम यहाँ पर केवल इङ्गलैंड और वेल्स की व्यवस्था का संक्षिप्त विवरण देंगे।

न्यायालयो को दो श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है: (१) केन्द्रीय अथवा उच्चतर न्यायालय जो अधिकांश मे लंदन मे स्थित हैं, और (२) स्थानीय या निम्नतर न्यायालय जो देश भर मे बिखरे हुए हैं। उन्हे व्यवहार-न्यायालयो तथा दण्ड-न्यायालयो मे भी विभक्त किया जा सकता है। व्यवहार-न्यायालयों मे नागरिकों के आपसी मामलों और विवादो को निबटाया जाता है। व्यवहार वाद (Civil Suit) का उद्देश्य यह है कि किसी व्यक्ति को जिसे वादी (Plaintiff) कहते हैं प्रतिवादी (Defendant) ने हानि पहुंचाई है, उसका प्रतिकार किया

जाये। यह क्षति अपमान, अनधिकार प्रवेश (Trespass), संविदा-भग (Breach of Contract) आदि के रूप में हो सकती है। दण्ड न्यायालय में *सार्वजनिक विधि* के उल्लंघन पर कार्यवाही की जाती है। आपराधिक मुकद्दमे में सब कार्यवाही प्रायः क्राउन की ओर से की जाती है; दूसरे शब्दों में क्राउन मुकद्दमे में एक पक्ष बनता है। हत्या, चोरी, अग्निकांड, डांका, नकली पत्र-लेखन आदि अपराधों की श्रेणी में आते हैं जिन पर दंड-न्यायालय कार्यवाही करते हैं। उनका काम अपराधी को दण्ड देना होता है, किसी की हानि को पूरा करवाना नहीं।

ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था के विषय में यह बात याद रखनी चाहिये कि १८७३ तक वह बहुत त्रुटिपूर्ण तथा अव्यवस्थित थी। बहुत से न्यायाधिकरण (Tribunals) थे, कभी कभी उनके क्षेत्राधिकार एक दूसरे से मिलते जुलते थे, और सबके अपने अपने तरीके और प्रक्रियाएँ थीं। सुशिक्षित वकील के लिये भी उस भूलभुलैया में से गुजरना सुगम नहीं था। १८७३ तथा १८६४ के बीच कई सुधार किये गये जिनसे समूची व्यवस्था का ही काया-कल्प हो गया; उच्चतर न्यायालयों को एक ही व्यवस्था में लाया गया है तथा प्रक्रिया (Procedure) को बहुत सरल बना दिया गया है।

पहले हम दंड-न्यायालयों को लेते हैं। उनकी एक श्रृंखला है जिसमें सबसे नीचे 'जस्टिसेज ऑफ पीस' के न्यायालय हैं और चोटी पर दंड अपीलों का न्यायालय तथा लार्डसभा (न्यायालय के रूप में) हैं। दोनों के बीच में स्टाइपेण्डरी (वैतनिक) दंडाधीश (Magistrates), कोर्ट्स ऑफ एसाइजेज और कोर्ट्स ऑफ क्वार्टर सेशस होते हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय देना ही यहां पर्याप्त होगा।

जस्टिसेज ऑफ पीस के न्यायालय छोटे नगरों में तथा ग्रामों आदि में होते हैं तथा स्टाइपेंडरी दंडाधीशों के न्यायालय बड़े नगरों में होते हैं। दोनों दंड-विषयक मामलों के लिये निम्नतम न्यायालय हैं। जस्टिसेज ऑफ पीस को लार्ड चांसलर नियुक्त करता है और वे सब अवैतनिक होते हैं। उन्हें उनके पद से तभी हटाया जा सकता है जबकि वे अपने काम को करने में अयोग्य सिद्ध हो जाये। ऐसे पदाधिकारी लगभग २० हजार हैं, किन्तु इनमें से आधे ऐसे हैं जिन्होंने शपथ नहीं ली अतः वे न्याय कार्य नहीं कर सकते। यह व्यवस्था १४वीं शताब्दी से चली आती है तथा इससे स्थानीय प्रशासन तथा न्याय के विकास में अच्छी सहायता मिली है। जस्टिस ऑफ पीस केवल छोटे छोटे मामलों को सुन सकता है, जैसे बिना बत्ती साइकिल चलाना आदि, और वह १४ दिन से अधिक कारावास नहीं दे सकता तथा १४ शिलिंग से अधिक जुर्माना नहीं कर सकता। बड़े नगरों में यही कार्य स्टाइपेंडरी दंडाधीश करते हैं।

इससे अगला उच्चतर न्यायालय 'कोर्ट ऑफ समरी ज्यूरिस्डिक्शन' है। उसमें

अधिक गम्भीर मामलों के मुकद्मे सुने जाते हैं जैसे चोरी या हमला। इस न्यायालय में मुकद्मे की सुनाई शीघ्रता के साथ तथा ज्यूरी की सहायता के बिना ही होती है, और यदि अपराधी का दोष सिद्ध हो जाता है तो उसे तुरन्त दण्ड दे दिया जाता है। दण्ड ६ मास कारावास और ५० शिलिंग जुरमाने से अधिक नहीं होता।

उससे भी अधिक गम्भीर मामले, जिनमें 'आरोप' (Indictment) लगाया जाता है, कोर्ट ऑफ क्वार्टर सेशन्स या कोर्ट ऑफ एसाइजेज़ में जाते हैं। क्वार्टर सेशन को ज्यूरी की सहायता से सब मामलों पर सुनवाई करने का अधिकार है किन्तु हत्या, देश-द्रोह, कपट-लेखन आदि गम्भीर अपराध उसके क्षेत्राधिकार में नहीं आते। इस न्यायालय में उस काउन्टी के वे सब जस्टिसेज ऑफ पीस शामिल होते हैं जिन्होंने शपथ ली हो अर्थात् जो न्याय कार्य के योग्य हो, और यह न्यायालय तीन मास में समवेत होता है। सब जस्टिसों के लिये आवश्यक नहीं है कि वे इस न्यायालय के सत्र (Session) में भाग लें; केवल दो से ही गणपूर्ति (Quorum) हो जाती है। बड़े बड़े बॉरो में अलग अलग कोर्ट ऑफ क्वार्टर सेशन होते हैं। उसकी प्रक्रिया वही है जो हाई कोर्ट (उच्च न्यायालय) की है। उसे व्यवहार वादों में भी क्षेत्राधिकार प्राप्त है, और वह कोर्ट ऑफ समरी ज्यूरिस्डिक्शन से अपीलें सुनता है।

कोर्ट ऑफ एसाइजेज भ्रमणशील न्यायालय होते हैं। उनके न्यायाधीश समस्त काउन्टी और एसाइज नगरों में जाकर व्यवहार सम्बन्धी और अपराध सम्बन्धी सब मामलों को सुनते हैं। इस प्रयोजन के लिये समस्त देश को ८ भागों या जिलों में बाँटा गया है। एसाइज न्यायालय गम्भीर अपराधों के मुकद्मे सुनते हैं, और प्रत्येक ग्राम-समूह में वर्ष में दो बार तथा कुछ शहरों में चार बार उनका सत्र होता है। अभियुक्त (Accused) को ज्यूरी द्वारा सुनवाई करवाने का अधिकार है।

१९०७ तक आपराधिक मुकद्मों की अपीलें नहीं होती थीं, यद्यपि कुछ मामलों में लार्डसभा में अपील की जाती थी। १९०७ में दंड-अपीलों का एक न्यायालय स्थापित किया गया था जिसमें उच्च न्यायालय के तीन से कम न्यायाधीश नहीं होते थे। अब दंड-प्राप्त व्यक्ति इस न्यायालय में अपील कर सकता है चाहे वह अपील विधि के प्रश्न पर हो, या तथ्य (Fact) के प्रश्न पर हो, या दोनों के मिश्रित प्रश्न पर हो। इस दंड-अपील के न्यायालय के ऊपर अपील नहीं होती, केवल कुछ अपीलें लार्डसभा को जाती हैं। अपील के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में लार्डसभा के कामों पर बाद में प्रकाश डाला जायगा।

व्यवहार-न्यायालयों के विषय में भी ऐसा ही संगठन है। सबसे नीचे काउंटी-न्यायालय होते हैं जो १८४६ के अधिनियम द्वारा बने थे। व्यवहार-न्याय (Civil-justice) के प्रयोजन के लिये समस्त इङ्गलैंड तथा वेल्स को लगभग ५०० ज़िलों

(काउंटियों) में विभाजित किया गया है, जिनकी सीमाएं वे ही नहीं हैं जो ऐतिहासिक या प्रशासकीय काउंटियों की हैं। इनमें से प्रत्येक काउंटी में एक काउटी न्यायालय होता है जो १०० पाउंड से कम के दावों (Claims) को सुन सकता है। वे न्यायालय बहुत लोकप्रिय हैं; उनमें सस्ता शीघ्रता तथा कुशलता से न्याय होता है। १६०५ में एक क़ानून बना था जिससे उनका क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) बढ़ गया है। काउन्टी न्यायालय भी निश्चित स्थान पर नहीं रहता, वह भी भ्रमणशील होता है। ५०० काउन्टियों को ५५ भागों मे विभाजित किया गया है और प्रत्येक के लिये लार्ड चांसलर एक न्यायाधीश नियुक्त करता है। वह न्यायाधीश अपने क्षेत्र के प्रत्येक ज़िले में समय समय पर अपना न्यायालय लगाता है। प्रत्येक क्षेत्र में लगभग दस काउन्टियाँ होती हैं। काउन्टी न्यायालय में जितने मामले आते हैं उन सब को वह न्यायाधीश नहीं सुनता; क्योंकि उनमें से कई मामलों में तो उस न्यायालय का एक अधिकारी जिसे रजिस्ट्रार कहते हैं दोनो पक्षों में समझौते करवा देता है। काउन्टी न्यायालय के निर्णयों की अपीलें उच्च न्यायालय को तथा लार्डसभा को जाती हैं।

१०० पाउन्ड से अधिक के व्यवहार-वाद उच्च न्यायालय के समुचित विभाग (Division) में जाते हैं— चान्सरी डिवीज़न में सम्राट की बेंच डिवीज़न मे, या प्रोबेट में, एडमिरेल्टी या डायवोर्स डिवीज़न मे। यदि कोई पक्ष वहाँ के निर्णय से सन्तुष्ट न हो, तो वह अपील-न्यायालय में अर्जी देकर दुबारा सुनवाई का आदेश प्राप्त कर सकता है। अपील-न्यायालय के पश्चात् विधि के प्रश्न पर लार्डसभा में अपील की जाती है। अपील-न्यायालय में अपील के आठ लार्ड जस्टिस होते हैं।

एक अन्य विधि-न्यायालय का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसे 'कोरोनर' का न्यायालय कहते हैं। कोरोनर प्रायः कोई डाक्टर या वकील होता है जिसे काउन्टी या बॉरो परिषद् नियुक्त करती है, वह उस समय पड़ताल करता है जब स्पष्ट कारण के बिना कोई मृत्यु हो गई हो। इसमे प्रक्रिया के नियम ढीले हैं और कोरोनर के काम करने के तरीके की आलोचना काफी बढ़ती जा रही है।

**न्याय का उच्चतम न्यायालय (The Supreme Court of Judicature)**— उच्चतम न्यायालय इंगलिस्तान की समस्त न्याय-व्यवस्था का केन्द्र है। वह १८७३ में स्थापित हुआ था तथा उसे व्यवहार तथा दण्ड— दोनों प्रकार के क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। इसके दो भाग हैं (१) न्याय का उच्च न्यायालय (High Court of Justice), और (२) अपील का न्यायालय। उच्च न्यायालय के भी तीन अंग होते हैं (क) सम्राट की न्याय-मंडली (King's Bench) जिसका सभापति लार्ड मुख्य-न्यायाधिपति (Lord Chief Justice) होता है तथा उसमे १६ अन्य न्यायाधीश होते हैं; (ख) चान्सरी डिवीज़न जिसका सभापति लार्ड

चान्सलर होता है तथा उसमे ६ अन्य छोटे न्यायाधीश होते हैं, और (ग) प्रोबेट, तलाक तथा एडमिरेल्टी डिवीजन जिसमे एक सभापति तथा ४ अन्य न्यायाधीश होते हैं। दण्ड विषयक मामले सम्राट की न्याय-मंडली मे जाते हैं और व्यवहार-वाद सम्राट की न्याय-मंडली मे या चान्सरी मे जाते हैं। ईक्विटी के नियमों का प्रयोग जहाँ आवश्यक होता है वे मामले चान्सरी को ही जाते हैं। प्रोबेट, तलाक तथा एडमिरेल्टी डिवीज्न में कई प्रकार के मिले जुले मामले जाते हैं। सम्राट की न्याय-मंडली के न्यायाधीश देश मे लगातार भ्रमण करते हैं, कुछ नगरों में न्यायालय लगाकर दण्ड तथा व्यवहार सम्बन्धी ऐसी अपीलें सुनते हैं, जो लन्दन मे न गई हो।

उच्च न्यायालय के निर्णयों की अपीलें अपील-न्यायालय को जाती हैं लार्ड चान्सलर, लार्ड मुख्य-न्यायाधिपति तथा प्रोबेट, तलाक और एडमिरेल्टी डिवीजन का सभापति इस न्यायालय के सदस्य होते हैं, यद्यपि इसमे वे प्रायः भाग नहीं लेते। इसका सब काम 'मास्टर आफ रोल्स' (Master of Rolls) तथा अपीलों के ५ लार्ड न्यायाधिपति करते हैं जो या तो उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश होते हैं या १५ वर्ष तक वकालत किये हुए बैरिस्टर होते हैं। तीन या चार सदस्य अपील को सुन सकते हैं दण्ड-विषयों की अपीलों को दण्ड अपील का न्यायालय सुनता है। उसका सभापतित्व लार्ड मुख्य-न्यायाधिपति तथा सम्राट की न्याय-मंडली के कई सदस्य, जिनकी संख्या बदलती रहती है, करते हैं। उसमे अपीलें केवल विधि के प्रश्न पर ही जा सकती हैं।

अपील का सर्वोच्च न्यायालय लार्डसभा है, जो इस प्रयोजन के लिये सारी सभा नहीं है, वरन् लार्ड चान्सलर, अपील लार्ड या विधि लार्ड तथा ऐसे अन्य पीयर हैं जो पहले किसी उच्च न्यायपद पर रह चुके हो। यदि महान्यायवादी (Attorney General) यह प्रमाणपत्र दे दे कि सार्वजिनिक महत्त्व का कोई विधि- प्रश्न उस मामले में अंतर्ग्रस्त है तो वह अपील-न्यायालय तथा दण्ड-अपील के न्यायालय से अपील सुनता है। उसकी कार्यवाही अर्ध-न्यायिक होती है, प्रक्रिया मुख्यत' विधान-मंडल के समान होती है, और सब कार्यवाही सदन की कार्यवाही के अग के रूप मे प्रकाशित होती है।

एक और महत्त्वपूर्ण तथा उच्च न्यायाधिकरण की भी यहाँ चर्चा की जानी चाहिये। वह है— प्रीवी परिषद् की न्यायिक समिति। यह समिति भारत, उपनिवेशों तथा अधिराज्यों से आने वाले मामलों के लिये अपील का उच्चतम न्यायालय थी। इसमे इङ्गलिस्तान के धार्मिक (ecclesiastical) न्यायालयों से भी अपीलें आती हैं। उसमे भी लगभग वे ही व्यक्ति होते हैं जो वहाँ के उच्चतम अपील न्यायालय के रूप मे बैठते समय लार्डसभा में होते हैं। इसमें लार्ड चान्सलर, भूतपूर्व लार्ड चान्सलर, विधि-लार्ड, प्रिवी परिषद् के लार्ड प्रधान तथा

अनेक ऐसे न्यायाधीश भी होते हैं जो भारत तथा अधिराज्यों (Dominions) के उच्चतर न्यायालयों से लिये जाते हैं। अधिराज्यों के पारस्परिक झगड़े भी इसी मे जा सकते हैं। इस प्रकार यह ब्रिटिश 'साम्राज्य' के लिये सर्वोच्च न्यायालय है। किन्तु वेस्टमिनिस्टर के कानून के अनुसार अधिराज्यों को यह अधिकार है कि वे न्यायिक समिति को अपीलें भेजना बन्द कर सकते हैं। इसी के अनुसार भारत तथा कुछ अधिराज्यों ने उसमें अपीलें भेजना बन्द कर भी दिया था। भारत के गणराज्य घोषित होने से भारत की लम्बित (Pending) अपीलें भी प्रिवी परिषद् से भारत के उच्चतम न्यायालय (Supreme Court of India) में आ गई। एक बात याद रखनी चाहिये कि यद्यपि न्यायिक समिति न्यायिक निकाय है फिर भी वह अपने निर्णयों को न्यायालयों के समान नहीं निकालती वरन् उन्हें क्राउन को मन्त्रणा के रूप में देती है और उन्हे सम्राट द्वारा सदा स्वीकार करके, 'सपरिषद् आदेश' के रूप में निकाला जाता है।

**न्यायपालिका का अन्य अङ्गों से सम्बन्ध**—इङ्गलिस्तान की न्यायपालिका का विवरण समाप्त करने से पूर्व हम कार्यपालिका तथा विधान-मण्डल से उसके सम्बन्धों पर विचार करेंगे।

एक समय था जब कि न्यायपालिका कार्यपालिका के अधीन होती थी। राजा न्याय का स्रोत होता था; नागरिकों का न्याय करने वाले न्यायाधीश सिद्धान्त मे और वास्तव मे राजा के न्यायाधीश होते थे; राजा ही उन्हें नियुक्त करता था और वे उसी के प्रति उत्तरदायी थे। स्टूअर्ट काल में न्यायाधीश कार्यपालिका के दास से बन गये थे। किन्तु आज स्थिति बदल चुकी है; न्यायपालिका से कार्यपालिका लगभग स्वतन्त्र हो गई है। सेटिलमेन्ट अधिनियम से न्यायाधीशों की पदावधि स्थायी बन गई, वे अब दोनों सभाओं द्वारा एड्रेस पेश होने पर ही हटाये जा सकते हैं, किसी और प्रकार नहीं। हाँ, न्यायपालिका को कार्यपालिका से स्वतन्त्र करने की दिशा मे कार्य पहले ही आरम्भ हो चुका था, इस दिशा में पहला कदम १६४१ मे लांग संसद (Long Parliament) ने उठाया था जबकि उसने परमाधिकार (Prerogative) न्यायालयों को समाप्त कर दिया था। उसके पूरे इतिहास मे जाने की आवश्यकता नहीं है।' हमें तो इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात से मतलब है कि इंगलिस्तान मे कार्यपालिका के नियंत्रण से न्यायपालिका को स्वतन्त्र करके वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अत्यन्त प्रभावी रक्षण-कवच (Safeguard) रख दिया गया है।

न्यायपालिका तथा विधान-मंडल के बीच जो संबंध है उस पर अधिक विस्तार से विचार करना आवश्यक है। पहली बात यह है कि दोनों लगभग पूर्णतः पृथक् हैं। निस्संदेह यह सच है कि लार्डसभा ग्रेट ब्रिटेन में अन्तिम तथा उच्चतम अपील न्यायालय है, किन्तु यह याद रखना चाहिये कि उसका यह न्याय-कार्य उसके

विधान-कार्य से बिल्कुल भिन्न है। अपील के अन्तिम न्यायालय के रूप मे लार्डसभा उस लार्डसभा से कार्य रूप में बिल्कुल पृथक् तथा भिन्न है जो विधायी निकाय के रूप में बैठती है। अतः कार्यरूप मे सब प्रयोजनों के लिये ग्रेट ब्रिटेन मे न्यायपालिका तथा विधान-मंडल में पूर्ण पार्थक्य है। किन्तु विधान-मडल न्यायपालिका पर दो प्रकार से अपनी प्रभुता प्राधिकार का अब भी प्रयोग करता है। वह किसी न्यायाधीश को अनाचार के कारण पदच्युत कर सकता है, और वह विधी का संशोधन करके न्यायालय के निर्णय को बेकार कर सकता है। एक महत्त्वपूर्ण मामले मे संसद ने व्यापार विवाद अधिनियम, १६०६ में पारित करके एक विशेष निर्णय की पुनरावृत्ति (Repetition) असम्भव बना दी थी। एक और महत्त्वपूर्ण बात पर ध्यान देना चाहिये। ब्रिटिश न्यायालयों का न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) का वैसा अधिकार नहीं है जैसा संयुक्त राज्य अमरीका के न्यायालयों को है। अमरीकी न्यायालय विधि का निर्वचन भी करते हैं और यह भी निर्धारित करते हैं कि कोई विधि ठीक है या नहीं, अर्थात् जिस विधान-मण्डल ने उसे बनाया है उसे उसको पारित करने का अधिकार भी था या नहीं। यदि न्यायालय यह देखे कि विधान-मण्डल किसी विधि को पारित करने में अपने प्राधिकार से आगे बढ़ गया तो वह न्यायालय उस विधि को असांविधानिक (Unconstitutional) घोषित कर सकता है। इस प्रकार अमरीकी न्यायालय संविधान के सरक्षक के रूप मे कार्य करते हैं। ब्रिटिश न्यायालय ऐसा नहीं कर सकते। वे केवल विधि का निर्वचन कर सकते हैं, किन्तु वे सविधान का निर्वचन तथा संरक्षण नहीं कर सकते। उन्हे इस प्रकार के प्रश्न पर विचार करने का अधिकार नहीं है कि क्या संसद को उस विधि विशेष के निर्माण का अधिकार था इस अन्तर का कारण यह है कि अमरीका मे सङ्घीय (Federal) सरकार है जिसमे लिखित सविधान ही सर्वोच्च होता है। ब्रिटेन मे कोई लिखित या सर्वोच्च संविधान नहीं है जिसका निर्वचन या संरक्षण करना न्यायालयों का कर्तव्य हो।

**ब्रिटिश न्याय का उच्च स्तर**— ब्रिटिश न्याय व्यवस्था अपनी अच्छाई, निष्पक्षता, शीघ्रता तथा स्वतत्रता के लिये देश विदेश मे प्रसिद्ध है। उसकी अच्छाई इस बात से सिद्ध हो जाती है कि उसकी प्रक्रिया तथा ढगो को अन्य देशों ने बहुत कुछ अपना लिया है। उनका भी ससार मे उतना ही प्रभाव है जितना ब्रिटिश सांविधानिक परम्पराओं का है।

उसकी अच्छाई तथा कुशलता के कई कारण हैं। पहला कारण तो वे मोटे मोटे सिद्धान्त हैं जिन पर ब्रिटिश न्याय-प्रशासन आधारित है। मुकदमे सदा खुले न्यायालयो मे होते हैं जहां जनता की पहुंच होती है, दावे मे प्रत्येक पक्ष को वकील पेश करने का अधिकार होता है, दोष सिद्ध करने का भार सदा अभियोजक

(accuser) पर होता है; अपराध तथा निर्दोषिता का निर्धारण करने के लिये कुछ मान्य नियम तथा सिद्धान्त हैं; गम्भीर आपराधिक मामलो मे अभियुक्त पर ज्यूरी की सहायता से ही मुकद्मा चलता है; न्यायाधीश खुले न्यायालय में अपना निर्णय सुनाते हैं तथा उसके लिये कारण भी बताते हैं; इसके अतिरिक्त विधि के प्रश्न पर उच्चतर न्यायालय मे अपील की जा सकती है। एक और भी बात है कि ब्रिटिश न्यायालयो मे जो प्रक्रिया-नियम (Rules of Procedure) प्रयुक्त होते हैं उन्हे बनाने के लिये एक विशेषज्ञ समिति होती है जिसमे लार्ड चान्सलर, ७ अन्य बड़े न्यायाधीश और ४ वकील होते हैं; वहाँ सयुक्त राज्य अमरीका के समान विधान-मंडल प्रक्रिया को निर्धारित नहीं करता। प्रक्रिया-नियमो का उद्देश्य यह है कि न्याय शीघ्र तथा सुनिश्चित हो। प्रक्रिया के विषय मे अपीले देखने मे नहीं आती, २०० मे एक से अधिक नहीं होती। न्यायाधीशो की निष्पक्षता तथा स्वतन्त्रता, वकीलो की दक्षता, मुकद्मों की सुनवाई मे न्याय्यता, गवाहो पर दबाव न डालना आदि अन्य कारण हैं जिनसे ब्रिटिश व्यवस्था आदरणीय, स्थिर तथा अच्छी और संसार की सर्वोत्तम व्यवस्थाओ मे से है।

---

## अध्याय ११

# स्थानीय शासन तथा प्रशासन

**विषय-प्रवेश**— स्थानीय शासन एक सुव्यवस्थित राज्य के राजनैतिक ढांचे से पृथक् वस्तु नहीं है वह तो उसका ही एक अभिन्न अङ्ग है। उसे कई बार शासन का एक अङ्ग मान लिया जाता है। चाहे हम इस विचार को स्वीकार करें या नहीं, यह तो बात ठीक ही है कि स्थानीय निकाय प्रत्येक सभ्य राज्य मे होते हैं और वे लोगो मे स्वाधीनता की भावना को जागृत करने मे तथा स्वतंत्र और लोकतंत्रात्मक संस्थाओं के सफल रूप से कार्य करने मे सहायक होते हैं। जैसा कि हेनरी सिजविक ने कहा है, प्रतिनिधि संस्थाओं का जो भी शैक्षणिक मूल्य होना है वह मुख्यतः स्थानीय संस्थाओ के विकास पर निर्भर होता है। अतः यह आवश्यक है कि ब्रिटिश सरकार के अङ्गों का वर्णन करने के पश्चात् अत में देश के स्थानीय शासन और प्रशासन का वर्णन भी कर दिया जाये।

**उसका इतिहास**— इङ्गलैंड का स्थानीय शासन केन्द्रीय शासन से अधिक पुराना भी है और अधिक नया भी है। ब्रिटेन में प्रबल केन्द्रीय शासन तो सर्वप्रथम

विलियम विजेता ने ही स्थापित किया था और उससे भी बहुत पहले अंग्रेज लोग अपने पैरिशों, हंड्रेडों तथा शायरों में अपने स्थानीय मामलों को स्वय संभालते थे। पैरिश तो नॉरमन विजय से पहले भी होते थे, और काउंटी तथा बॉरो भी संसद् के निर्माण से पहले वर्तमान थे। सेक्सन तथा नॉरमन कालों में इङ्गलिस्तान स्थानीय संस्थाओं का देश था ; लोग अपने ही मामलों मे व्यस्त थे और उन्हें कोई मतलब नहीं था कि उनके स्थानीय क्षेत्र से बाहर क्या होता था। किन्तु एक दूसरे अर्थ मे स्थानीय शासन केन्द्रीय सरकार से नया ही है। वर्तमान स्थानीय शासन उन सुधार अधिनियमों द्वारा स्थापित हुए हैं जो गत एक सौ वर्षों मे पारित हुए थे। १८३५, १८८८, १८९४, १९२९ तथा १९३३ के अधिनियमों द्वारा स्थानीय शासन व्यवस्था का पूर्णतः पुनर्निर्माण हो गया है। १८३५ के नगरपालिका नियम अधिनियम मे बॉरो के लिये स्थानीय शासन की व्यापक योजना थी और वही व्यवस्था अब तक कायम है। १८८८ के स्थानीय शासन अधिनियम द्वारा काउंटियों के लिये भी वही व्यवस्था लागू कर दी गई जो १८३५ के अधिनियम द्वारा बॉरो में कायम की गई थी। इससे काउंटियों के प्रशासन की पुनर्रचना हुई। १८९४ के जिला तथा पेरिश परिषद् अधिनियम द्वारा पेरिशों मे वर्तमान प्रशासन-व्यवस्था लागू करदी गई। उससे पहले कई प्रकार के विशेष जिले थे, जैसे बरियल, सेनीटरी, और स्थानीय सुधार जिले आदि, किन्तु उक्त अधिनियम से नगर तथा ग्राम जिले बनाये गये। १९२९ के अधिनियम द्वारा उन सब जिलों को समाप्त कर दिया गया या मिला दिया गया जो १८९४ के अधिनियम द्वारा बनाये गये थे, और स्थानीय निकायों को सामाजिक सेवाओं के लिये धन-सहायता देने के लिये नया प्रबंध किया गया। इससे स्थानीय प्रशासन पर केन्द्रीय नियंत्रण बढ़ गया। अन्त में १९३३ के स्थानीय शासन अधिनियम द्वारा विभिन्न स्थानीय प्राधिकारियों की शक्तियों और कार्यों का उल्लेख एक ही कानून मे कर दिया गया।

इन पांच अधिनियमों के परिणामस्वरूप, जिनसे इङ्गलैंड के स्थानीय प्रशासन मे महत्त्वपूर्ण सुधार हो गये, अब वहां स्थानीय स्वशासन के पांच प्रमुख क्षेत्र हैं—(१) काउंटी (२) बॉरो, (३) नगर-जिला, (४) ग्राम-जिला, और (५) पैरिश। देश के प्रशासन को पहले तो काउंटियों मे बांटा गया है (जैसे भारत में राज्यों को जिलों मे बांटा जाता है)। काउंटी मे अधिक गहरी आबादी वाले क्षेत्र नगर-जिले बना दिये जाते हैं तथा कम आबादी वाले क्षेत्र ग्राम-जिले बना दिये जाते हैं। इन जिलों का फिर विभाजन करके नगर पैरिश तथा ग्राम पैरिश बनाये जाते हैं। काउंटी मे जिस क्षेत्र को म्युनिसिपल चार्टर मिलता है उसे बॉरो कहते हैं। लन्दन का अपना विशेष शासन है। अब हम इन क्षेत्रों मे स्थानीय स्वशासन-व्यवस्था का हाल लिखेंगे।

**काउंटी**— काउंटी ही स्थानीय स्वशासन का सबसे बड़ा तथा सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है अतः हम पहले उसे ही ले लेते हैं उसका पूरा नामकरण *'प्रशासकीय काउंटी'* है और उसमें तथा *एतिहासिक काउंटी* मे अन्तर है। ६२ प्रशासकीय काउंटियां हैं तथा ५२ ऐतिहासिक काउंटियां हैं। ऐतिहासिक काउटियां न्यायिक प्रशासन के क्षेत्र हैं और उनमे से प्रत्येक में एक जस्टिस ऑफ पीस होता है। तथा लोकसभा के सदस्य के चुनाव के लिये वे ही निर्वाचन-क्षेत्र भी हैं; इस समय उनका स्थानीय प्रशासन से कोई सम्बन्ध नहीं है अतः उनमे काउंटी परिपदें या कोई स्थानीय निकाय नहीं है जो उनके मामलों का प्रबन्ध करे। प्रत्येक ऐतिहासिक काउंटी मे एक लार्ड लेफ्टीनेंट होता है जो एक अवैतनिक अफसर होता है, तथा एक शेरिफ भी होता है। स्थानीय शासन तथा प्रशासन की दृष्टि से ऐतिहासिक काउंटियों का कोई महत्त्व नहीं है।

१८८८ के अधिनियम द्वारा वर्तमान ६२ प्रशासकीय काउंटियों की सीमाएं निश्चित की गई थीं। ऐसा करते समय प्राधिकारियों ने अधिकतर प्राचीन काउंटियों को ही रहने दिया किन्तु कुछ काउंटियों मे परिवर्तन करना पड़ा जहां कि स्थानीय प्रशासन के लिये उपयुक्त बनाने की दृष्टि से उन्हे विभाजित करना था। इसका परिणाम यह हुआ कि यद्यपि दोनों प्रकार की काउटियां भिन्न भिन्न हैं और उनमें अन्तर भी है, फिर भी अधिकांश में उनके क्षेत्र एक ही हैं, किन्तु सभी काउंटियो में ऐसा नहीं है। उदाहरण के लिये लंदन की काउंटी किसी एक ऐतिहासिक काउंटी से सबद्ध नहीं है; वह चार प्राचीन काउंटियों में फैली हुई है। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सब काउंटियो के क्षेत्रफल या जनसंख्या बराबर नहीं हैं।

प्रत्येक प्रशासकीय काउंटी में एक काउंटी-परिषद् होती है जो वहां का शासक निकाय होता है। उसकी सदस्य संख्या उस काउंटी की जनसंख्या के अनुसार कम ज्यादा होती है। उसमे पारिषदों (काउंसिलरों) तथा ऐलडरमैनों मे यह अन्तर होता है कि ऐलडरमैन मतदाताओं द्वारा निर्वाचित नहीं होते हैं, वल्कि पारिषद् (काउंसिलर) अपने में से या बाहर वालों मे से एक तिहाई को ऐलडरमैन चुनते हैं अथात् यदि ३० काउंसिलर हैं तो वे १० ऐलडरमैनों को चुनते हैं। काउंसिलर की कार्यावधि ३ वर्ष है तथा ऐलडरमैन की ६ वर्ष है। काउंसिलरों के निर्वाचन के लिये समस्त काउंटी को कई निर्वाचन-जिलो में विभाजित कर दिया जाता है और प्रत्येक निर्वाचन जिले से एक सदस्य चुना जाता है। जब कोई काउंसिलर ऐलडरमैन चुन लिया जाता है, तो उसके रिक्त स्थान को भरने के लिये पारिषद् (काउंसिलर) का चुनाव होता है। ऐलडरमैन की पदावधि पारिषद् (काउंसिलर) से अधिक होते हुए भी उसकी शक्ति या कार्य अधिक नहीं होते; हाँ, उसकी प्रतिष्ठा अवश्य अधिक हो जाती है। ऐलडरमैनों में से आधे प्रति तीसरे वर्ष,

अर्थात् परिषद् के निर्वाचन के समय, निवृत्त (Retire) हो जाते हैं। ऐलडरमैनों की संख्या से दो लाभ हैं; इससे कुछ सदस्य परिषद् कार्य में अधिक अनुभवशील बन जाते हैं, काउन्टी को ऐसे योग्य व्यक्ति मिल जाते हैं जो विशेष ज्ञान वाले होते हैं किन्तु निर्वाचन के झगड़े में नहीं पड़ना चाहिते। पारिषद् (काउंसिलर) तथा ऐलडरमैन एक साथ समवेत होकर एक सभापति चुनते हैं, जो प्रायः उनमें से ही होता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह उनमें से ही हो। परिषद् अपने सभापति को वेतन दे सकती है तथा अपने सदस्यों को परिषद्-कार्य करने के लिये सफर-भत्ता दे सकती है।

परिषदों के निर्वाचन प्रति तीन वर्ष मे होते हैं। यह मार्च के आरम्भ मे हुआ करते हैं। परिषदों के विषय में व्यापक वयस्क मताधिकार नहीं है, जैसा कि लोकसभा के लिये है। यह विचित्र बात है कि जो व्यक्ति संसदीय निर्वाचनों मे मत दे सकता है वह नागरिक निर्वाचनों में मत नहीं दे सकता। इसके विपरीत पीयर आदि लोकसभा के लिये मत नहीं दे सकते, पर नगर परिषद् के लिये मत दे सकते हैं। परिषद् में वही मतदाता बन सकता है जो किसी मकान का स्वामी हो या उसमे रहता हो या ऐसे व्यक्ति का पति या पत्नी हो, या कुछ निश्चित राशि कर के रूप मे देता हो।

परिषद् वर्ष भर में कम से कम चार बार समवेत होती है। उसे पर्याप्त तथा विविध शक्तियां हैं, और वह उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। वह उस काउंटी की छोटी स्थानीय संस्थाओं के कार्य की देखभाल और नियंत्रण करती है और स्वयं भी प्रत्यक्ष कई कार्य करती है। परिषदों के कार्यों में निम्न कार्य समाविष्ट किये जा सकते हैं: बजट को तैयार करना, कुछ करों को लगाना, काउन्टी मे मुख्य सड़कों तथा पुलों को बनाना एवं उनकी मरम्मत कराना, पागलखाने, सुधारालय तथा औद्योगिक शिक्षालयों का प्रबन्ध। काउन्टी में मुख्य शिक्षा-प्राधिकारी भी परिषद् ही होती है, वही पैरिश के पुस्तकालयों आदि की देखभाल, व्यवस्था आदि करती है, और ग्राम्य क्षेत्रों में प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था के लिये उत्तरदायी होती है। वह समय समय पर काउन्टी का व्यापक परिमाप (Survey) करती है और स्थानीय प्राधिकारियों की सीमाओं में परिवर्तन संबंधी सिफारिशें करती है। हाउसिंग ऐक्ट (गृह-अधिनियम) का कार्य प्रायः काउन्टी परिषद् के अधीन जिले तथा बॉरो ही कर लेते हैं, फिर भी परिषद् यह देखती है कि कार्य ठीक प्रकार से हो रहा है या नहीं और वह स्वयं भी उस कार्य को संभाल सकती है। परिषद् खेती के विकास तथा उद्योगों की उन्नति की ओर भी ध्यान देती है। वह कृषि की उच्च शिक्षा का प्रबंध करती है तथा श्रमिकों के बच्चों को उससे लाभ उठाने का प्रोत्साहन देती है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि काउन्टी परिषद् का उद्देश्य यह है कि

ग्राम्य जीवन को अधिक आकर्षक तथा मनोरंजक बनाये और कृषि-श्रमिक के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाये। इन सामाजिक कामों के अतिरिक्त परिषद् को काउन्टी में पुलिस व्यवस्था करने के सम्बन्ध में भी कुछ कार्य करने पड़ते हैं।

परिषद् इन सब कार्यों को स्वयं नहीं करती। वह तो नीति निर्धारित करती है; दिन प्रति दिन का प्रशासन-कार्य तो स्थायी कर्मचारी वर्ग (Permanent Staff) करता है। उसमें काउन्टी क्लर्क, कोषाध्यक्ष, परिमापक (Surveyor), स्वास्थ्य अधिकारी तथा कई अन्य कर्मचारी होते हैं, उन सब को योग्यता के आधार पर रखा जाता है और राजनैतिक कारणों से उन्हे हटाया नहीं जा सकता। इंगलैंड में स्थानीय प्रशासन की कुशलता का प्रधान कारण यही है कि स्थानीय कर्मचारी वर्ग योग्यता के आधार पर नियुक्त होता है तथा अपने पद पर स्थित रहने के लिये उसे राजनीति को शतरंज मे भाग नहीं लेना पड़ता। यह भी याद रखना चाहिये कि परिषदें भी समितियों से काफी लाभ उठाती हैं। कानून से यह अनिवार्य है कि प्रत्येक परिषद् को कम से कम निम्न नौ समितियां तो रखनी ही पड़ती हैं— वित्त, शिक्षा, निर्धन-साहाय्य, लोक-स्वास्थ्य, गृह-निर्माण, कृषि, तथा प्रसूता और शिशु-कल्याण समितियां। उन्हें समूची परिषद् चुनती है और वे समितियां परिषद् के प्रति उत्तरदायी भी होती हैं।

**ग्राम्य ज़िले**— काउन्टी परिषद् के लिये सभव नहीं है कि वह अपने सारे पैरिशों की सब आवश्यकताओं पर, जैसे स्वच्छ वायु, जल-व्यवस्था, और लोक-स्वास्थ्य, पर ध्यान दे सके। इनके तथा स्थानीय महत्त्व के अन्य विषयों के कुशल प्रशासन के लिये वह कई पैरिशों का वर्ग बना देती है। उन वर्गों को ग्राम्य ज़िले कहते हैं और उसके प्रबन्ध के लिये एक ज़िला परिषद् होती है। एक काउंटी में कई ग्राम्य जिले होते हैं। उनकी कुल संख्या ६०० है।

जिला परिषद् मे कई निर्वाचित पारिषद् (Councillors) होते हैं जिनकी संख्या काउटी परिषद् निर्धारित करती है और वह संख्या प्रत्येक जिले की जन-संख्या पर निर्भर होती है। प्रत्येक पैरिश को, जिसकी जनसख्या २०० से कम न हो, ज़िला परिषद् में एक सदस्य चुन कर भेजने का अधिकार होता है। केन्द्रीय सरकार जिला परिषदों को गृह-निर्माण अधिनियम (Housing Act) के प्रयोजनों के लिये अपने अभिकर्ताओं (Agents) के रूप मे रखती है। अतः इन परिषदों को भूमि अर्जित (acquire) करने का तथा उस पर भवन-निर्माण करने का अधिकार मिल जाता है। स्वच्छता का ध्यान रखने वाले अधिकारी के रूप मे उन्हे जल-व्यवस्था, सड़कें साफ करवाना और पटरियों को साफ रखना, नालियां, तथा गन्दगी को साफ करवाना आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है। जिन सड़को का ध्यान केन्द्रीय सरकार या काउन्टी परिषद् नहीं रखती उन्हे प्रायः ग्राम्य जिला परिषदें ही संभालती हैं। काउन्टी परिषद् के समान, जिला परिषद् भी स्थायी कर्मचारी वर्ग रखती है।

ग्राम्य जिला परिषद् के निर्वाचन अप्रैल मे होते हैं। पारिषद् तीन वर्षों के लिये चुने जाते हैं, और उनमें से एक तिहाई प्रतिवर्ष निवृत हो जाते हैं, इस प्रकार ज़िला परिषद् के एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन प्रतिवर्ष होता है।

**नगर ज़िला परिषदें**— जब उद्योग के विकास के कारण किसी काउन्टी का कोई भाग शहरी आबादी वाला बन जाता है तब काउन्टी परिषद् उसे नगर-जिला बना सकती है और वहाँ एक निर्वाचित परिषद् बना देती है जो उसकी जल-व्यवस्था, स्वच्छता, लोक-स्वास्थ्य के अतिरिक्त उसकी अन्य समस्याओं जैसे गैस, बिजली या ट्रामवे को भी संभालती है। यदि शहरी जिले की जनसंख्या २०,००० से अधिक हो तो उसकी परिषद् को उसकी प्रारम्भिक पाठशालाओं पर नियन्त्रण रखने का भी अधिकार मिल जाता है। यदि आबादी २५ हजार से बढ़ जाती है तो एक स्टाइपैंडरी (वैतनिक) दंडाधीश (Magistrate) भी नियुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार शहरी ज़िला-परिषद् की शक्तियां बढ़ती जाती हैं और अन्त मे वे बॉरो परिषद के बराबर हो जाती हैं। इङ्गलिस्तान तथा वेल्स मे लगभग ७०० नगर-ज़िला परिषदें हैं।

ज़िला-परिषदें— चाहे वे शहरी हों या ग्राम्य हों— अपना सभापति अपने आप चुनती हैं, या तो अपने सदस्यों में से या बाहर से। उनकी बैठकें एक मास में एक बार होती हैं और काउटी परिषदों के समान वे भी अपना काम समितियों तथा स्थायी कर्मचारी वर्ग की सहायता से चलाती हैं। प्रत्येक परिषद् अपने लिये एक स्वास्थ्य अधिकारी, स्वच्छता निरीक्षक (Sanitary Inspector), परिमापक (Surveyor), क्लर्क, कोषाध्यक्ष, कर उगाहने वाला अधिकारी और अन्य अधिकारियों को नियुक्त करती है।

**पैरिश**— पैरिश ग्राम्य क्षेत्रों के लिये स्थानीय शासन की सबसे छोटी इकाई है। उसकी जनसंख्या तीन सौ या उससे अधिक हो तभी उसमें परिषद् बन सकती है। उसमें पांच से पंद्रह तक सदस्य हो सकते हैं, जो प्रायः सामान्य सभा मे हाथ उठा कर चुने जाते हैं। वह परिषद् तीन वर्ष तक रहती है। जिस पैरिश मे ३०० से कम व्यक्ति होते हैं, उसका प्रबध करने के लिये पैरिश की बैठक होती है जिसमें सारे करदाता बुलाये जाते हैं। पैरिश को बैठकों और पैरिश परिषदों के काम बहुत हल्के होते हैं। उन्हें प्रायः पैरिश के 'हॉल' (Hall) तथा पुस्तकालय, बाग तथा ग्राम-मार्गों आदि का ध्यान रखना पड़ता है। कभी कभी उन्हें जल-व्यवस्था का ध्यान रखना पड़ता है और पटरियों की मरम्मत का काम भी मिल जाता है। यदि पैरिश परिषद् के लिये योग्य व्यक्ति पैरिश में नहीं होते तो दूसरे पैरिश से किसी व्यक्ति को चुन लिया जाता है। पैरिश परिषद् में क्लर्क के अतिरिक्त कोई वैतनिक अधिकारी नहीं हो सकता।

**बॉरो**— स्थानीय शासन के प्रयोजन के लिये बॉरो का महत्त्व ग्राम्य या शहरी जिलों से या पैरिशों से कहीं अधिक है, उनमें बहुत अधिक जनसंख्या रहती है। इङ्गलिस्तान तथा वेल्स मे गत डेढ़ शताब्दी मे बहुत ज्यादा शहरी प्रदेश हो गये हैं। नगर-शासन की समस्या इङ्गलिस्तान मे जितनी महत्वपूर्ण है उतनी भारत में नहीं है, क्योंकि भारत मे तो ७५% आबादी गाँवों मे रहती है।

प्रायः तीन प्रकार के बॉरो माने गये हैं— संसदीय बॉरो, म्युनिसिपल बॉरो तथा काउटी-बॉरो। संसदीय बॉरो लोकसभा के सदस्यों के निर्वाचन के लिये क्षेत्र तथा इकाइयां होते हैं, उनका भी ऐतिहासिक बॉरो के समान स्थानीय शासन से कोई संबन्ध नहीं होता। म्युनिसिपल तथा काउटी बॉरो अपने ढांचे या कार्यों के विषय में मूल रूप से भिन्न नहीं है; उनका निर्माण एक ही प्रकार होता है तथा उनकी शक्तियां भी एक सी ही होती हैं। उनमें अन्तर यह है कि म्युनिसिपल बॉरो उस प्रशासकीय काउंटी का अङ्ग होता है जिसमे कि वह स्थित होता है और उसके क्षेत्राधिकार के अधीन भी होता है। किन्तु काउन्टी बॉरो को काउन्टी की शक्तियां दे दी जाती हैं अतः उस काउन्टी के नियंत्रण से मुक्त होता है जिसमे वह स्थित होता है। जब किसी बॉरो की जनसंख्या बढ़कर ७५ हज़ार हो जाती है तो वह स्वास्थ्य मंत्रालय को अर्जी दे सकता है कि उसे काउन्टी बॉरो का पद दे दिया जाये। हां, यह आवश्यक नहीं कि वह ऐसा करे ही। कई बॉरो उस पद के लिये याचना नहीं करते।

बॉरो (म्युनिसिपल या काउन्टी बॉरो) शहरी क्षेत्र होता है जिसे म्युनिसिपल चार्टर मिल चुका हो तथा उसे १८८२ के म्युनिसिपल निगम एकीकरण अधिनियम (Municipal Corporation Consolidation Act) के उपबन्धों के अधीन संगठित तथा शासित किया जाता है। म्युनिसिपल चार्टर प्राप्त करने का तरीका जरा लम्बा है। इसके लिये याचिका (Petition) राजा के नाम जाती है, फिर प्रिवी परिषद् उस पर पड़ताल करवा कर रिपोर्ट पेश करती है। यदि उसकी पड़ताल के परिणाम उसके पक्ष मे हों, और यदि स्थानीय प्राधिकारी द्वारा या उस क्षेत्र के बहुत से मतदाताओं द्वारा कोई आपत्ति न उठाई गई हो, तो सपरिषद् आज्ञा निकाल कर चार्टर दे दिया जाता है और नये बॉरो की सीमाएँ निश्चित करदी जाती हैं। बॉरो छोटे बड़े होते हैं तथा उनकी शक्तियाँ भी कम ज्यादा होती हैं। उनकी शक्तियों के कई स्रोत होते हैं— उन्हे शक्ति म्युनिसिपल निगम अधिनियम से, संसद के स्थानीय तथा असार्वजनिक अधिनियमों (Local and Private Acts) से, और केन्द्रीय सरकार के कुछ विभागों के आदेशों से प्राप्त होती है। इन विभिन्न स्रोतों के कारण बॉरो की शक्तियाँ भी भिन्न भिन्न होती हैं।

बॉरो की शासक-सत्ता बॉरो परिषद् है जिसमे मेयर, पारिषद्-गण (Councillors) तथा ऐल्डरमैन होते हैं। परिषद् की सदस्य-संख्या भी जनसंख्या के अ

पर चार्टर में ही निश्चित कर दी जाती है, कम से कम संख्या ६ तथा अधिकतम ४२ होती है। पारिषदों को तीन वर्ष के लिये जनता द्वारा चुना जाता है, उनमें से एक तिहाई प्रतिवर्ष निवृत्त हो जाते हैं, और ऐलडरमैनों को पारिषद, अपने में से या बाहर वालो में से, ६ वर्ष के लिये चुनते हैं। ऐलडरमैन पारिषदों से एक तिहाई होते हैं और उनमें से आधे प्रति तीन वर्ष निवृत्त हो जाते हैं। पारिषदों और एलडरमैनों की शक्तियां और कार्य समान ही होते हैं; ऐलडरमैनों का सम्मान और प्रतिष्ठा कुछ अधिक होती हैं क्योंकि उनकी पदावधि अधिक होती है और उनका अनुभव अधिक होता है, समय के कारण उनका प्रभाव भी अधिक हो जाता है। निर्वाचन के प्रयोजन के लिये प्रत्येक बॉरो को वार्डों में बाँटा जाता है, प्रत्येक वार्ड तीन या उसकी गुणित संख्या में पारिषद चुनता है। निर्वाचन प्रतिवर्ष प्रथम नवम्बर को होता है।

पारिषद तथा ऐलडरमैन अपने आप में से या बाहर से एक मेयर चुनते हैं। मेयर का पद बहुत प्रतिष्ठा तथा प्राचीनता का द्योतक है; उस पर प्रतिष्ठित सज्जन बॉरो का प्रथम नागरिक होता है और सब महत्त्वपूर्ण समारोहों पर उसका प्रतिनिधित्व करता है। वह एक वर्ष के लिये अपने पद पर रहता है किन्तु उसका पुनर्निर्वाचन भी हो सकता है। वह परिषद् की बैठकों मे सभापति होता है और सब प्रश्नों पर मत भी दे सकता है। किन्तु उसकी कोई कार्यपालिका सत्ता नहीं होती। वह नियुक्तियां नहीं करता, और परिषद् के संकल्पों पर उसके अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती। उसका पद वैतनिक नहीं होता किन्तु कई बॉरो अपनी वैधानिक शक्ति का प्रयोग करके उसे वेतन दे देते हैं क्योंकि उसके पद के सामाजिक कर्त्तव्यों को पूरा करने में व्यय होता रहता है। मेयर की पत्नी के वैधानिक कर्त्तव्य कुछ भी नहीं होते किन्तु उससे सामाजिक कार्यवाहियों मे भाग लेने की आशा की जाती है। यदि मेयर के पत्नी नहीं होती है तो कोई अन्य स्त्री, जो उसकी रिश्तेदार हो, 'मेयरेस' का काम करती है, और यदि कोई महिला ही मेयर निर्वाचित हो जाये तो कोई अन्य स्त्री 'मेयरेस' का काम करती है।

बॉरो परिषद् कार्यपालिका तथा विधायी दोनों प्रकार के कार्य करती है। वह सब अधिकारियों को नियुक्त करती है तथा विभिन्न विभागों के कार्यों की देखभाल करती है, वह जल-व्यवस्था, स्वच्छता, लोक-स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़कें तथा गलियां, पुलिस और अग्नि से रक्षा आदि कामों को भी करती है। वह उन सब शक्तियों का प्रयोग करती है जो बॉरो को कॉमन विधि से, संसद के सामान्य तथा विशेष अधिनियमों से, और केन्द्रीय सरकार के विभागों के अस्थायी आदेशों से प्राप्त होती हैं। अधिकांश कार्य समितियों के द्वारा होता है। विधि से यह आवश्यक है कि प्रत्येक बॉरो परिषद् को निम्न विषयों पर समितियां अवश्य रखनी होंगी: वित्त, शिक्षा, निर्धन-साहाय्य, वृद्धावस्था पेन्शनें, अग्नि से रक्षा, तथा पुलिस के सम्बन्ध में

देखभाल समिति। कभी कभी समितियो की संख्या पच्चीस तीस तक हो जाती है। परिषद् की बैठकें नगर के 'हॉल' मे प्रतिमास, प्रति पक्ष या आवश्यक्ता हो तो प्रति सप्ताह होती हैं, और उसके काम के नियम वह स्वयं ही बनाती है। परिषद् का विधायी कार्य यह है कि वह सब प्रकार की उपविधियां बनाती है, किन्तु स्वास्थ्य मन्त्रालय को अधिकार है कि वह उसके किसी नियम को रद्द कर सकता है यदि वह राष्ट्रीय विधि के विपरीत हो। परिषद् बजट को भी तैयार करती है, सब विनियोग करती है तथा कर आदि लगा कर खर्च पूरा करती है। लन्दन मे स्थित केन्द्रीय खजाना जहां तक उन्हें अनुमति देता है उस हद तक वे धन उधार भी ले लेती हैं। परिषद् बॉरो का शासन-कार्य चलाने के लिये एक क्लर्क, एक कोपाध्यक्ष, इजीनियर, पब्लिक एनेलिस्ट, चीफ कान्सटेबल तथा स्वास्थ्य अधिकारी (Health Officer), इन स्थायी वैतनिक अधिकारियों को नियुक्त करती है। उनकी सहायता के लिये छोटे कर्मचारी भी होते हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, उनके काम की देखभाल करना परिषद् का कार्य है।

जैसा कि काउंटियों मे होता है, उसी प्रकार बॉरो में भी सब प्रशासन संबंधी नियुक्तियां सभा द्वारा योग्यता के आधार पर की जाती हैं। प्रतियोगिता परीक्षाएं नहीं होतीं, किन्तु यह ध्यान रखा जाता है कि केवल योग्य तथा दक्ष लोग ही लिये जायें। यद्यपि परिषद् अपने कर्मचारियों को कभी भी पदच्युत कर सकती है, फिर भी जब तक कि उनका कार्य सन्तोपजनक हो, उनके पद स्थायी ही होते हैं। उनके पद की सुरक्षितता परम्परा के कारण है, विधि के कारण नहीं। नियुक्तियों में राजनैतिक और वैयक्तिक कारणों पर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता और उनकी पदावधि सुरक्षित होती है। इन्हीं कारणों से नगर का प्रशासन बहुत कुशल बन जाता है।

**स्थानीय शासन पर केन्द्रीय नियंत्रण**— ऊपर स्थानीय शासन का जो विवरण दिया गया है उससे स्पष्ट हो जायगा कि अंग्रेजों को अपने स्थानीय मामलों के प्रबन्ध-कार्य में बहुत स्वतन्त्रता प्राप्त है। चाहे काउंटी हो, चाहे बॉरो हो, चाहे शहरी या ग्राम्य जिला हो, या पैरिश हो, प्रत्येक क्षेत्र मे एक निर्वाचित परिषद् होती है जिसे स्थानीय मामलो के प्रबन्ध का अधिकार प्राप्त होता है। वह परिषद् अपने सभापति को चुनती है, अपने कर्मचारियों को नियुक्त करती है, प्राधिकृत सीमाओं के भीतर कर उगाहती है, और उसे स्वीकृत मदों पर व्यय करती है। वही अपनी नीतियों को आरम्भ करती है तथा क्रियान्वित भी करती है। या हम यों कह सकते हैं कि अंग्रेजों को स्थानीय स्वशासन प्राप्त है। उन्हें म्युनिसिपल (नागरिक) स्वराज्य प्राप्त है। स्थानीय संस्थाएं शासन व्यवस्था के अधीनस्थ अंग नहीं हैं;

वे अपनी इच्छानुसार चलते हैं तथा साधिकार काम करते हैं। वे मानो एक अलग व्यवस्था के अंग हैं।

किन्तु हमें यह नहीं समझना चाहिये कि उन्हें लंदन की केन्द्रीय सरकार से नियंत्रण या हस्तक्षेप बिना अपने मार्ग पर चलने दिया जाता है। ऊपर से कुछ नियंत्रण तो सदा ही रहता है, किन्तु सुधार से पूर्व वह बहुत कम था। एक शताब्दी पूर्व केन्द्रीय सरकार पूर्णतः स्थायी मामलों की चिन्ता नहीं किया करती थी। काउंटी तथा बॉरो कर लगाते थे, व्यय करते थे, सड़कें बनाते थे और अपनी इच्छानुसार सब कुछ करते थे, तथा केन्द्र कोई हस्तक्षेप नहीं करता था। किन्तु आज ऐसी स्थिति नहीं है। केन्द्रीय नियंत्रण बढ़ गया है तथा बढ़ता जा रहा है, किन्तु फ्रांस, यूरोप के अन्य देशों तथा भारत से अब भी कम है।

स्थानीय निकायों पर केन्द्रीय नियत्रण कई प्रकार से होता है। संसद विधि पारित करके नये स्थानीय शासन-क्षेत्रों का निर्माण तथा पुरानों की समाप्ति कर देती है और यह भी उपबन्ध बना देती है कि स्थानीय प्राधिकारी कुछ काम लंदन सरकार के उपयुक्त विभाग की स्वीकृति से कर सकते हैं। ससद द्वारा निर्मित विधियों में स्थानीय प्राधिकारियों के पथ-प्रदर्शन के लिये नियम-विनियम (Rules and Regulations) भी दिये होते हैं। जैसे जैसे काम बढ़ते जाते हैं और सरकार के कामों का क्षेत्र बढ़ता जाता है, वैसे ही स्थानीय निकायों को भी नये काम करने के लिये कहा जाता है। इसी से एकरूपता और अधिकाधिक केन्द्रीय नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है। राष्ट्रीय प्राधिकारियों को अधिक नियंत्रण तथा हस्तक्षेप की शक्ति मिलने का कारण यह भी है कि स्थानीय निकायों को केन्द्रीय कोष में से सहायता के रूप में अनुदान (Grants) दिये जाते हैं। इसी मुख्य साधन द्वारा इंगलिस्तान में स्थानीय सरकारों पर केन्द्रीय नियत्रण बढ़ता जाता है। सरकार स्थायी निकायों को शिक्षा, पुलिस, स्वास्थ्य तथा अन्य सेवाओं की सहायता के लिये धन देती है और फिर यह निरीक्षण (Inspection) का अधिकार मांगती है कि उसने जो धन राशियां दी थीं उनसे अधिकाधिक लाभ उठाया जा रहा है या नहीं। सरकारी सहायता के पीछे पीछे सरकारी निरीक्षक भी पहुंच जाते हैं। वे राष्ट्रीय सरकार की ओर से केवल देखने तथा सुनने के लिये ही नहीं आते वरन् बोलने और करने के लिये भी आते हैं। यदि वे देखते हैं कि स्थानीय निकाय का काम ठीक नहीं है या वह सरकार द्वारा बनाये गये समस्त नियम-विनियमों का पालन नहीं करता है तो राष्ट्रीय प्राधिकारियों को सूचना दे देते हैं, जो कि धमकी देते है कि स्थिति मे सुधार नहीं होगा तो सहायक-अनुदान बद कर दिये जायेंगे। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार अपने निरीक्षकों के द्वारा लगातार दबाव डालती रहती है। वह अपव्यय को रोक भी सकती है तथा सुस्ती के लिये दंड भी दे सकती है। यदि कोई स्थानीय निकाय अपने

काम को करने में लगातार असफल रहता है तो सरकार उसकी शक्तियां आयुक्तों (Commissioners) को दे देती है जो स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा उस प्रयोजन के लिये नियुक्त होते हैं।

यह भी ध्यान रखना चाहिये कि १६२६ के स्थानीय शासन अधिनियम से पहले केन्द्रीय सरकार विविध सेवाओं के लिये विभिन्न सहायक अनुदान दिया करती थी, जैसे शिक्षा के लिये एक निश्चित राशि, गृह-निर्माण के लिये भी कुछ धन-राशि तथा पुलिस के लिये भी निश्चित राशि दी जाती थी। यदि किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिये दी गई राशि का सदुपयोग न हो तो केवल उसे ही कम किया या रोका जा सकता था। उसका अन्य अनुदानों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। किन्तु उक्त अधिनियम द्वारा पृथक् पृथक् अनुदान समाप्त कर दिये गये और यह उपबन्ध कर दिया गया कि एक बड़ी राशि दे दी जाये जिसे वह निकाय इच्छानुसार व्यय कर सकता है। इस व्यवस्था से यह संभव हो गया है कि सरकार समस्त अनुदान को या उसके भाग को रोक सकती है, यदि वह स्थानीय प्रशासन के किसी अंग से भी असंतुष्ट हो। इससे यह पता लगेगा कि वित्त के साधन से ही केन्द्रीय सरकार स्थानीय प्रशासन पर नियंत्रण रखती है। यह नियंत्रण प्रशासकीय (Administrative) अधिक है, विधायी (Legislative) कम। ब्रिटिश संसद् विधायी उपायों द्वारा स्थानीय प्रशासन पर नियंत्रण करने का प्रयत्न नहीं करती ; वह तो केन्द्रीय सरकार के किसी विभाग को अधिकार दे देती है कि वही यह निर्धारित करे कि स्थानीय शासन को कोई कार्य करना चाहिये या नहीं, और फिर वही यह भी देखे कि समस्त कार्य कुशलता से हो रहा है या नहीं। यह भूलना नहीं चाहिये संसद् विधि पारित करके यह निश्चय करती है कि स्थानीय शासन के क्षेत्र क्या होंगे तथा वहां किस प्रकार का शासन होगा ; संसद् यह भी निर्धारित कर देती है कि वह क्या क्या काम करेगा और क्या नहीं करेगा। इस हद तक नियंत्रण विधायी (Legislative) होता है। किन्तु यह नियंत्रण इससे अधिक नहीं होता तथा उसका प्रशासन पर प्रभाव नहीं पड़ता। विविध विभाग सहायक-अनुदानों और निरीक्षण तथा मंत्रणा की शक्ति द्वारा ही प्रशासकीय नियंत्रण रखते हैं। इस मामले में ब्रिटिश प्रणाली अमरीकी प्रणाली से भिन्न है।

इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि केन्द्रीय नियंत्रण कई विभागों के द्वारा रखा जाता है, फ्रांस के समान एक विभाग द्वारा नहीं रखा जाता, अतः इंगलिस्तान में फ्रांस से कम नियंत्रण है। स्थानीय प्रशासन का सम्बन्ध मुख्यतः स्वास्थ्य-मंत्रालय, गृह कार्यालय, शिक्षा-बोर्ड, यातायात-मंत्रालय, व्यापार-बोर्ड तथा कृषि-मंत्रालय से होता है और वे ही उन पर देख-भाल रखते हैं। स्वास्थ्य-मन्त्रालय निर्धन-साहाय्य, जल-व्यवस्था, स्वच्छता और लोक-स्वास्थ्य पर सामान्य नियन्त्रण

रखता है। गृह-कार्यालय पुलिस की देख-रेख करता है तथा कारखानों और खानों के निरीक्षण के लिये उत्तरदायी होता है। शिक्षा-बोर्ड प्रारम्भिक, माध्यमिक, टेक्नीकल तथा कालेजियेट स्कूलों का ध्यान रखता है। यातायात-मन्त्रालय का ट्रामवे, सड़कों की रेलों, बन्दरगाहों आदि पर क्षेत्राधिकार होता है। कृषि-मन्त्रालय मण्डियों, खाद्य पदार्थों, औषधियों, पशु-चिकित्सा, आदि विषयों से सम्बद्ध विधियों के पालन की देख-भाल करता है। विभाग स्थानीय शासन की व्यवस्था को स्वयं नहीं चलाते (केवल लन्दन पुलिस की व्यवस्था गृह-मन्त्रालय चलाता है); प्रत्येक क्षेत्र में परिषद् तथा उसके द्वारा नियुक्त स्थायी कर्मचारी वर्ग ही व्यवस्था को चलाते हैं। केन्द्रीय विभागों का काम तो यही है कि देख-भाल करें और सूचना तथा मन्त्रणा देते रहें। वे शिकायतें भी सुनते हैं, जाँच पड़ताल करते हैं और विवादों को भी निबटाते हैं। वे स्थानीय संस्थाओं के सङ्गठन और प्रक्रिया आदि विषयों पर नियम-विनियम बना देते हैं जिन पर उन्हें चलना होता है। वे एक बात को करने की अनुमति दे सकते हैं तथा दूसरे के लिये मना कर सकते हैं। वे ये सब काम कर सकते हैं और इन से भी अधिक करते हैं, किन्तु फिर भी उनका यह काम नहीं है कि स्थानीय प्राधिकारियों के क्षेत्र में आने वाले किसी काम को करने का उत्तरदायित्व अपने सिर पर ले लें। वे तो केवल ध्यान ही रखते हैं कि स्थानीय निकाय ठीक प्रकार कार्य करें।

ब्रिटिश योजना में बहुत सी अच्छाइयां भी हैं। उससे स्थानीय स्वायत्तता (Autonomy) भी बनी रहती है और प्रबल केन्द्रीय नियंत्रण भी रहता है। स्थानीय स्वशासन बहुत प्राचीन वस्तु हैं; इंगलिस्तान में स्थानीय शासन की पद्धति एंग्लो-सेक्सन लोगों ने आरम्भ की थी और उनमें स्थानीय स्वायत्तता की आदत डाल दी थी जो अब तक है। केन्द्रीय नियंत्रण तो बहुत प्राचीन चीज़ नहीं है, और वह तो धीरे-धीरे स्थापित हुआ है, उसके लिये कोई निश्चित योजना या सिद्धान्त नहीं बना। वह परिस्थिति की आवश्यकता के अनुरूप बढ़ा और उससे बहुत लाभ हुआ है। उससे एकरूपता, व्यवस्था तथा कुशलता आ गई है, जिनकी बहुत आवश्यकता थी, और लोगों की अपने स्थानीय मामलों का प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता को हानि नहीं पहुंची है। केन्द्रीय नियंत्रण कठोर नहीं है और स्थानीय प्राधिकारियों को अपनी समस्याओं के निबटाने के लिये काफी ढील देता है। फिर भी कई आलोचक बढ़ते हुये केन्द्रीय नियंत्रण से स्थानीय स्वशासन के भविष्य को खतरा समझते हैं। कुछ यह भी आश्चर्य करते हैं कि "क्या काउंटी और बॉरो सरकार अपने बढ़ते हुये कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्व के भार से टूट नहीं जायेगी या कम से कम अपनी वर्तमान कार्यक्षमता को नहीं खो देगी।"* केन्द्रीय नियंत्रण लचकदार है तथा ब्रिटिश लोगों को स्थानीय स्वायत्तता से बहुत प्रेम है, अतः ऐसे भीषण परिणाम तो

* Ogg. *European Governments and Politics*, page 367.

नहीं होंगे। किन्तु स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था के ढाँचे में सुधार करने की काफी गुञ्जाइश है। स्थानीय शासन के बहुत से क्षेत्र हैं जिनके क्षेत्राधिकार एक दूसरे से टकरा जाते हैं।

**लन्दन का शासन**— इंगलिस्तान के म्युनिसिपल नगरों तथा बॉरो में जैसा स्थानीय शासन है, लण्दन में उन से भिन्न प्रकार की व्यवस्था है। उसकी व्यवस्था संसार की अन्य महान राजधानियों पेरिस, बर्लिन, रोम, टोकियो और वाशिङ्गटन के समान ही है। बहुत प्राचीन काल से लन्दन को देश के अन्य भागों से भिन्न प्रकार समझा गया है। संसद प्रायः लन्दन के लिये विशेष विधियाँ बनाती है। १८३५ का म्युनिसिपल निगम अधिनियम ग्रेट ब्रिटेन के आधुनिक म्युनिसिपल शासन का आधार था, किन्तु लन्दन को उसमें छोड़ दिया गया था। उसके लिये १८५५ तथा १८६६ में विशेष विधान बनाये गये थे। लन्दन के लिये अलग ही लोक स्वास्थ्य अधिनियम है, शिक्षा अधिनियम है, मकान अधिनियम आदि हैं।

स्थानीय शासन के प्रयोजन के लिये लन्दन को तीन विभिन्न भागों में अथवा क्षेत्रों में विभाजित किया गया है जिनके भिन्न भिन्न शासक निकाय हैं। वे हैं—(१) लन्दन शहर; (२) लन्दन काउन्टी; (३) लन्दन मेट्रोपोलिटन जिला। लन्दन शहर कहलाने वाला क्षेत्र तो वर्तमान राजधानी का छोटा सा अङ्ग है और एतिहासिक केन्द्रीय क्षेत्र है। उसका क्षेत्रफल लगभग एक वर्ग मील है (पूरे लन्दन का क्षेत्रफल लगभग ७०० वर्ग मील है)। और उसकी सीमाएं पुरानी हैं, सड़कों के नाम भी पुराने ही हैं तथा शासन के तरीके भी पुराने ही है। उसमें अब रहने के मकान बहुत कम हैं और वह राजधानी का व्यापारिक तथा आर्थिक केन्द्र बन गया है। वहां केवल पहरेदार आदि के निवासस्थान हैं जो लगभग १४,००० ही हैं। उसका शासन लार्ड मेयर तथा तीन परिषदों द्वारा होता है— वे तीन परिषदें निम्नलिखित हैं— (१) कोर्ट ऑफ ऐलडरमैन, (२) कोर्ट ऑफ कामन काउन्सिल, (३) कोर्ट ऑफ कामन हाल। कोर्ट ऑफ ऐलडरमैन में लार्ड मेयर तथा २६ ऐलडरमैन होते हैं जो जीवन भर के लिये चुने जाते हैं। किसी और स्थान पर ऐलडरमैन जीवन भर के लिये नहीं चुने जाते। कोर्ट ऑफ ऐलडरमैन को बहुत कम शक्तियां प्राप्त हैं— वे दलालों को लायसेंस देते हैं तथा शहर के अभिलेख (Record) रखते हैं। कोर्ट ऑफ कामन हाल में कोर्ट ऑफ ऐलडरमैन से सदस्य तथा सिटी कम्पनियों के लिवरीमैन होते हैं। ये कम्पनियां कारीगरों तथा व्यापारियों की मध्ययुगीय संस्थाओं (Guilds) के स्थान पर चल रही हैं। यह कोर्ट प्रति वर्ष शेरिफ को चुनता है और दो ऐलडरमैनों को चुनता है जिनमें से कोर्ट ऑफ ऐलडरमैन एक को लार्ड मेयर नियुक्त करता है। कामन हाल के कोर्ट को भी शक्तियां महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। शहर का शासन करने वाला असली निकाय कोर्ट

ऑफ कामन काउन्सिल है। उसमें २०० पारिषद् (Councillors) तो प्रति वर्ष चुने जाते हैं और कोर्ट ऑफ ऐलडरमैन के २६ ऐलडरमैन होते हैं। यह कोर्ट शहर के लिये उप-विधियां बनाता है, शहर के पुलों का ध्यान रखता है, और अग्नि से रक्षा, जल-व्यवस्था, निर्धन-साहाय्य, लोक-स्वास्थ्य, सड़कों की रेलों और मुख्य नालियों को छोड़ कर अन्य सब कार्य करता है। उसकी अपनी पुलिस होती है, व्यवहार-न्यायालय तथा शीघ्र निर्णय करने के क्षेत्राधिकार वाले दंड-न्यायालय होते हैं। उसके विभिन्न कार्यों की देखभाल करने के लिये वह अलग अलग समितियां नियुक्त करता है।

लन्दन काउटी प्रशासकीय काउंटी है। १८८८ के काउंटी परिषद् अधिनियम द्वारा उसकी सीमाएं निश्चित की गईं थीं और वहाँ एक निर्वाचित परिषद् भी स्थापित की गई थी। १८९९ में लन्दन काउंटी में २८ मेट्रोपोलिटन बॉरो बनाये गये जिनकी शक्तियां काउंटी परिषद् के अधीन हैं और परिषद् उन पर शासन करती है। इस परिषद् में १२४ निर्वाचित पारिषद् हैं तथा २० ऐलडरमैन हैं जिन्हें उक्त पारिषद अपने आप में से या बाहर से चुनते है। पारिषद् तीन वर्षों के लिये तथा ऐलडरमैन छै वर्षों के लिये चुने जाते हैं। आधे ऐलडरमैन तीन वर्षों के बाद बदल जाते हैं। पारिषद् और ऐलडरमैन मिल कर एक सभापति चुनते हैं। वह बाहर से भी चुना जा सकता है। १९३५ से वह सभापति भी लार्ड मेयर के समान 'राइट आनरेबल' की पदवी से विभूषित होता है। लन्दन काउटी परिषद् की शक्तियां अन्यत्र की काउंटी परिषदों के समान ही होती हैं; किन्तु कुछ बातों में इसकी शक्तियां कम भी हैं क्योंकि राजधानी होने के कारण पुलिस आदि के कई कार्य स्वयं केन्द्रीय सरकार ही करती है। परिषद् में १८ स्थायी समितियां होती हैं तथा एक कार्यपालिका समिति होती है जिसमें उन अठारह समितियों के सभापति होते हैं। यह परिषद् देश भर की परिषद् में सबसे अधिक कार्यशील है और उसने शिक्षा, भवन निर्माण कार्यों तथा स्वच्छता आदि में कई प्रसिद्ध कार्य सम्पन्न किये हैं। उसके प्रशासन में ११७ वर्ग मील क्षेत्र है जिसमें लगभग ४० लाख व्यक्ति हैं। वही कूड़ा करकट, नालियों, सड़कों, सुरंगो, घाटों, पुलो, अग्नि-रक्षण, स्वच्छता, लोक-स्वास्थ्य, गृह-निर्माण, शिक्षा, मनोरंजन-स्थानों और सार्वजनिक मेलों के सम्बन्ध में प्रधान प्राधिकारी है। वही ट्रामवे चलवाती है और टेम्स पर यातायात के लिये नावों का बेड़ा रखती है। जल-व्यवस्था के लिये एक अलग मेट्रोपोलिटन जल-बोर्ड है। इस परिषद् की वार्षिक आय ४ करोड़ पाउण्ड है।

१८९९ के अधिनियम द्वारा जो २८ मेट्रोपोलिटन बॉरो बने हैं, उनमें से प्रत्येक में एक स्थानीय शासक प्राधिकारी है जिसमें एक मेयर, निर्वाचित पारिषद् तथा ऐलडरमैन हैं। इन परिषदों की शक्तियां अन्य बॉरो परिषदों की शक्तियों से कम

विस्तृत हैं। वे मुख्य मार्गों का निर्माण करती हैं, सड़कों को बनाना, पटरियाँ बनाना, सड़कों को साफ करवाना तथा उन पर प्रकाश का प्रबन्ध करना, और लोक स्वास्थ्य अधिनियम को क्रियान्वित करना भी उनका ही काम है। वे सार्वजनिक स्नानागारों, धोबी घाटों, सार्वजनिक पुस्तकालयों, स्थानीय कब्रिस्तानों और श्रमिकों के निवासस्थानों का भी प्रबन्ध करती हैं। वे वाटिकाओं (Parks) तथा मनोरंजन के स्थानों की व्यवस्था करके लंदन काउंटी परिषद् के कार्य में भी हाथ बटाती हैं। मेट्रोपोलिटन बॉरो परिषदों के लिये कहा जा सकता है कि वे स्थानीय शासन के अन्तर्गत स्थानीय शासन है।

**स्थानीय शासन की ब्रिटिश तथा भारतीय पद्धतियों की तुलना**—इस अध्याय को तथा इस पुस्तक को भी समाप्त करने से पूर्व यह उचित ही होगा कि स्थानीय स्वशासन की ब्रिटिश तथा भारतीय पद्धतियों का तुलनात्मक विवेचन दे दिया जाये। हमारे स्थानीय निकाय ब्रिटेन के नमूने पर ही बने हैं, वास्तव में हमारा संविधान ही अधिकांशतः ब्रिटिश पद्धति पर आधारित है। अतः उनकी रचना तथा कार्य इंगलिस्तान की काउंटी तथा बॉरो परिषदों के समान ही हैं। उनके समान ही भारतीय स्थानीय समितियां जनता द्वारा निर्वाचित होती हैं। हाल ही में वयस्क मताधिकार तथा संयुक्त निर्वाचन भी आरम्भ कर दिये गये हैं, जबकि ब्रिटेन की अधिकांश स्थानीय संस्थाओं में अब तक भी सम्पत्ति पर आधारित मताधिकार है। उनको अपने क्षेत्राधिकार में बसने वाले लोगों की वैसी ही सेवा करनी पड़ती है जैसी कि ब्रिटिश स्थानीय निकाय करते हैं। किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि भारतीय निकाय उतने कार्य-कुशल नहीं बन पाये हैं जितने ब्रिटिश निकाय हैं। सामाजिक कार्य में हमारे म्युनिसिपल तथा जिला बोर्ड इंग्लैण्ड की काउन्टी तथा बॉरो परिषदों से बहुत पीछे हैं। इस बात को समझने से पहले हम यह देखेंगे कि ब्रिटिश निकाय किस प्रकार के कार्य करते हैं, और फिर हम यह देखेंगे कि भारतीय निकाय उन कामों को किस हद तक कर पाते हैं।

इंगलिस्तान में स्थानीय निकायों के सामाजिक कार्यों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है: लोक-स्वास्थ्य, शिक्षा, गृह-निर्माण, योजनाकरण तथा जनता की सहायता। लोक-स्वास्थ्य के कार्यों को भी निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है: (१) रोग की रोक-थाम तथा स्वास्थ्य की वृद्धि, (२) रोगियों का इलाज, और (३) माताओं तथा बालकों की चिन्ता। (१) के अधीन ये कार्य आ जाते हैं: प्रत्येक घर तथा पाठशाला के लिये जल की समुचित व्यवस्था, पीने के जल को सड़ने से रोकना, कूड़े के डिब्बों में से कूड़ा हटवाना, और ध्यान रखना कि नाले आदि के पास अस्वास्थ्यप्रद स्थान पर कोई भवन न बने। बड़े शहरों में परिषदें प्रायः स्नानागार और सरकारी धोबी घाट भी बनाती हैं। स्वास्थ्य अधिकारी स्वच्छता

निरीक्षक नियुक्त करते हैं जो दुकानों का निरीक्षण करते हैं और देखते हैं कि अशुद्ध भोजन जनता को खिलाया या बेचा न जाये। हमारे म्युनिसिपल बोर्ड प्राय ऐसे काम करते हैं किन्तु उस हद तक नहीं करते, किन्तु जिला बोर्ड तो बहुत ही कम करते हैं। जिन ग्रामों का प्रबन्ध उनके पास होता है वे प्राय बहुत गन्दे होते हैं और उनमें नालियों आदि की समुचित व्यवस्था नहीं होती।

इंगलिस्तान मे स्थानीय प्राधिकारी रोगियों की चिकित्सा के लिये जो व्यवस्था करते हैं वह हमारे देश की व्यवस्था से बहुत उत्तम होती है। वहां जिस घर में डिपथीरिया, स्कारलेट फीवर, टायफस और माता जैसे भयानक छूत रोग हों, उस घर के रहने वालो का यह कर्त्तव्य है कि उस रोग की सूचना स्वास्थ्य अधिकारी को दें, और वह अधिकारी उस रोगी को अलग किसी हस्पताल में भिजवायेगा, घर में कीटाणु-नाशक दवा छिड़कवायेगा और उस रोग को फैलने से रोकने के लिये अन्य सब कदम उठायेगा। यह सेवा कार्य धर्मार्थ औषधालयों के सहयोग से होता है। हमारे म्युनिसिपल बोर्ड छूत रोग के रोगियों को अलग करने की व्यवस्था नहीं करते। हमारे यहाँ प्रसूता तथा शिशु के कल्याणार्थ जो प्रबन्ध है वह भी ब्रिटिश व्यवस्था से बहुत कम है। १६३६ में ब्रिटिश संसद् ने एक अधिनियम द्वारा शिक्षा संबंधी स्थानीय प्राधिकारी को प्रसूता तथा शिशु के कल्याण का कार्य भी दे दिया है। कई स्थानों पर उन्होंने अपने हस्पताल तथा प्रसूतागृह बनाये हैं जिन के फलस्वरूप शिशु-मृत्युओं की संख्या इंगलिस्तान में बहुत घट गई है। बहुत सी माताएं तथा छोटे बच्चे 'कल्याण-केन्द्रों' से लाभ उठाते है।

प्रारंभिक शिक्षा ग्रेट ब्रिटेन मे नि शुल्क तथा अनिवार्य है। स्थानीय प्राधिकारियों के लिये बाध्यता है कि वे पाँच वर्ष से चौदह वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिये शिक्षा का प्रबन्ध करें, और ऐसे अधिकारी नियुक्त करे जो यह देखे कि प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों को पाठशाला मे भेजते हैं या नहीं। शारीरिक तथा मानसिक दोषों वाले बच्चों के लिये विशेष पाठशालाएँ हैं। हमारे देश मे ऐसी पाठशालाएँ बहुत कम हैं और नि शुल्क तथा अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा बहुत कम स्थानो पर है। हमारे स्थानीय निकाय इस समस्या पर बहुत कम ध्यान देते हैं, प्राय पाठशालाओं की कमी के कारण पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी भी नहीं पढ़ पाते, फिर अनिवार्य शिक्षा का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

अङ्गरेज जानते हैं कि स्वास्थ्य के लिये अच्छा भोजन जितना आवश्यक है उतना ही अच्छा मकान भी है। १६२६ के अधिनियम मे पिछले सब अधिनियमों का सार दे दिया है कि मकान का निरीक्षण किस प्रकार किया जाये कि वे निवास के योग्य हैं या नहीं। अस्वास्थ्यप्रद मकानों मे लोगों को रहने नहीं दिया जाता है, यानी उन मकानों को सुधारा जाता है या उन्हें तुड़वा दिया जाता है। स्वास्थ्य

अधिकारी को गन्दे मौहल्लो पर भी ध्यान देना होता है। पुराने गन्दे मौहल्लों ठीक करने का तथा नयों को वनने से रोकने का प्रयत्न होता रहता है। जब मोहल्लो को मनुष्यों के रहने के अयोग्य घोषित कर दिया जाता है, तब वहाँ निवासियों के लिये और बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये स्थानीय प्राधिकारी नई बस्तिय बसाते रहते हैं। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् ३० लाख से अधिक मकान बनाये ज चुके हैं और एक तिहाई जनता को नये मकानो में बसाया जा चुका है। इस में भी भारत के म्युनिसिपल बोर्डो का काम बहुत नगण्य है और कई स्थानों पर तो वास्तव मे गन्दगी बढ़ती जाती है।

हमारे देश में योजनाकरण भी कहीं नहीं है ; केवल कहीं कहीं पर जहां सुधार ट्रस्ट है और वे उचित रूप से काम करते हैं, वहां ही कुछ योजनाबद्ध नगर-विकास होता है। ब्रिटेन मे १९३२ मे संसद् ने एक नगर तथा ग्राम योजनाकरण अधिनियम पारित किया था जिसके अन्तर्गत स्थानीय प्राधिकारी अपने स्थान के स्वास्थ्य तथा सौंदर्य को बनाये रखने का प्रयास करते हैं और नये मकान आदि बनाने के लिये योजनाएं तैयार करते हैं। स्थानीय प्राधिकारियों का यह भी कर्त्तव्य है कि वे वृद्ध लोगों, अपंग तथा बेकार व्यक्तियों को सहायता देने की व्यवस्था करें। हमारी म्युनिसिपैलटियां और जिला बोर्ड निर्धन, अपंग आदि की सहायता करना अपना कर्त्तव्य ही नहीं समझते।

दोनों देशों के स्थानीय निकायों के कार्यों मे एक महान् अन्तर यह भी है कि इंगलिस्तान मे स्थानीय निकाय जिले मे पुलिस का प्रबन्ध भी करते हैं। प्रत्येक काउन्टी का अपना पुलिस-बल होता है जो उसमे सब पुलिस-कार्य करता है। प्रति वर्ष काउन्टी पुलिस का निरीक्षण गृह-कार्यालय की ओर से होता है, और यदि पुलिस-व्यवस्था संतोषजनक हो तो उसका आधा खर्च केन्द्रीय सरकार देती है। हमारे देश में जिला और म्युनिसिपल बोर्ड ऐसा कोई कार्य नहीं करते ; उन्हें इसके लिये विधि द्वारा शक्ति प्राप्त नहीं है। इससे यह पता लगेगा कि यद्यपि दोनो देशों में स्थानीय शासन निकाय एक ही प्रकार से बने हैं फिर भी उनके कामों में बहुत अन्तर है। किसी हद तक उसका कारण यह भी है कि भारत मे उन्हे बने एक शताब्दी भी नहीं हुई और उनकी पूरी तरह जड़ नही जमी है। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि भारत मे स्थानीय निकायो पर केन्द्रीय नियंत्रण इंगलिस्तान से अधिक है और वह सीधा प्रत्यक्ष रूप मे है। हमारे यहाँ जिलो में पैरिश और शहरी तथा ग्राम्य जिला परिषदें आदि नहीं हैं। ग्राम पंचायतें, जो नई ही बनी हैं, किसी हद तक पैरिश परिषदों के समान हैं पर उनकी शक्तियाँ तथा कार्य बहुत कम हैं और उन पर राज्यों की सरकारों का नियंत्रण भी अधिक है।

---